चिदरेमठीयेन वीरभद्रशर्मणा विरचितम्

शिवपञ्चविंशतिलीलाशतकम्



सम्पादकः

पं० व्रजवल्लभद्विवेदः

लीलासंग्राहकः

डॉ० ददन-उपाध्यायः

शिवपञ्चविंशतिलीलाशतकम्

शोधप्रकाशन ग्रन्थमाला — ५०

वेद-काव्य-स्मृति-तीर्थेन चिदरेमठीयेनवीरभद्रशर्मणा
श्री १००८ जगद्गुरुवीरभद्रशिवाचार्यमहास्वामिनां
विरचितम्

शिवपञ्चविंशतिलीलाशतकम्

सम्पादकः
राष्ट्रियपण्डितः श्रीव्रजवल्लभद्विवेदः
निदेशकः, शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानम्

लीलासंग्राहकः
डॉ. ददन उपाध्यायः
सहायक सम्पादकः, प्रकाशन-संस्थाने
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयस्य, वाराणसी

प्रकाशकः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी - २२१ ००१

प्रकाशक:
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ीमठ
वाराणसी - २२१ ००१

प्रथम संस्करण २००६

मूल्य : रु. ४०० (सजिल्द), रु. ३०० (अजिल्द)

अक्षर संयोजन
शिव शक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस
जंगमवाडी मठ, वाराणसी

मुद्रक
मित्तल ऑफसेट्स
सुन्दरपुर, वाराणसी

Research Publications Series— 50

ŚIVAPAÑCAVIṄŚATI-LĪLĀŚATAKAM

Edited by
Rashtriya Pt. Vrajavallabha Dwivedi
Director, Shaiva Bharati Shodha Pratishthanam

Hindi Story by
Dr. Dadan Upadhyay
Assistant Editor, Publication Institute
Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

Published by :
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi - 221 001

First Published 2006

ISBN 81-86768-86-4 (Hb)
ISBN 81-86768-87-2 (Pb)

Price : Rs. 400.00 (Hb), Rs. 300.00 (Pb)

Laser Typeset at :
Shiva-Shakti Computer Process
Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

Printed at :
Mittal Offset
Sundarpur, Varanasi

शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के संस्थापक
श्रीकाशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर
श्री १००८ जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी
का



आशीर्वचन

महाशिवरात्रि की पूर्वसंध्या की पावन बेला में आयोजित विद्वत्सभा में काशी ज्ञानसिंहासन के ८४वें पीठाधिपति विद्यानिधि श्री १००८ जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामीजी द्वारा पूर्वाश्रम में विरचित **'पंचविंशतिलीलाशतकम्'** ग्रन्थ को हिन्दी अनुवाद और विस्तृत कथाओं से समृद्ध इस ग्रन्थ को शिवार्पित करते हुए हम अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

श्री जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामीजी पूर्वाश्रम में वीरभद्र शर्मा एवं वीरभद्र शास्त्री के नाम से प्रख्यात थे। आंध्रप्रदेश में निजामाबाद का नलगोंडा इनका जन्मस्थान रहा है। आप आंध्रप्रदेश की विभिन्न संस्कृत पाठशालाओं में प्रारम्भिक संस्कृत अध्ययन कर, १९२५ में उच्च संस्कृत अध्ययन के लिए काशी आये। १९३५ तक निरन्तर अध्ययन करके आपने वेदतीर्थ, स्मृतितीर्थ, काव्यतीर्थ, सर्वदर्शनतीर्थ आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त कीं। आपके विद्यावैभव को देखते हुए तत्कालीन काशी जगद्गुरु श्री १००८ पंचाक्षर शिवाचार्य महास्वामीजी ने १९३५ में महाशिवरात्रि की धर्मसभा में आपको 'विद्यानिधि' मानद उपाधि देकर सम्मानित किया। काशी के अध्ययन की समाप्ति के बाद आप सिकन्दराबाद में एक वीरशैव गुरुकुल की स्थापना

करके अनेक छात्रों को अन्न, वस्त्र देकर विद्यादान करने लगे। (बाल्यावस्था में ही) आप काव्यरचना की कला में निपुण थे। आपने अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना की। १९४४ में आप काशी पीठ के ८४वें जगद्गुरु बने। आपका कार्यकाल बहुत ही अल्प था। केवल ३ वर्ष ६ माह पीठाचार्य के रूप में आप रहे। इस ज्ञानपीठ में विद्यमान ज्ञानमन्दिर ग्रन्थालय आपकी ही देन है।

सद्यः प्रकाशित हो रही 'पंचविंशतिलीलाशतकम्' आपकी मौलिक कृतियों में से एक है। यहाँ संस्कृत के विभिन्न छन्दों में भगवान् शिव की २५ लीलाओं का वर्णन आपने किया है। अभी तक यह ग्रन्थ अप्रकाशित रहा। २००४ और २००५ वर्ष को हमलोग श्री जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामीजी के जन्म-शतमानोत्सव के रूप में सर्वत्र मना रहे हैं। काशी क्षेत्र में भी इस वर्ष की महाशिवरात्रि के उपलक्ष्य में आपके जन्मशतमानोत्सव के सन्दर्भ में इस ग्रन्थ को आप को ही समर्पित करते हुए हम अपने को कृतकृत्य मान रहे हैं। इन श्लोकों का हिन्दी अनुवाद हमारे शोध प्रतिष्ठान के निदेशक राष्ट्रीय पण्डित **श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी** जी ने किया है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के **पं. ददन उपाध्याय** जी ने अनेक पुराणों की सहायता से इन लीलाओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत कर इस ग्रन्थ की उपादेयता को बढ़ाया है। आबालपण्डित सबके लिए यह एक उपादेय ग्रन्थ सिद्ध हो रहा है।

भगवान् शिव स्वयं एक लीलामूर्ति हैं। उनका सारा व्यवहार लीलामय है। शास्त्रकारों ने भगवान् शिव को पंचकृत्यपरायण कहा है। सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह ये ही वह पंचकृत्य हैं। सृष्टि की रचना हो, उसका पालन करना हो, प्राणियों को निगृहीत करना हो, प्राणियों पर अनुग्रह करना हो अथवा सबका नाश करना हो, इसके लिए भगवान् शिव को बहुत प्रयास नहीं करना पड़ता। महर्षि व्यास जी ने 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' इस सूत्र में भगवान् शिव की सारी क्रियाओं को 'लीला' शब्द से सूचित किया है। कोई व्यक्ति किसी कार्य में जब प्रवृत्त होता है, तब उसके पीछे कोई न कोई प्रयोजन होता है। प्रयोजन के बिना यदि कोई कहीं प्रवृत्त होता है, तो उसे उन्मत्त माना जाता है। उसी तरह प्रपंच के सृष्टि-संहारादि कार्य में शिव का यदि कोई प्रयोजन माना जाय, तो भगवान् शिव के आप्तकामत्व की हानि होती है। प्रयोजन के बिना प्रवृत्ति मानने पर भगवान् को उन्मत्त मानना पड़ेगा। इस 'उभयतो

पाशारज्जुः' स्थिति में शास्त्रकारों ने लीला प्रवृत्ति को स्वीकारा है। जो अल्पायास से साध्य हो और जिसमें कर्ता का कोई विशेष प्रयोजन न हो, ऐसी प्रवृत्ति को लीलाप्रवृत्ति कहते हैं। उपर्युक्त पंचकृत्य को भगवान् शिव की लीला कहा जाता है।

वीरशैव आचार्य भगवान् शिव की दो अवस्थाओं को स्वीकार करते हैं। एक लीलावस्था, दूसरी कैवल्यावस्था। सृष्टिस्थित्यादि पंचकृत्यों की जो शून्यावस्था है, उसे कैवल्यावस्था कहते हैं। पंचकृत्यों की जो कर्तृत्वावस्था है, उसे लीलावस्था कहते हैं। अत्यन्त निपुण नट अकेले अलग-अलग रूप धारण करके एकपात्राभिनय के माध्यम से सबको आनन्द प्रदान करता है। उसी प्रकार शिव भी अकेले अपनी शक्ति की महिमा से कभी सृष्टि, कभी पालन, कभी संहार, कभी तिरोधान एवं कभी अनुग्रह व्यापार से अपनी लीला करते रहते हैं। श्रीसिद्धान्तशिखामणि में स्वातंत्र्य शक्तियुक्त शिव की लीला को—

स्वेच्छाविग्रहयुक्ताय स्वेच्छावर्तनवर्तिने।
स्वेच्छाकृतत्रिलोकाय नमः साम्बाय शम्भवे।।

इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है।

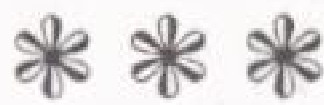
भगवान् शिव के इन पंचकृत्यों के पीछे उनका अपना कोई प्रयोजन न रहने पर भी सृष्टि के प्राणियों का कल्याण करने की दृष्टि से भगवान् शिव निरन्तर लीला करते रहते हैं। आगमशास्त्र और पुराण ग्रन्थों में भगवान् शिव की २५ लीलाएँ प्रसिद्ध हैं।

काशी पीठ के पूर्व जगद्गुरु श्री वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामीजी पूर्वाश्रम में जब काशी में अध्ययन करते थे, उस समय चिदरेमठ वीरभद्र शर्मा उनका नाम था। उस समय इन्होंने भगवान् शिव की २५ लीलाओं का स्वरचित १०० श्लोकों में वर्णन किया। इनका यह कार्य गागर में सागर भरने जैसा है। इन शत श्लोकों की लोकोपयोगिता को देखकर इन्हें प्रकाशित करने का विचार हमारे मन में आया। इस कार्य को सम्पन्न करने की जिम्मेदारी **पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी** जी ने ली एवं उसे समर्थ रूप से निभाया। इस ग्रन्थ को अधिक रोचक और सुलभ करने के लिए **डॉ. ददन उपाध्याय** जी ने लीलाओं से सम्बद्धित अध्ययन प्रस्तुत करके विस्तृत रूप दिया है। अब यह ग्रन्थ अपने आपमें परिपूर्ण लग रहा है। इस ग्रन्थ के मूल लेखक जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य जी का अभी

जन्मशताब्दी उत्सव चल रहा है। अतः इस ग्रन्थ को उन्हीं की पावन स्मृति में हम उनको समर्पित कर रहे हैं।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में, अनुवाद में विस्तृत कथाओं को जोड़ने में आगम शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् **राष्ट्रियपण्डित श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी** जी को एवं **डॉ. ददन उपाध्याय** जी को अनन्त मंगलाशीर्वाद। भगवान् विश्वनाथ, माता अन्नपूर्णा एवं जगद्गुरु विश्वाराध्य के कृपाशीर्वाद से इन मनीषियों द्वारा इसी तरह सारस्वत सेवा निरन्तर होती रहे। इस ग्रन्थ के मुद्रण कार्य में संलग्न मठ के संचालक **श्री गंगाधर चिरमे, श्री पंचाक्षरी लिगाडे, श्री बी.आर. पाटील** आदि को मंगलाशीर्वाद। इस ग्रन्थ के सम्यक् रूप से अक्षर संयोजन के लिए शिवशक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी के **श्री चिदानन्द ओ. हिरेमठ** (कसगी) को भी अनन्त मंगलाशीर्वाद।

महाशिवरात्रि, सं. २०६१ इत्याशिषः



नान्दीवाक्

जंगमवाड़ी मठ के ८४वें जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामी-प्रणीत **'पञ्चविंशतिलीलाशतकम्'** देवाधिदेव गंगाधर शिव की भुवनमोहिनी लीलाओं पर आधारित एक ललित संस्कृत काव्य है। इस काव्य में संग्रथित सातवीं **भिक्षाटनलीला** हमें **भिक्षाटनकाव्य** का स्मरण कराती है, जिसकी रचना १५वीं शती ई. में दाक्षिणात्य **उत्प्रेक्षावल्लभ** शिवदास नामक कवि द्वारा की गई थी। जब मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापनरत था, तभी मैंने अपने निर्देशन में एक शोधच्छात्र को इस काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन करने का दायित्व दिया था। ४२ पद्धतियों में वर्णित इस सरस-मधुर काव्य की उत्प्रेक्षायें इतनी सारवती, आमोदक्षम एवं सरस हैं कि सहृदय-समाज ने कवि को **'उत्प्रेक्षावल्लभ'** की उपाधि दे डाली। वस्तुतः यह काव्य दिगम्बर, नित्य उदासीन, समाधिलीन शिव को **शृङ्गारी नायक** के रूप में चित्रित करता है।

'पञ्चविंशतिलीलाशतकम्' में भी परमपूज्य श्री विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामी जी ने भगवान् शिव की जिन २५ लीलाओं का काव्यमय वर्णन किया है, वे लीलायें नवरसरुचिरा हैं। यदि उमामहेश्वर, भिक्षाटन, चन्द्रधारण, गौरीविवाह तथा अर्धनारीश्वर लीला में **शृंगार** का प्राधान्य है, तो ताण्डव, त्रिपुरदहन, अन्धकासुरवध तथा पार्थास्त्रप्रदान लीला में **वीर** एवं **भयानक** रसों का। यदि महालिङ्गोद्भव लीला में **अद्भुत** रस का परिपोष है, तो कंकालधारण लीला में **बीभत्स** का। यदि कुमारजनन लीला में **वात्सल्य रस** का प्राधान्य है, तो दक्षिणामूर्ति तथा वृषभवाहन लीला में **शान्त रस** का।

इस शतक का प्रकाशन पूज्य महास्वामी जी के जन्मशती-वर्ष में **शैवभारती शोध प्रतिष्ठान**, जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त) द्वारा किया जा रहा है। लीलासंग्राहक तथा उनके विस्तृत व्याख्याकार **डॉ. ददन उपाध्याय** जी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, प्रकाशन-संस्थान में प्रतिष्ठित हैं। आप नित्यस्वाध्यायी,

शान्तचित्त, विद्यानुरागी युवा विद्वान् हैं। उन्होंने बिन्दु रूप में वर्णित इन लीलाओं को **सिन्धुता** प्रदान की है, यह बता कर कि ये ललित लीलाएँ किन-किन पुराणों तथा पुराणेतर ग्रंथों में वर्णित की गई हैं। सरल एवं सुस्पष्ट हिन्दी में व्याख्यात ये शिवलीलायें भक्तिप्रवण पाठकों को रसवत्ता एवं असीम श्रद्धा से ओत-प्रोत कर देती हैं।

'पञ्चविंशतिलीलाशतकम्' में कुल ९४ पद्य हैं। अन्तिम अनुष्टुप् के अतिरिक्त शेष सभी पद्य शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, उपजाति, शिखरिणी, वंशस्थ, वसन्ततिलक छन्द में हैं। काव्य की भाषा अनलंकृत होते हुए भी प्रसादगुणयुक्त है तथा पाञ्चाली रीति में उपनिबद्ध है।

जंगमवाड़ी मठ के वर्तमान अधिपति **जगद्गुरु श्री चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी** संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उनके व्यक्तित्व में पाण्डित्य, सौजन्य एवं वात्सल्य की त्रिवेणी का संगम दीखता है। उनकी सत्प्रेरणा से प्रकाशित यह ललित काव्य न केवल वीरशैव सम्प्रदायानुरागियों को, प्रत्युत समस्त सहृदयों को आकण्ठ तृप्त करेगा। मैं पूज्य महास्वामी जी को प्रणाम अर्पित करते हुए, एक बार पुनः ग्रंथ के **सम्पादक** आचार्यप्रवर राष्ट्रियपण्डित **श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी** तथा व्याख्याकार **डॉ. ददन उपाध्याय** का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

वाराणसी
कुलपति-निवास — सहृदयवशंवद
२३ अप्रैल, २००५ ई. — **अभिराज राजेन्द्र मिश्र**

कुलपति,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

***

प्रस्तावना

काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासन, जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी के श्री १००८ लिंगैक्य जगद्गुरु वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामीजी की स्मृति में जन्मशताब्दी (२५.८.२००४ से २५.८.२००५) महोत्सव मनाया जा रहा है। दक्षिण और उत्तर भारत में इस प्रसंग में विभिन्न आयोजन हुए हैं और हो रहे हैं। इनका विस्तृत विवरण यथासमय प्रकाशित होगा। काशी में विगत शिवरात्रि (५-४ मार्च, २००५) के शुभ अवसर पर द्विदिवसीय विद्वद्गोष्ठी का तथा शैवभारती शोध प्रतिष्ठान से प्रकाशित ग्रन्थों का शिवार्पण-समारोह सम्पन्न हुआ। इस प्रसंग में **''पंचविंशतिलीलाशतकम्''** इनमें हमारे लिए लिए विशेष रूप से उल्लेख्य है।

'शुभाशीर्वचन' में प्रस्तुत शतक के रचयिता के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संबन्ध में और 'नान्दीवाक्' में साहित्यशास्त्र और छन्दःशास्त्र की दृष्टि से ग्रन्थ और ग्रन्थकार के विषय में आवश्यक जानकारी दी गई है। काशी जंगमवाड़ी मठ की प्राचीनता के विषय में पर्याप्त लिखा जा चुका है। इस पीठ के ८४वें जगद्गुरु श्री १००८ वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामीजी संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् ही नहीं, अनेक भारतीय भाषाओं के ज्ञाता, इतिहासज्ञ तथा श्रेष्ठ संशोधक भी थे। जैसा कि बताया गया है, आप विद्यार्थी जीवन में चिदरेमठ वीरभद्र शर्मा के नाम से प्रसिद्ध थे। आपका जन्म आन्ध्रप्रदेश के नलगोंडा ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम चिदरेमठीय पण्डित नागभूषण शास्त्री तथा माता का नाम श्रीमती श्यामलाम्बा था। आपकी प्राथमिक शिक्षा जन्म स्थान में ही हुई। बाद में आपने हैदराबाद, नारायणपेठ आदि स्थानों की संस्कृत पाठशालाओं में पंचकाव्य, नाटक आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया।

हैदराबाद हाईकोर्ट के वकील श्री बाबूराव देशमुख की विशेष आर्थिक सहायता से आप काशी आये और यहाँ श्री विश्वाराध्य गुरुकुल जंगमवाड़ीमठ में निवास कर दस साल तक कठोर परिश्रम करके कलकत्ता संस्कृत एसोसिएशन

की वेदतीर्थ, काव्यतीर्थ, स्मृतितीर्थ, सर्वदर्शनतीर्थ एवं मथुरा व्रजमण्डल युनिवर्सिटी की साहित्यविशारद तथा धर्माचार्य आदि अनेक परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। इस तरह आप वेद-वेदान्त-न्याय-मीमांसा-सांख्य-योग-धर्मशास्त्र आदि प्राचीन भारतीय शास्त्रों के अच्छे विद्वान् बन गये।

इतिहास का भी आपको अगाध ज्ञान था। आप भारतवर्ष की बीस तरह की प्राचीन लिपियों के ज्ञाता थे, जिसके कारण आपको देश के कितने ही पुराने शिलालेखों तथा ताम्रशासनों को पढ़ने में सहायता मिली थी। उत्तरप्रदेश के एक प्राचीन शिलालेख को पढ़कर उसका सही अर्थ आपने बिहार की सुप्रसिद्ध 'पुरातत्त्व' नामक पत्रिका में प्रकाशित कराया था, जिसके अर्थ के बारे में ई. १९३३ तक विवाद बना रहा। आपके इस लेख की प्रशंसा इंग्लैण्ड की रायल एशियाटिक सोसाइटी जैसी बड़ी-बड़ी संस्थाओं ने की थी। म.म. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के सम्मान में वि. १९९१ में प्रयाग से प्रकाशित 'भारतीय अनुशीलन' नामक ग्रन्थ में 'विजयादित्य का अम्भणमि ताम्रपत्र'' शीर्षस्थ आपका लेख पुरातत्त्व के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्व रखता है।

आपका तेलुगु, कन्नड़, मराठी, हिन्दी और संस्कृत भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। साथ ही बंगला, उर्दू और अंग्रेजी भाषाओं की भी समुचित जानकारी थी।

आपने संस्कृतवाङ्मयचरित्र, शिवपंचास्तवीव्याख्या, शिवपंचविंशति-लीलाशतक, ऋग्वेदानुवाद (प्रथमाष्टक), लिंगधारणविधि, वीरशैवविवाहविधि, आन्ध्रवीरशैवरू, मालविकाग्निमित्रव्याख्या, लिंगधारणसिद्धान्त और मीमांसापरिभाषा की तेलुगु व्याख्या एवं मठमुलु मन्दिरमुलु, काशी पीठाचे प्राचीनत्व, श्रीकरभाष्य प्रास्ताविक, रेणुकविजयप्रशस्ति आदि ग्रन्थों की रचना की। इनके अतिरिक्त समाज का अग्निकुण्ड, लग्न या भग्न, वरशुल्कव्याघ्र आदि लघुकथाएँ एवं अत्यधिक निबन्ध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। आपकी इस विद्वत्ता से प्रभावित होकर काशी संस्कृतसाहित्य समाज ने अपने १०वें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर म.म. मुकुन्द झा वक्षी की अध्यक्षता में आयोजित सभा में 'विद्यारत्न' उपाधि देकर आपका सत्कार किया।

कविता रचने की प्रतिभा आप में बाल्य काल से ही थी। आप 'बालकवि' कहे जाते थे। संस्कृत, हिन्दी, कन्नड़ एवं तेलुगु भाषाओं में आपने अनेक पद्य

लिखे हैं और उनमें से अधिकांश पद्य विभिन्न प्रसंगों में छप चुके हैं। अपने प्रभावशाली व्याख्यानों के द्वारा आपने आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में अपूर्व जागृति पैदा की। सन् १९३५ में आप कर्नाटक प्रदेश के यादवगिरि शंकर संस्कृत कालेज में प्रिंसिपल पद पर नियुक्त हुए। बाद में आपने सिकन्दराबाद में ही 'वीरशैव गुरुकुल' नामक संस्कृत पाठशाला तथा 'शैवभारती भवन' नामक पुस्तकालय की स्थापना की। 'विभूति' नाम के तेलुगु मासिक पत्र का सम्पादन भी आपने प्रारम्भ किया।

बहुमुखी प्रतिभा, कर्मठता एवं शास्त्रीय ज्ञान की गंभीरता के कारण आप सन् १९४४ में विजयादशमी के पवित्र अवसर पर जंगमवाड़ी मठ के जगद्गुरु पद पर प्रतिष्ठित किये गये। काशीपीठ के जगद्गुरु पद पर आप केवल चार साल ही रहे, लेकिन इस अल्पावधि में आपने जंगमवाड़ी मठ में एक 'ज्ञानमन्दिर' ग्रन्थालय की स्थापना की, जिसमें दस हजार से भी अधिक विभिन्न भारतीय भाषाओं एवं शास्त्रों के दुर्लभ प्राचीन ग्रन्थों का तथा ताड़पत्र पर लिखी सहस्राधिक हस्त-प्रतियों का संग्रह है। काशी में अपने ढंग का यह विशिष्ट ग्रन्थालय है। इस ग्रन्थालय का प्रत्येक ग्रन्थ आपकी अद्भुत अध्ययनशीलता का परिचय देता है। इस ग्रन्थालय की अनेक तालपत्रीय हस्त-प्रतियों की मैसूर विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या संशोधनालय ने माइक्रोफिल्म तैयार कर विद्वानों के लिए उनको सुलभ बना दिया है। **'शिवधर्म ग्रन्थमाला'** के नाम से एक ग्रन्थमाला का प्रकाशन भी आपने प्रारंभ किया था। अल्प अवधि में ही इसमें अनेक धार्मिक तथा दार्शनिक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। साहित्य के क्षेत्र में यह आपका बहुत बड़ा योगदान था। आयु के हर एक क्षण को आपने विद्या-सम्पादन तथा प्रसार में लगाया और इस ज्ञानसिंहासन को एक बार फिर ज्ञान की ज्योति से आलोकित कर दिया। इस ज्योति की झलक को वर्तमान पीठाधीश्वर भी जगाये हुए हैं, यह धार्मिक और सांस्कृतिक संस्कारों से संपन्न प्रबुद्ध भारतीय जनता के लिए परम संतोष का विषय है।

इसी महान् मनीषी की रचना **'पंचविंशतिलीलाशतकम्'** को भाषानुवाद तथा कथानकों के विस्तार के साथ प्रकाशित करते हुए हम गौरव का अनुभव कर रहे हैं। यहाँ भगवान् शिव की पच्चीस लीलाएँ वर्णित हैं। सूक्ष्मागम के उत्तरभाग के क्रियापाद के द्वितीय पटल में संक्षेप में इन लीलाओं का वर्णन

किया गया है और वातुलशुद्धाख्यतन्त्र के प्रथम पटल के अन्त (श्लो.१२६-१३५) में महेश के २५ अवतारों के रूप में इन्हीं की नामावली दी गई है। वीरशैवागम के ग्रन्थों में अन्यत्र भी यह नामावली देखने को मिलती है, अतः हमारी यह धारणा बनती है कि शैवागम साहित्य में कहीं न कहीं इन लीलाओं का एक साथ विस्तार से वर्णन मिलना चाहिए। अभी तो संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रकाशन संस्थान के सहायक सम्पादक **डॉ. ददन उपाध्याय** ने प्रधान रूप से पुराण-साहित्य की सहायता से इन कथाओं को विस्तार से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इनका यह प्रयास विशेष रूप से स्तुत्य है कि विशाल पौराणिक साहित्य का आलोडन कर पाठकों के सामने इन लीलाओं को विशद रूप से प्रस्तुत करने का उपक्रम किया। शैवागम साहित्य में इन लीलाओं के स्वरूप की खोज के लिए भी इस प्रकार के प्रयास की अपेक्षा है।

यद्यपि प्रस्तुत शतक में ९४ श्लोक ही हैं, तो भी भारतीय परम्परा के अनुरूप इसकी शतक संज्ञा सार्थक है। नित्याषोडशिकार्णव के आठ सौ श्लोकों को तन्त्रागमशास्त्र के महान् मर्मज्ञ आचार्य भास्करराय ने पूर्व चतुःशती और उत्तर चतुःशती के नाम से दो भागों में विभक्त कर दिया है। पूर्व चतुःशती में श्लोकों की संख्या ४०० से अधिक और उत्तर चतुःशती में कम मिलती है, तो भी दोनों भागों को चतुःशती के नाम से ही संबोधित किया जाता है। पंचाशिका, सार्धशतक, सप्तशती, साहस्री आदि के नामों से संबोधित ग्रन्थों की भी श्लोकसंख्या कहीं कम या अधिक देखने को मिलती है।

समुद्रमन्थन लीला के प्रसंग में वासुकि नाग के मुखभाग और पुच्छभाग को पकड़ने को लेकर हुए देवासुरविवाद की तथा भगवान् शिव के द्वारा हलाहल विष को कण्ठ में ही स्थापित कर लेने की कथाओं का विस्तार अथवा स्पष्टीकरण अपेक्षित है। इनका शैवागम-साहित्य-संमत स्वरूप ही यहाँ मान्य होना चाहिये। रामायण-महाभारत तथा प्राचीन पुराणों में इनका क्या स्वरूप है? इसकी तुलनात्मक समीक्षा भी अपेक्षित है। हमें यह याद रखना है कि अठारह महापुराणों में वायुपुराण परिगणित है, शिवपुराण नहीं। शिवपुराण में शिवसूत्र, शिवसूत्रवार्त्तिक, विरूपाक्षपंचाशिका, परापंचाशिका, महिम्नस्तव आदि ग्रन्थों के वचन उद्धृत मिलते हैं। गंगावतरण की कथा के प्रसंग में स्वच्छन्दतन्त्र के

अतिविस्तृत दशम भुवनाध्व पटल में भगवती गंगा की उत्पत्ति की कथा का तथा उसकी दशविध धाराओं की विभिन्न स्थानों में स्थिति का वर्णन मिलता है (१०.१७२-१८२)।

इन सबकी तुलनात्मक समीक्षा से इन लीलाओं के स्वरूप पर विशद प्रकाश पड़ सकेगा। ग्रन्थकार ने इन लीलाओं का वर्णन कर अपनी प्रगाढ़ शिवभक्ति को उजागर किया है। इसकी सहायता से प्रबुद्ध पाठक शिवभक्ति में तल्लीन हो सकेंगे। परवर्ती साहित्यकारों ने भक्ति को दशम रस के रूप में मान्य किया है। हमारी दृष्टि में इसी भक्तिरस का प्रस्तुत शतक में प्रधान रूप से प्रतिपादन किया गया है।

महाशिवरात्रि, संवत् २०६१ | भक्तिवशंवद
७.३.२००५ ई. | **व्रजवल्लभ द्विवेदी**
जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी | निदेशक

... ...

भावभूमि

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः।।

अर्वाचीन काल में बाह्य ज्ञान का विस्तार अत्यधिक हुआ है। आज का शिक्षित युवक-समाज बाह्य जगत् एवं उसके तत्त्व से प्राचीन वृद्धजनों की अपेक्षा अधिक जानकार है। भूगोलशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, खनिजशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जीवशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, मान्त्रिकशास्त्र आदि-आदि अनेक शास्त्रों के ज्ञाता हैं। प्रकृति के रहस्यों का उद्‌घाटन कर इसने प्रकृति पर शासन प्राप्त कर लिया है। परन्तु प्रकृति अनात्म है, परिवर्तनशील है और अस्थिर है। अत: इन पदार्थ-विद्याओं के पारङ्गत विद्वान् और अर्वाचीन नवीन शोधक शिवतत्त्व से— आत्मतत्त्व से बिलकुल अपरिचित हैं। अनन्त विद्याविद् होते हुए भी शिवतत्त्व का साक्षात्कार न होने से शोक-मोहादि सांसारिक प्रपञ्चों से कदापि मुक्त नहीं हो सकते हैं और सच्चे सुख और शान्ति का अनुभव नहीं प्राप्त कर सकते।

शास्त्रों में तीन प्रकार की विद्या कही गयी है—

१. अधिभूत विद्या— भूगोल, खगोल, वनस्पति आदि व्यावहारिक विज्ञान।

२. अधिदैव— अदृष्ट सत्ता का बोध कराने वाला शास्त्र, आन्तर और बाह्य जगत् का सम्बन्ध कराने वाला धर्मज्ञान।

३. अध्यात्मविद्या— केवल अन्तर्वस्तु को स्पर्श कराने वाला शास्त्र। **'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्'**— अध्यात्मविद्या का परमतत्त्व शिवतत्त्व या परमात्मतत्त्व है, जिसको उपनिषदों में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इस तत्त्व को— नैसर्गिक आनन्दमय स्वरूपविज्ञान को प्रकट करने का नाम ही **'शिवतत्त्व'** है।

जिस मनुष्य ने इस शिवतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है, उसके लिये संसार में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं रह जाती, जिसे प्राप्त करने की उसे इच्छा हो। सच्चा सुख हमारे भीतर ही है। शिव-समाधि लगाने से अमृततत्त्व का भीतरी पता लगता है। जो मनुष्य निज स्वरूप में, शिवस्वरूप में वास करता है, वही स्वतन्त्र है।

यह शिवतत्त्व-विचार सब वेदों का, शास्त्रों का, वेदान्त और प्राचीन एवं अर्वाचीन तत्त्वों की शिक्षा का अनुपम उपदेश है। वेदों में चार महावाक्य कहे गये हैं— **'अहं ब्रह्मास्मि'**, **'तत्त्वमसि'**, **'अयमात्मा ब्रह्म'**, **'प्रज्ञानं ब्रह्म'**— इन सबका अर्थ शिवतत्त्व है। इन सबका सारांश यही है कि अपनी आत्मा को जानो और फिर तुम जो कुछ चाहोगे, वही तुम्हें प्राप्त होगा। सामान्य जीव के दो नेत्र होते हैं। बाह्य दृष्टि का द्वार हमारे दोनों नेत्र हैं। इन्द्रियजन्य ज्ञान से मन की प्रज्ञा जागृत होती है। बाह्य जगत् को सत्य मानना, सर्वत्र भेदमय पदार्थ दृष्टिगोचर होना, इसे इन्द्रियग्राह्य ज्ञान अथवा लौकिक ज्ञान कहते हैं। इन्हीं दो दृष्टियों में संसार रहता है। तीसरी शिव-प्रज्ञा की दृष्टि, जिसे 'अन्त:प्रज्ञा' कहते हैं। वह शास्त्राध्ययन और अनुभव बल से बड़े प्रयत्न से प्रकट होती है।

वह एक ही चैतन्य सत्परब्रह्म शिव ही सत्य है। सम्पूर्ण विश्व में और विश्व के सब पदार्थों में अन्तर्यामी रूप से वास करता है, वह सर्वनियामक है, सर्वप्रकाशक है। मन, वाणी, बुद्धि एवं तर्क से अगम्य है। वह साक्षी चैतन्य शिव प्रत्येक जीव के अन्त:करण में प्रकाशित हो रहा है। वही सत्यस्वरूप अमृत आनन्द है। ब्रह्म आनन्द स्वरूप है। आनन्दस्वरूप ब्रह्म से प्राणियों का जन्म और जीवन है तथा प्रयाण के पश्चात् उसी में प्रवेश भी होता है, यथा— **'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।** (तैत्तिरीयो. ३/६)।

ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करने से हृदय में सत्तत्त्व का उदय होता है और 'ब्रह्म नहीं है'— ऐसा मानने से असदाचार का आरम्भ होता है। श्रुति की उक्ति है— **असन्नेव स भवति। असद् ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति।** (तैत्ति. २/६)।

ब्रह्म आनन्दस्वरूप होने से आत्मकाम है। उसे न कोई कमी है और न कुछ प्रयोजन। इस स्थिति में उसे सृष्टि-रचनादि में प्रवृत्त होने की क्या आवश्यकता हुई? इस जिज्ञासा की सम्भावना समझकर ब्रह्मसूत्रकार व्यास जी ने उत्तर दिया है—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

(ब्रह्मसूत्र, २/१/३३)

अभिप्राय यह है कि परब्रह्म का विश्वरचना आदि में प्रवृत्त होना, लोक में जीवन्मुक्त, आप्तकाम पुरुषों द्वारा बिना स्वप्रयोजन ही लोकहित में प्रवृत्त होने के समान लीलामात्र है। श्री पराशर जी का विष्णुपुराण में कथन है—

व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय।।

(वि.पु., १/२/१८)

जिस प्रकार खेलता हुआ बालक स्वभाववश किसी वस्तु को बनाता है और पुनः उसे बिगाड़ देता है, उस वस्तु के बनाने-बिगाड़ने में उसका कोई अन्य प्रयोजन नहीं रहता है, उसी प्रकार जगत् के सृजन-संहार में परब्रह्म का कोई अन्य प्रयोजन नहीं होता। सृजन-संहार लीलामात्र है। अप्रयोजनान्तर कृति ही लीला कहलाती है। क्रीडनशीलता आनन्द का स्वभाव है। इसीलिये आनन्दस्वरूप ब्रह्म पूर्णकाम होने पर भी लीला में संलग्न रहता है। यह कहा नहीं जा सकता कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के सृजन-संहार की लीला का आरम्भ कब हुआ और अन्त कब होगा? यह अनादि, अनन्त और नित्य-प्रवर्ती होने से नित्य-लीला है।

आनन्दस्वरूप ब्रह्म की लीला आनन्दस्वरूपा है। वस्तुतः स्वयं परब्रह्म ही नाना रूपों में प्रकट है। तैत्तिरीयोपनिषद् में उल्लिखित है कि परब्रह्म ने विचार किया कि— 'मैं प्रकट होऊँ और अनेक नाम-रूप धारण करके बहुत हो जाऊँ।' उसने तय किया, अपने संकल्प का विस्तार किया और जो कुछ देखने-समझने में आता है, उस समस्त जगत् की रचना कर उसी में प्रविष्ट हो गया, यथा— **स तप्तस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदं किं च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।** (तैत्तिरीयो. २/६)।

अतः सब लीला होते हुए भी आनन्द की लीला होने से आनन्दमयी है। इसे समझने पर आनन्द ही आनन्द है, परन्तु भावदृष्टि के बिना इस लीला को देखकर भी वास्तविक रूप में नहीं देखा जा सकता।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड परब्रह्म की लीलाविभूति में है। लीलाविभूति एकपाद विभूति है। इसके परे असीम अनन्त त्रिपाद विभूति है। वह विशुद्ध सच्चिदानन्दमयी है। वहाँ का सब कुछ सच्चिदानन्दमय है। वही परब्रह्म का परम-ध्यान है, जिसे परव्योम, परमपद, वैकुण्ठ, साकेत एवं गोलोकादि कहते हैं। अनेक नाम भाव के भेद से हैं। वहाँ उभय विभूति के स्वामी परब्रह्म परिकरों सहित सच्चिदानन्दमयी लीला में रत हैं। वहीं से अखिल ब्रह्माण्डों की बहुरंगी लीलाओं का भी सञ्चालन होता है।

परब्रह्म स्वतन्त्र होता हुआ भी प्रेमी के प्रेमाधीन है। इसलिये कभी-कभी स्वयं लीलाविभूति में भक्तों के प्रेमाधीन हो उनके कल्याण के लिये ही लीला-विग्रह धारण करके मनोहारिणी लीलायें करता है—

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई।
भगत हेतु लीलातनु गहई।।

(रा.च.मा., १/१४४/७)

लीलाविभूति की लीलायें सीमित देश-काल में होती हैं। इसलिये वे अनन्त प्रतीत होती हैं, किन्तु बात ऐसी नहीं है। परब्रह्म के नाम-रूप, लीला-धाम ये चारों परात्पर ब्रह्म ही हैं। सच्चिदानन्द-विग्रह और नित्य हैं—

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्।।

(वसिष्ठसंहिता)

अतः परम प्रभु की अवतारकालीन लीलायें भी नित्य ही हैं।

भगवान् की स्वाभाविक या कृत्रिम लीला भगवल्लीला कहलाती है। **'भगवतो या लीला सा भगवल्लीला। भगो यस्यास्तीति भगवान्'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार समग्र ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, शोभा (लक्ष्मी), ज्ञान और वैराग्य को 'भग' कहते हैं। जैसा कि कहा गया है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।

भग है जहाँ और जिसमें, वह भगवान् कहलाते हैं। यहाँ ऐश्वर्यबोधक 'भग' (भग ऐश्वर्ये) शब्द से मतुप् प्रत्यय करने पर भगवत् (भगवान्) शब्द निष्पन्न होता है। भगवान् की स्वाभाविक या कृत्रिम लीला भगवल्लीला है।

अब लीला शब्द पर दृष्टिपात करें— लयनमिति लीः, सम्पदादित्वात् क्विप् प्रत्यय करने से ली शब्द बनता है, लियं लातीति ला, इस प्रकार ली + ला + क + टाप् = लीला शब्द निष्पन्न होता है। इस लीला शब्द के शृङ्गार, भाव, चेष्टा, केलि, विलास और क्रीडाविशेष अर्थ होते हैं। जैसा कि हेमकोश में कहा गया है—

लीला केलिर्विलासश्च शृङ्गारभावजा क्रिया।

(हैम., १.७.३२)

नाट्यरत्नकोष में लीला के पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितम्।
मोट्टायितं कुट्टमितं विब्बोको ललितं तथा।।
विहृतं चेति मन्तव्या दश स्त्रीणां स्वभावजाः।।

साहित्यदर्पण में भी लीलाशब्द का व्याख्यान करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने प्रिय की अनुकृति को लीला कहा है, यथा—

अङ्गैर्वेषैरलङ्कारैः प्रेमभिर्वचनैरपि।
प्रीतिप्रयोजितैर्लीलां प्रियस्यानुकृतिं विदुः।।

(सा.द., ३.१४०)

विश्वकोश में भी लीलाशब्द का व्याख्यान मिलता है, यथा—

लीलां विदुः केलिविलासखेलाशृङ्गारभावप्रभवक्रियासु।

(विश्व., १५२.४५)

विष्णुपुराण में लीला को प्रकट और अप्रकट भेद से दो प्रकार का बताया गया है। यथा—

प्रकटाप्रकटा चेति लीला सेयं द्विधोच्यते।

इस प्रकार कर्म, क्रिया और लीला— तीनों एक दीखते हुए भी वास्तव में सर्वथा भिन्न हैं। जो कर्तृत्वाभिमानपूर्वक किया जाय तथा अनुकूल-

प्रतिकूल फल देने वाला हो, वह **'कर्म'** होता है। जो कर्तृत्वाभिमानपूर्वक न की जाय तथा जो फल देने वाली भी न हो, वह **'क्रिया'** होती है, जैसे— श्वासों का चलना, आँखों का खुलना और बन्द होना आदि। जो क्रिया कर्तृत्वाभिमान तथा फलेच्छा से रहित तो होती ही है, साथ-साथ दिव्य तथा संसारमात्र का हित करने वाली भी होती है, वह **'लीला'** कहलाती है। इस तरह सांसारिक लोगों के द्वारा **'कर्म'** होता है, मुक्त पुरुषों के द्वारा **'क्रिया'** होती है और भगवान् के द्वारा **'लीला'** होती है। ब्रह्मसूत्रकार कहते हैं—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

(ब्र.सू., २.१.३३)

ईश्वर की सृष्टिरचना आदि कार्य लोक में तत्त्वज्ञ महापुरुषों की तरह केवल लीलामात्र है।

भगवान् की छोटी से छोटी तथा बड़ी से बड़ी प्रत्येक क्रिया लीला होती है। लीला में भगवान् सामान्य मनुष्यों जैसी क्रिया करते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं। जैसा कि गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।

(गीता, ४.१४)

भगवान् की लीला दिव्य होती है— **जन्म कर्म च मे दिव्यम्** (गीता, ४.९)।

इस प्रकार बुद्धि से परे रहस्यमय कार्य-कलाप 'लीला' शब्द से अभिहित होता है; क्योंकि यह अनुभूत विषय है कि जब व्यक्ति परब्रह्म परमात्मा के कार्य-कलाप या सृष्टि का रहस्य नहीं समझ पाता, तब कहता है कि— परमेश्वर की यह अद्भुत लीला अपरम्पार है।

भगवान् आत्माराम होते हुए भी क्रीडा अथवा स्वकीय मनोरञ्जन के लिये— दूसरे शब्दों में लीला के लिये ही सृष्टि करते हैं। भगवान् की लीला अमोघ है। वे लीला से ही इस विश्व का सृजन, पालन और संहार करते हैं; किन्तु इसमें आसक्त नहीं होते। परम स्वतन्त्र होने के कारण वे प्राणियों के अन्तःकरण में अन्तर्हित होकर ज्ञानेन्द्रिय और मन के नियन्ता के रूप में उनके विषयों को तो ग्रहण करते हैं; परन्तु रहते हैं उनसे सर्वथा असम्पृक्त ही। उनकी एतद्विषयक स्थिति **पद्मपत्रमिवाम्भसा** — जैसी होती है।

जिस प्रकार अज्ञानवश मानव नट के संकल्प तथा वचनों से रचित माया-सृष्टि को यथावत् नहीं पहचान पाता, उसी प्रकार भगवल्लीलाओं को भी नहीं पहचान पाता। वे लीलामय विभिन्न लीलाओं के आश्रय होते हुए भी उनसे परे और विलक्षण हैं। वल्लभाचार्य जी कहते हैं—

सर्वाधारं वश्यमायमानन्दाकारमुत्तमम्।
प्रापञ्चिकपदार्थानां सर्वेषां तद्विलक्षणम्।।

(तत्त्वार्थ-दीप-निबन्ध, शास्त्रार्थ प्र.का., ६७)

'श्रीमद्भागवत' आदि के अनुसार भगवल्लीलाएँ दशविध मानी गयी हैं। जो इस प्रकार हैं— १. सर्ग, २. विसर्ग, ३. स्थान, ४. पोषण, ५. ऊति, ६. मन्वन्तर, ७. ईशानुकथा, ८. निरोध, ९. मुक्ति तथा १०. आश्रय। सर्वेश्वर की इन्हीं शाश्वत लीलाओं के अनुसार विश्व का खेल चलता रहता है।

भगवान् शिव तथा उनके नाम और उनकी लीलाएँ समस्त संसार के मङ्गलों के मूल हैं। वे कल्याणमय हैं, मङ्गलमय हैं और परम शान्तमय हैं। समस्त विद्याओं के मूलस्थान भगवान् शिव ही हैं। वे विशुद्ध, ज्ञानस्वरूप, सबके मूल कारण, मूलाधार, रक्षक, पालक, नियन्ता एवं ईश्वर के भी ईश्वर होने के कारण महामहेश्वर कहे जाते हैं। वे सभी देवताओं के भी परम दैवत या आराध्यदेव, सभी स्वामियों के स्वामी, नित्य, अनादि, अजन्मा और परब्रह्म पूर्णप्रकाशयुक्त परमात्मा हैं। वे दिग्वसन होते हुए भी भक्तों को अतुल ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, अनन्त राशियों के अधिपति होते हुए भी भस्मविभूषित, श्मशानवासी कहे जाने पर भी अर्धनारीश्वर, सदा कान्ता से आलिङ्गित रहते हुए भी मदनारि-मदनजित्, अज होते हुए भी अनेक रूप में आविर्भूत, गुणहीन होते हुए भी गुणाध्यक्ष, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त तथा सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं। यह उनकी लीला-विभूति का ही वैशिष्ट्य है।

आशुतोष एवं औढरदानी होने के कारण वे शीघ्र ही प्रसन्न होकर भक्तों को सर्वस्व— यहाँ तक कि स्वयं को भी प्रदान कर देते हैं, जो उनकी विषपानलीला से सूचित होता है। केवल देवता ही नहीं, अपितु ऋषि-मुनि, ज्ञानी-ध्यानी, योगी-सिद्ध-महात्मा, विद्याधर, असुर, नाग, किन्नर, चारण, मनुष्य आदि सभी भगवान् शिव के लीला-चरित्रों का ध्यान, संस्तवन,

स्मरण, चिन्तन करके आनन्दित होते रहते हैं और उनकी कृपा-लीला की अनुभूति करते हुए सदा के लिये उन्हीं के हो जाते हैं। भगवान् शंकर की समस्त जीवों पर परम अनुकम्पा है, अशेष ब्रह्माण्ड उन्हीं का स्वरूप है, शिवमय ही है। अन्तर्यामी रूप से सर्वत्र वे ही व्याप्त हैं। यह सम्पूर्ण संसार भगवान् शिव और उनकी शक्ति शिवा का ही लीला-विलास है। उनकी व्यक्त एवं अव्यक्त सभी लीलाओं में अनन्त कल्याण एवं अनन्त मङ्गल परिव्याप्त है। उनकी संहारलीला भी जीवों के हित के लिये ही होती है। यद्यपि उनका न कोई नाम है, न कोई रूप है, तथापि जितने नाम हैं और जितने भी रूप हैं, वे सब भगवान् शिव के ही हैं। जितनी भी क्रियायें हैं, वे सब शिवलीलापरक ही हैं। इसीलिये उनके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं, अनन्त गुण हैं, अनन्त कल्याणकारिणी चेष्टाएँ और अनन्त आनन्ददायिनी लीलायें हैं। इसीलिये वे लीलानट भी कहलाते हैं। प्रकृति नटी के सूत्रधार सर्वाधार, लीलावपुधारी भगवान् शिव ही हैं। उनकी लीलायें बड़ी ही विलक्षण और मनोरम हैं। उनका स्वरूप ही लीलामय है।

भगवान् शिव देवताओं के उपास्य तो हैं ही, साथ ही उन्होंने अनेक असुरों— अन्धक, दुन्दुभि, महिष, त्रिपुर, रावण, निवातकवच आदि को भी अतुल ऐश्वर्य प्रदान किया। इसके साथ ही ऐश्वर्य-मद से दुराचार को प्राप्त अन्धकासुर, गजासुर, भस्मासुर, त्रिपुरासुर आदि का संहार कर उनका भी उद्धार कर दिया। गजासुर का गजाजिन ही भगवान् शिव के अजिन-वस्त्र के रूप में सुशोभित होता है। कुबेरादि लोकपालों को आपकी ही कृपा से दिशाओं का स्वामित्व, निधिपतित्व, यक्षों का स्वामित्व, राजाधिराजत्व तथा राजराज का महनीय पद प्राप्त हुआ। भगवान् शिव की महिमा अनन्त है, वे सबके परम उपास्य देव हैं।

भगवान् शंकर की लीलायें बड़ी ही उदात्त एवं अनुकम्पापूर्ण हैं। वे ज्ञान, वैराग्य तथा साधुता के परम आदर्श हैं। समुद्रमन्थन के समय वासुकिनाग के मुख से भयङ्कर विष की ज्वालायें उठीं और समुद्र के जल में मिश्रित होकर वे कालकूट विष के रूप में प्रकट हो गयीं। वे ज्वालायें आकाश में व्याप्त होने लगीं, जिससे समस्त देवता, ऋषि, मुनि और चराचर जगत् जलने लगा। सभी देवों तथा ऋषि-मुनियों को दुःखित देखकर भगवान्

विष्णु के अनुरोध पर उन्होंने तत्काल उस विष को अपनी योगशक्ति से आकृष्ट कर कण्ठ में धारण कर लिया। इसीसे वे **'नीलकण्ठ'** कहलाये। जो विषधारण लीला यहाँ वर्णित है। उसी समय समुद्र से अमृत किरणों से युक्त चन्द्रमा भी प्रकट हुए, जिन्हें देवताओं के अनुरोध पर भगवान् शंकर ने उस उद्दीप्त गरल की शान्ति के लिये अपने ललाट पर धारण कर लिया और **'चन्द्रशेखर', 'शशिशेखर'** कहलाये। अपनी जटाओं में गंगा को धारण करने से **'गंगाधर'** कहलाते हैं। उन्होंने धर्म को ही अपना वाहन बना लिया है। स्कन्दपुराण के अनुसार यह प्रसिद्ध है कि एक बार भगवान् धर्म की यह इच्छा हुई कि मैं देवाधिदेव शंकर का वाहन बनूँ और तब दीर्घकाल तक उन्होंने इसके लिये तपस्या की। अन्त में भगवान् ने उन पर अनुग्रह किया और उन्हें अपने वाहन के रूप में स्वीकार किया। वे भगवान् धर्म ही नन्दी वृषभ के रूप में उनके सदा के लिये वाहन बन गये—

वृषो हि भगवान् धर्मः।

शास्त्रों में उनकी उपासना भी निर्गुण, सगुण, लिङ्ग-विग्रह तथा प्रतिमा-विग्रह में परिकरसहित अनेक प्रकार से निर्दिष्ट है। उनके अनेक रूपों में उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, मृत्युञ्जय, पञ्चवक्त्र, एकवक्त्र, पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति तथा योगीश्वर आदि अतिप्रसिद्ध हैं। भगवान् शिव का एक विशिष्ट रूप लिङ्गरूप भी है, जिसमें ज्योतिर्लिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग, नर्मदेश्वर तथा अन्य रत्नादि-धात्वादि एवं पार्थिवादि लिङ्ग हैं। इन सभी तथा अन्य रूपों की भी उपासना भक्तजन बड़ी श्रद्धा के साथ करते हैं।

'रुद्र' भगवान् शिव का ही नाम है। वेदों में उनके अनेक नामों में रुद्र नाम ही विशेष है। वहाँ बतलाया गया है कि रुद्र एक हैं और असंख्य भी हैं, यथा—

एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः। असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् (निरुक्त, १.५.१५)।

यह वचन भगवान् शिव के अनन्त माङ्गलिक लीलावतारों का ही परिचायक है। भगवान् शिव लीलार्णव हैं। उनकी असंख्य लीलाएँ हैं। उनके गुणों का गान करने में वाग्देवी सरस्वती भी समर्थ नहीं हो सकतीं। इसीलिये पुष्पदन्ताचार्य जी ने कहा है—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।।

(शिवमहिम्न., ३२)

यहाँ भगवान् शिव की पच्चीस लीलाओं का वर्णन कर सन्तोष करना पड़ रहा है; क्योंकि समस्त शास्त्रों के निष्णात आचार्य **श्री वीरभद्र शर्माजी**, जो श्री विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासन जंगमवाड़ी मठ के ८४वें जगद्गुरु श्री १००८ **वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामीजी** के अभिधान से प्रतिष्ठित हुए, उन्होंने **'पञ्चविंशतिलीलाशतकम्'** में भगवान् शिव के पच्चीस लीलाओं का वर्णन करते हुए स्तुति की है। स्तुतिग्रन्थ को **शैवभारती शोध प्रतिष्ठान** द्वारा प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया है। जङ्गमवाडी मठ के **जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी** महाराज के मन में यह प्रेरणा हुई कि इन लीलाओं की कथा भी यदि इन स्तुतियों के साथ दे दी जायें, तो भक्तों का बड़ा उपकार होगा। इन लीलाओं का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत करने का सौभाग्य जगद्गुरु महास्वामी जी के कृपाप्रसाद के रूप में मुझे प्राप्त हुआ। यहाँ उन कथाओं को शिवपुराण, श्रीमद्भागवत आदि विविध पुराणों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। वे कथायें हैं—

१. ताण्डवलीला, २. उमामहेश्वरलीला, ३. वृषभवाहनलीला, ४. महालिङ्गोद्भवलीला, ५. अर्धनारीश्वरलीला, ६. ब्रह्मशिरच्छेदलीला, ७. भिक्षाटनलीला, ८. दक्षिणामूर्तिलीला, ९. कङ्कालधारणलीला, १०. विषधारणलीला, ११. चन्द्रधारणलीला, १२. जलन्धरवधलीला, १३. चक्रप्रदानलीला, १४. गजासुरसूदनलीला, १५. दक्षाध्वरध्वंसलीला, १६. शरभावतारलीला, १७. कामदहनलीला, १८. गौरीविवाहलीला, १९. कुमारजननलीला, २०. त्रिपुरदहनलीला, २१. गङ्गाधारणलीला, २२. अन्धकासुरवधलीला, २३. मृत्युञ्जयलीला, २४. सुखावहलीला तथा २५. पार्थास्त्रप्रदानलीला।

इन लीलाओं के माध्यम से भगवान् शिव की दशविध लीलाओं का वर्णन कर उनके सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह के सामर्थ्य का

द्योतन किया गया है। लीलाविहारी शिव का लीला-वैचित्र्य सचमुच विलक्षण है। वे नाना प्रकार की लीलायें करके भक्तों के लिये शिवमार्ग को प्रशस्त करते हैं। ऐसे कल्याणकारक, विश्वव्यापी, विश्वरक्षक और विश्वेश्वर महादेव प्राणिमात्र के लिये स्मरणीय, नमनीय एवं वन्दनीय हैं।

भगवान् शंकर की विचित्र लीलायें हैं। सृष्टि, स्थिति, निग्रह, अनुग्रह और लय उनका ही लीला-विलास है। जो उनके लीला-विलास को जानता है, वह उन्हें प्राप्त कर लेता है। भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य जी ने शिवानन्दलहरी में कहा है—

क्रीडार्थं सृजसि प्रपञ्चमखिलं क्रीडामृगास्ते जनाः
यत्कर्माचरितं मया च भवतः प्रीत्यै भवत्येव तत्।
शम्भो स्वस्य कुतूहलस्य करणं मच्चेष्टितं निश्चितं
नित्यं मामकरक्षणं पशुपते कर्तव्यमेव त्वया।।

(शिवा.ल., ६६)

हे शम्भु! हे पशुपति! समस्त विश्व का सृजन आप क्रीडार्थ ही करते हैं। लोग आपके क्रीडामृग हैं। मुझसे आचरित जो भी कर्म है, वह आपकी तुष्टि के लिये ही है। मेरे सभी कार्य कौतूहलपूर्ण आपकी क्रीडा का ही कारण या प्रतीक होने से मेरी रक्षा करना आपका कर्तव्य ही है।

अव्याज-करुणासमुद्र भगवान् शिव की लीलाओं की पहचान केवल भक्तिपूर्ण हृदय से ही की जा सकती है। भक्तों के उपकार तथा भक्तों के उद्धार के लिये ही भगवान् की नाना प्रकार की लीलायें होती हैं। उन लीलाओं के स्मरण, दर्शन और श्रवण से भक्त का हृदय बाग-बाग हो जाता है। अतएव हमें सदा भगवल्लीला के श्रवण-स्मरण से तथा पठन-पाठन से जीवन को सफल बनाना चाहिये।

पञ्चविंशतिलीलाशतक का दूसरा साहित्यिक पक्ष भी अत्यन्त उपयोगी है। इस शतक में ९४ ही श्लोक हैं, जिनमें कुल १० प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसमें ६४ शार्दूलविक्रीडित, ११ स्रग्धरा, ५ शिखरिणी, ५ उपेन्द्रवज्रा, ३ इन्द्रवज्रा, २ मन्दाक्रान्ता, २ वसन्ततिलका, एक-एक वंशस्थ, उपजाति एवं अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास यमक शब्दालङ्कारों के साथ उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास एवं

स्वभावोक्ति अलङ्कार का सहज सुन्दर प्रस्तुतीकरण हुआ है। यद्यपि वीर, रौद्र, अद्भुत, शृङ्गार आदि रसों का वर्णन है, तथापि देवादिविषयक रतिप्रधान भावध्वनि या भक्तिरस का प्राधान्य है। प्रधानरूप से भगवान् शिव की स्तुति को उपस्थापित करने वाला यह स्तोत्र-काव्य है। कवि ने इस काव्य में अपनी विद्वत्ता, भाषा एवं भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। इस काव्य में शिवतत्त्व, शिवभक्ति एवं शिवसंस्कृति की अद्भुत त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। शिव की प्रस्तुत पच्चीस लीलाएँ शिवपुराण, लिङ्गपुराण, वातुलशुद्धतन्त्र, सूक्ष्मागम, शङ्करसंहिता आदि ग्रन्थों में वर्णित हैं। उन्हीं को आधार बनाकर कवि ने सरस, सरल काव्य का निर्माण कर भावध्वनि को अङ्गीरस के रूप में प्रवाहित किया है।

जिन ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों का सम्बल प्राप्त कर शिवलीलार्णव का अवगाहन कर किञ्चित् तथ्यों को प्रस्तुत करने का भगीरथ प्रयास किया हूँ, सर्वप्रथम उनके प्रति शतशः नमनपूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ।

परम सौभाग्य की बात यह है कि यह स्तुतिग्रन्थ **'पञ्चविंशतिलीलाशतकम्'** परमपूज्य विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासन, जंगमवाड़ी मठ के ८४वें लिंगैक्य **जगद्गुरु श्री वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामी जी** द्वारा पूर्वाश्रम में प्रणीत है, इस ग्रन्थ का प्रकाशन उन्हीं पुण्यश्लोक के जन्मशताब्दी वर्ष के पुण्यतम अवसर पर शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ द्वारा होने जा रहा है। चिर प्राचीन विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासन जंगमवाड़ीमठ के ८६वें **जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी** महाराज के कृपाप्रसाद के रूप में भगवान् शिव के लीलाओं का चिन्तन, मनन कर **'पञ्चविंशतिलीलाशतक : एक अध्ययन'** प्रस्तुत करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, अतः उन परम विभूतियों का स्मरण करते हुए ज्ञानपीठाधीश्वर जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी के आधमर्ण्य को स्वीकार करता हूँ तथा उनके चरणकमलों में सहस्रशः नमन निवेदन करता हुआ आभार व्यक्त करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

विश्वाराध्य श्री स्वामी जी के चरणकमलों तक मुझे पहुँचाने का श्रेय शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के निदेशक राष्ट्रियपंडित **श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी** जी को प्राप्त है। इसलिये उनके पादारविन्द में नमन निवेदन करता हुआ

उनकी अधमर्णता स्वीकार करता हूँ। इस प्रसङ्ग में मेरे उत्साह का वर्द्धन करने वाले **डॉ. गंगाधर केण्डदमठ** जी के प्रति प्रणामपुरस्सर आभार व्यक्त करता हूँ।

इस अवसर पर लेखन एवं प्रकाशन में अंगुली-ग्राहपूर्वक प्रेरित करने वाले सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रकाशन-संस्थान के निदेशक **डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी जी** के चरणों में प्रणतिपरम्परा को निवेदित करता हुआ उनकी कृतज्ञता स्वीकार करता हूँ।

अन्त में श्रद्धा एवं भक्ति के साथ माता अन्नपूर्णा एवं काशी विश्वनाथ के चरणकमलों में अपनी नतिपरम्परा को समर्पित करता हुआ उन्हीं की लीलाओं को उनको समर्पित कर कृपाप्रसाद का आकांक्षी हूँ।

विद्वद्वशवर्ती
ददन उपाध्याय
सहायक सम्पादक, प्रकाशन संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी
महाशिवरात्रि, २०६१ वैक्रमाब्द



विषयानुक्रमणिका



शिवपञ्चविंशतिलीलाशतकम्

वीरभद्रशर्मविरचितम्

भाषानुवादसहितम्

१. ताण्डवलीला

नित्योऽनादिगिरामगोचरगुणः सत्यो विराड्रूपतः
सृष्ट्वा सर्वजगच्चराचरमयं यः स्वेच्छया तत्पुनः ।
कल्पान्ते विनियोज्य चात्मनि विनोदेन प्रहृष्टो महा-
संहारात् स्वयमाततान नटनं सोऽव्यान्महेशोऽनिशम् ।।१।।

भाषानुवाद

१. ताण्डवलीला

नित्य, अनादि, वाणी के अगोचर गुणों वाले, अर्थात् वाणी जिनके समस्त गुणों का वर्णन नहीं कर सकती, सत्यस्वरूप भगवान् शिव विराट्रूप धारण कर समस्त चराचरात्मक जगत् की सृष्टि करते हैं और वे ही पुनः अपनी इच्छा से कल्प का अन्त होने पर सारी सृष्टि को अपने में समेट लेने की लीला करते हैं। लीला के रूप में किये गये इस महासंहार को देखकर वे हर्ष से पुलकित होकर निरन्तर ताण्डव नृत्य करने लगते हैं। इस ताण्डव नृत्य (लीला) में निरत भगवान् महेश्वर हमारी रक्षा करें।।१।।

मोहल्ले के लड़के इकट्ठा होकर तरह-तरह के घरौंदे बनाते हैं और बहुत मेहनत से बनाये गये इन घरौंदों को लात मार कर गिरा देते हैं। उस समय का उनका उल्लास देखते ही बनता है। लगता है भगवान् शिव की ताण्डव लीला का ही यह विलास है।

२. उमामहेश्वरलीला

स्त्रष्टुं शक्तिमभीप्सुनाथ विधिना स्वप्रार्थनायाः क्रिया-
शक्तिं स्वीयतनूजदक्षजनितां त्वं प्रोद्वहेत्यर्थितः।
तामुद्वाह्य जगच्चराचरमयं सन्तन्य धातुर्मुखा-
न्नित्यानन्दमुपैति यः स दिशतां सोमो महेशः सुखम् ।।२।।

३. वृषभवाहनलीला

आधारोऽस्म्यहमद्य सर्वजगतां मां वोढुमन्यः क्षम-
श्चिद्धर्मान्नहि विद्यते खलु ममेत्यालोच्य कालान्तकः ।
यावत्तं स्मरति स्म तावदखिलाश्चर्यप्रमोदावहां
धृत्वा तुङ्गवृषाकृतिं पशुपतेर्धर्मोऽभवत् सोऽग्रतः ।।३।।

यच्छीर्षं प्रणवः ककुच्छ्रुतिशिरो वक्त्रं तु पञ्चाक्षरा
रोमाणि स्मृतिमन्त्रतीर्थनिचयाः प्राणाश्च शैवागमाः ।

---

२. उमा-महेश्वर लीला

ब्रह्मा जी ने सृष्टि करने के निमित्त अपेक्षित शक्ति पाने की इच्छा से शिव जी से प्रार्थना की कि आप इसके लिये क्रियाशक्ति की अवतार मेरे पुत्र दक्ष की पुत्री से विवाह कर लीजिये। तदनुसार विवाह करके ब्रह्माजी के माध्यम से वे सारे चराचरात्मक जगत् का विस्तार कर स्वयं नित्यानन्द में निमग्न रहते हैं। वे उमासहित भगवान् शिव हमें अनन्त सुख प्रदान करें।।२।।

३. वृषभवाहन लीला

आज मैं इस समस्त जगत् का आधार हूँ। मुझे मेरी अपनी चैतन्यशक्ति (धर्म) के सिवाय कौन वहन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं। कालान्तक भगवान् महेश्वर जब इस तरह के विचार में निमग्न थे ही, उसी समय भगवान् पशुपति का वह धर्म समस्त प्रजा को आश्चर्य एवं प्रसन्नता में डुबो देने वाले बहुत ऊँचे वृषभ का स्वरूप धारण कर उनके सामने प्रकट हो गया।।३।।

इस वृषभ का सिर प्रणव-स्वरूप था। इसकी ककुद (कूबड) का निर्माण उपनिषदों से हुआ था, मुख पंचाक्षर मन्त्र से निर्मित था, इसके रोम-रोम में स्मृतियों, मन्त्रों और तीर्थों का निवास था और समस्त शैवागम प्राण-स्वरूप

त्र्यङ्गं नादकले च बिन्दुरपि यत्पादाश्च वेदास्तथा
शृङ्गे चादिरनादिरप्यवयवाः षड् यस्य शास्त्राणि षट् ।।४।।

देवस्तदा यो वृषभेश्वरं तं
देव्या सहारुह्य गणैः परीतः ।
देदीप्यतेऽस्मै वृषवाहनाय
देवादिदेवाय नमस्करोमि ।।५।।

४. महालिङ्गोद्भवलीला

येनाशेषजगज्जनिस्थितिलयाः सा शारदा यद्वधू-
र्यत्पुत्रप्रभवा मनुप्रभृतयो दिक्पालका यद्वशाः ।
तत्तादृग्भवतोऽपि देव इतरो नेत्यात्मसभ्यस्तुतः
पूर्वं जातु मदान्वितोऽजनि विधिः सृष्टिर्ययौ मन्दताम् ।।६।।

थे। नाद, कला और बिन्दु से इनके तीन अंग बने थे। समस्त (चारों) वेद इसके चार पादों में समाहित थे। आदि और अनादि नामक इसके दो सींग थे। सर्वज्ञता आदि इसके षड्विध गुण षड्विध शास्त्रों का प्रतिनिधित्व करते थे।।४।।

उस समय इस अद्भुत वृषभेश्वर को अपने सामने देखकर भगवान् महेश्वर देवी उमा के साथ उस पर आरूढ हो गये। अपने गणों से घिरे हुए इनकी शोभा अनुपम थी। उन वृषभवाहन देवों के आदिदेव भगवान् महेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ।।५।।

४. महालिंगोद्भव लीला

जो समस्त जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय (नाश) के कारण-स्वरूप हैं, प्रसिद्ध देवी सरस्वती जिनकी पत्नी हैं, मनु आदि युगपुरुष जिनके पुत्रों से उत्पन्न हुए हैं, समस्त दिक्पाल जिनके वश में हैं, हे ब्रह्मदेव! इन सब कार्यों को सम्पन्न करने वाला आपका जैसा अन्य कोई भी नहीं है। इस तरह से अपने सभासदों की स्तुति सुनकर ब्रह्मा जी किसी समय अहंकार से मतवाले हो गये और इसीके कारण उनके सृष्टि-कार्य में न्यूनता आ गई।।६।।

सृष्टि-कार्य में आई इस त्रुटि को जानकर विष्णु भगवान् ब्रह्माजी की सभा में चले आये और उनसे कहने लगे कि हे ब्रह्माजी! आप इस जगत् की केवल

तज्ज्ञात्वा हरिरागतो विधिसभां ब्रह्मंस्तवोत्पादके
मय्यग्रे सति पार्श्वगोल्लसनकृत् किं जल्पसि स्वाग्रताम् ।
इत्युक्त्वा विधिना कृतापहसितो रे रे रणस्तन्यतां
को वा साहसिको भवेदिह तदा स श्रेष्ठ इत्यब्रवीत् ।।७।।

सृष्ट्वा विष्णौ बहुबलमथ ब्रह्मणा युध्यमाने
बिभ्युर्लोकाश्चचलुरचला भूश्चकम्पे फणीन्द्रः ।
भुग्नो जातः सपदि जगदुद्धारकाच्छूलपाणे-
र्नान्यत्(स्) त्रातेत्यमरनिकराः क्रोशयामासुरीशम् ।।८।।

युद्धं मा कुरुतां मुधा त्वदधिको देवोऽधुनाविर्भवेद्
यः पश्येत्पदमस्य शीर्षमथवा युष्मद्द्वयेऽसौ महान् ।
इत्याकाशगिरा सहाविरभवद् दैत्यारिधात्रोः पुरो
नात्यन्तोऽपि निराकृतिः पशुपतिर्दिव्योरुलिङ्गाकृतिः ।।९।।

सृष्टि करते हैं। इस सृष्टि का आगे चलकर पालन तो मैं ही करता हूँ। इस तरह से तुम तो मात्र मेरे सहायक हो। तब फिर इतनी बढ़-चढ़कर बातें क्यों बनाते हो कि अपनी श्रेष्ठता की बातें बघारते हो। विष्णु के इतना कहने पर ब्रह्मा जी ने उनका उपहास करते हुए युद्ध के लिये ललकार कि मेरे सामने इस तरह का दु:साहस कौन करेगा कि अपने को मुझसे श्रेष्ठ समझे।।७।।

ब्रह्माजी की इस गर्वोक्ति को सुनकर विष्णु ब्रह्माजी के साथ गुत्थम्-गुत्था हो गये। इनको इस तरह से आपस में लड़ते हुए देखकर समस्त लोक भय से काँप उठे, पर्वत भी काँपने लगे, पृथ्वी भी चलायमान हो उठी और सर्पराज शेषनाग भी एक बार झुक गये। इस विषम स्थिति में अब भगवान् शंकर के सिवाय हमारी कोई रक्षा नहीं कर सकता, ऐसा विचार करते हुए समस्त देवगण शूलपाणि भगवान् शिव के समक्ष अपनी रक्षा की गुहार लगाने लगे।।८।।

उस समय यह आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि तुम आपस में युद्ध मत करो। तुम आपस में व्यर्थ ही झगड़ रहे हो। तुम दोनों से बढकर शक्तिशाली देवता का आविर्भाव अभी होने वाला है। उसके चरणों का अथवा सिर का क्रमश: तुम दोनों में जो कोई पता लगाकर पहले आ जायगा, वही तुम दोनों में श्रेष्ठ माना जायगा। इस आकाशवाणी के साथ ही ब्रह्मा और विष्णु के सामने दिव्य, आकाश-पातालव्यापी ज्योतिर्लिंग के रूप में भगवान् पशुपतिनाथ प्रकट

ललकारा

दृष्ट्वा तमद्भुतयुतौ हरिपद्मजातौ
धृत्वा वराहसितपत्रतनुं प्रशान्तौ ।
पादस्य तस्य शिरसश्च विलोकनोत्कौ
पातालमम्बरतलं प्रतिजग्मतुस्तौ ।।१०।।

मध्ये व्योमोर्ध्वतोऽग्रे विधिरभिपतता कैतकेनास्य शीर्षं
द्रष्टुं नार्होऽल्पशक्तिस्त्वमिति निगदितस्तेन साकं निवृत्तः ।
भग्नाशे तावदूर्ध्वागतवति च हरौ ब्रह्मदृष्टोऽस्य मूर्धे-
त्युक्त्वा केतक्यसत्यं मुररिपुशपनान्नाप रुद्रार्चनार्हाम् ।।११।।

ततो दिव्यं रूपं विधिमधुभिदोर्यः प्रकटयन्
स्तुवन्तौ सव्रीडौ सृजनभरणे तौ नियमयन् ।

हो उठे। उनकी यह आकृति न तो अत्यन्त प्रकट थी और न आँखों से ओझल ही थी।।९।।

इस आकाश-पाताल व्यापी ज्योतिर्लिंग को देखकर वे दोनों हरि और ब्रह्मा आश्चर्य-सागर में डूबने-उतराने लगे और शान्त भाव से विष्णु ने वराह का और ब्रह्मा ने हंस का स्वरूप धारण कर क्रमशः इस ज्योतिर्लिंग के पादतल को और शिरोभाग को देखने की अभिलाषा से पाताल और आकाश की तरफ बढने लगे।।१०।।

ऊपर आकाश की तरफ आगे बढ़ते हुए ब्रह्माजी की केतक (केवड़ा) पुष्प से मुलाकात हो गई। ऊपर से नीचे की तरफ गिरते हुए केतक ने ब्रह्माजी से कहा कि इस ज्योतिर्लिंग के शीर्ष भाग तक पहुँचना तुम्हारी शक्ति के बाहर है। ऐसा सुनकर ब्रह्मा जी उस केतक पुष्प के साथ वापस आगये। पादतल का दर्शन न होने से निराश हरि भी ऊपर आगये। विष्णु को आया देख केतक पुष्प ने ब्रह्माजी की तरफ से साक्षी दी कि ब्रह्माजी ने ज्योतिर्लिंग के शीर्ष भाग को देखा है। बाद में केतक पुष्प की साक्षी के असत्य सिद्ध होने पर भगवान् शिव के शाप से यह पुष्प शिवपूजा के अयोग्य हो गया।।११।।

इसके बाद भगवान् पशुपति ब्रह्मा और विष्णु के सामने अपने दिव्य स्वरूप में प्रकट हो गये। यह देखकर ये दोनों लज्जित हो उठे और इनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् शंभु ने इनको क्रमशः विश्व की सृष्टि करने और उसका पालन करने के कार्य में नियुक्त कर दिया। इस प्रकार प्रजा के दुःख को दूर करने के

शुचं लोकानां तन्मदमिव हरन् सौख्यकृदभूत्
स नः पायाच्छम्भुर्निगमनिकरावेद्यमहिमा ।।१२।।

५. अर्धनारीश्वरलीला

गर्वात् पूर्वकृताद् विनष्टसृजनाशक्तिः कदाचिद्विधिः
कुर्वंस्तीव्रतपस्ततो विमुदितं प्रत्यक्षमीशं प्रति ।
त्वत्साहाय्यकमन्तरेण भगवन् सृष्टिर्न शक्या मम
तत् त्वं मद्वपुषा समुद्भवसि चेत्सा स्यान्मयीत्यब्रवीत् ।।१३।।

मा मा मेति बहूदितैरपि तदा दुर्वारनैजाशयः
स्रष्टुः फालतलं विभिद्य जनितो गौर्यान्वितो यस्ततः ।
धृत्वा भैरवरूपमात्मसदृशाकाराढ्यकाल्या चिरं
क्रीडन् रुद्रगणांश्च शक्तिनिचयानुत्पादयामास सः ।।१४।।

साथ शिव ने ब्रह्मा और विष्णु के अहंकार को भी नष्ट कर सर्वत्र सुखकर बन गये। इस प्रकार समस्त निगमागम शास्त्रों के द्वारा भी जिनकी महिमा को नहीं जाना जा सकता, वे सुख-शान्ति के देवता शंभु हमारी रक्षा करें।।१२।।

५. अर्धनारीश्वर लीला

ब्रह्माजी ने पहले जो अहंकार का प्रदर्शन किया था, उसके कारण उनकी सृष्टि करने की सामर्थ्य नष्ट हो गई। उस समय वे तीव्र तपस्या करने लगे। इससे सन्तुष्ट हो भगवान् शिव उनके सामने प्रकट हो गये। तपस्या से प्रसन्न शिव को अपने सामने देखकर उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि हे भगवन्! आपकी सहायता के बिना मैं सृष्टि करने में असमर्थ हूँ। अतः आप मेरे शरीर से उत्पन्न हों, तो वह सामर्थ्य मुझे पुनः प्राप्त हो जायगी।।१३।।

इसके बाद नहीं, नहीं, नहीं; इस तरह से ब्रह्मा जी के बार-बार मना करने पर भी उस समय अपने संकल्प की अनिवार्यता को समझते हुए भगवान् महेश्वर ब्रह्मा जी के ललाट तल को भेदकर भगवती गौरी के साथ प्रकट हो उठे। इसके बाद इन्होंने स्वयं भयजनक भगवान् भैरव का और भीषण आकारवाली भगवती काली का रूप धारण कर चिरकाल तक उनके साथ क्रीडा विहार करते हुए रुद्रगणों और नाना प्रकार की शक्तियों की सृष्टि करने में लग गये।।१४।।

अथैष सुप्तोत्थ इवाब्जयोनि-
रुत्थाय शम्भोः करुणाकटाक्षान्(त्) ।
तद्भैरवाकारविलोकभीतः
शान्ताकृतिः स्या इति तं ययाच ।।१५।।

प्रीत्यै विधातुर्धृतसौम्यरूपो योऽत्रार्धनारीश्वरतामवाप।
तं नौमि सोमं रुचिरं प्रकामं धृतार्धसोमं कृतभक्तकामम्।।१६।।

६. ब्रह्मशिरच्छेदलीला

आसीनं प्रमदेन रत्नपटलीरम्याख्यसिंहासने
ब्रह्माणं सनकादयो मुनिवराः सभ्याः प्रणम्योत्थिताः ।
को नित्यः सचराचरेषु भुवनेष्वस्माभिरप्यन्वहं
ध्येयः को भवतोच्यतामिति पुरा पप्रच्छुरत्यादरात् ।।१७।।

इस घटना के उपरान्त कमलयोनि ब्रह्मा मानों सोकर उठे हो, इस तरह भगवान् शिव की कृपादृष्टि से उठ खड़े हुए। अपने सामने इस भयजनक आकार में प्रकट हुए सोम (उमा सहित) स्वरूप को देखकर भयभीत हुए ब्रह्माजी ने उनसे शान्त स्वरूप में प्रकट होने की प्रार्थना की।।१५।।

तब विधाता (ब्रह्मा) जी की प्रीति के लिये जिस सौम्य स्वरूप को भगवान् शिव ने धारण किया, वही इस लोक में अर्धनारीश्वर के रूप में प्रख्यात हुआ। भगवान् महेश्वर के इस उमा-महेश्वर के रूप में अत्यन्त कमनीय, ललाट पर अर्धचन्द्र से सुशोभित, भक्तों की सर्वविध कामनाओं को परिपूर्ण करने वाले अर्धनारीश्वर स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।।१६।।

६. ब्रह्मशिरच्छेद लीला

नाना प्रकार के अत्यन्त मनोरम रत्नों से जटित सिंहासन पर परम प्रसन्न मुद्रा में विराजमान ब्रह्माजी को घेरकर उस ब्रह्मसभा में सनक, सनन्दन जैसे मुनिप्रवर सभासदों के रूप में बैठे हुए थे। उन्होंने उठकर ब्रह्माजी को प्रणाम किया और आदरपूर्वक पूछने लगे कि इस सचराचर जगत् में नित्य (सदा स्थित रहने वाला) तत्त्व कौन सा है? हमारे जैसे मुनियों के द्वारा भी ध्येय तत्त्व कौन है? पुराने समय की यह बात है।।१७।।

इन्द्रोपेन्द्रहरादयः स्वहृदये ध्यायन्ति मां यं सदा
यः कुर्वे भुवनोदयस्थितिलयान् यः सर्वनिर्वाहकः ।
यं मां सर्वजना वदन्ति विबुधज्येष्ठं परब्रह्मणो
मत्को वाऽस्त्यधिकः परस्तदखिलैः पूज्योऽहमित्याह सः ।।१८।।

मानं तस्य हरिर्विबुध्य रभसादेत्याब्जयोनेः सभां
ब्रह्मन् सर्वजगत्पतौ स्मरहरे सर्वाश्रये शङ्करे ।
आवाभ्यामधिके सतीह मदतो मानं वृथा मा कृथाः
पारम्ये निगमाः प्रमाणमगजानाथस्य चेत्यब्रवीत् ।।१९।।

आविर्भूय तदा पुरोऽस्य निगमेष्वालम्ब्य मूर्तिं परां
पूज्यः शङ्कर एव सर्वजगदाविर्भावरक्षान्तकृत् ।
गर्वान्मा कुरु निन्दनामिति वदत्स्वाकर्ण्य पद्मोद्भवो
दृष्ट्वा सभ्यमुखान् विहस्य पुनरप्येवं व्यधाद्धेलनम् ।।२०।।

इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए ब्रह्मा जी ने कहा कि इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु), हर (रुद्र) आदि सभी देवता अपने हृदय में सदा मेरा ही ध्यान करते हैं। मैं ही समस्त लोकों की सृष्टि, स्थिति और लय का कर्ता हूँ, मैं ही सबकी मनोकामनाओं को पूरा करता हूँ। समस्त संसार मुझे ही समस्त देवताओं में श्रेष्ठ मानते हैं। मैं ही परब्रह्म का स्वरूप हूँ। मुझसे बढ़कर श्रेष्ठ अथवा गुणज्येष्ठ यहाँ दूसरा कौन है? अर्थात् कोई भी नहीं है। समस्त संसार का एकमात्र मैं ही पूज्य हूँ।।१८।।

ब्रह्माजी की इस तरह की अभिमान से भरी गर्वोक्तियों को सुनकर विष्णु भगवान् बड़े आवेश के साथ ब्रह्माजी की सभा में प्रविष्ट होकर बोले कि हे ब्रह्माजी! समस्त संसार के पति, सभी के आश्रयभूत, कामदेव को भस्म कर देने वाले भगवान् शंकर इस संसार में हम दोनों से बढकर हैं। ऐसी स्थिति में तुम अहंकार में भरकर हेंकडी मत दिखाओ। उन्होंने यह भी कहा कि अगजानाथ (पार्वतीपति) भगवान् शंकर की श्रेष्ठता में समस्त निगमशास्त्र (वेद) प्रमाण हैं।।१९।।

इसके साथ ही वहाँ समस्त वेदशास्त्र अपना-अपना श्रेष्ठ स्वरूप धारण कर ब्रह्माजी के सामने प्रकट हो गये और कहने लगे कि समस्त जगत् के आविर्भाव (सृष्टि), रक्षा (पालन) और अन्त (संहार) के मूल कारण, भगवान्

साकं भूतगणैः श्मशाननिलयोऽप्याम्नायजालैरसौ
यन्नित्यान्वितसर्वमङ्गल इति प्राप्तास्थिचर्माऽपि यत् ।
विख्यातो जगदेकपावन इति स्त्रीरूपकार्धाङ्गकोऽ-
प्यस्माकं परमः पुमानिति वदाम्येतत्किमित्यद्भुतम् ।।२१।।

एवं निन्दनतत्पराम्बुजभवज्ञानान्धकारं तदा
भेत्तुं भानुरिवोदितः पशुपतिः पञ्चाननः प्रोज्ज्वलः ।
उग्रः पञ्चदशेक्षणो दशभुजो भोगीन्द्रभूषो जटी
व्याघ्रीकृद्धर आविरास पुरतो भूतेश्वरः शङ्करः ।।२२।।

पञ्चास्यं तमजो निरीक्ष्य पुरतः पञ्चाननत्वं स्वयं
सम्प्राप्तुं वदनान्तरं प्रजनयन् गर्वाद्विलोक्याभितः ।

शंकर ही सबके परम पूज्य हैं, आप अहंकारवश उनकी निन्दा न करें। यह सुनकर ब्रह्माजी ने अपने सभासदों की ओर देखा और हँसकर वे पुनः इस तरह से शंकर की अवहेलना (अनादर) करने लगे।।२०।।

यह शंकर भूतगणों के साथ सदा श्मशान में निवास करते हैं, जो समस्त अमंगलों का घर है; तो भी कहा जाता है कि शास्त्रों के अनुसार ये सदा अविनश्वर मंगल को देने वाले हैं। ये सदा अस्थि (अपवित्र हड्डी) और चर्म (चमड़ा) को धारण किये रहते हैं, तो भी इनको समस्त जगत् को पवित्र बनाने वाला कहा जाता है। ये अपने आधे शरीर से स्त्री के रूप को धारण किये रहते हैं, तो भी कहा जाता है कि ये हमारे परम आराध्य पुरुष हैं। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि यह सब कैसी अद्भुत बाते हैं।।२१।।

इस तरह से शिव की निन्दा करने में लगे हुए ब्रह्मा जी के अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य के समान भगवान् पशुपति प्रकट हुए। ये पशुपति अत्यन्त प्रकाशमान पाँच मुखों से सुशोभित थे, इसका स्वरूप अतीव उग्र था, ये [१]पन्द्रह नेत्रों और दस भुजाओं से सुशोभित थे। भोगिपति (शेषनाग) को भूषण के रूप में अपने कण्ठ में पहने, जटाधारी, व्याघ्र के चर्म को वस्त्र के रूप में धारण किये हुए भगवान् भूतेश्वर शंकर उनके सामने प्रकट हो गये।।२२।।

चतुर्मुख ब्रह्माजी ने अपने सामने पाँच मुख वाले इस स्वरूप को देखकर स्वयं भी पाँच मुख वाला बन जाने की इच्छा से एक नये मुख को प्रकट कर लिया और चारों तरफ अहंकार से भरी दृष्टि को दौड़ाते हुए वे सिंह के समान

हर्यक्षं तमिभद्विषं पशुपतिं प्रारब्धवान्निन्दितुं
सुव्यक्तेऽजगजान्तरेऽजगजभिद्द्वेषो न किं हानये ।।२३।।

आधारो जगतां भवान् किल जगुस्त्वामेव वेदाः किल
मन्मुख्याऽमरनायकः खलु परं ब्रह्म त्वमासीः किल ।
इत्युच्चावचहास्यकृत्कमलभूशीर्षं क्रुधा पञ्चमं
चिच्छेद स्वनखाञ्चलैः पुरहरस्तस्यावलेपैः समम् ।।२४।।

शान्ते ब्रह्मणि तत्क्षणं पशुपते मा कृन्धि मूर्ध्नोऽपरा-
नित्यारोद्धुमिव स्वमूर्धसु करान् क्षिप्त्वात्मनिन्दापरे ।
नत्वा पादपयोजयोः स्तुवति यः कारुण्यकस्तं विधिं
सन्तोषं प्रणिनाय दुष्टमदहृत् पायात् कपाली स नः ।।२५।।

तेजस्वी नेत्रों वाले, गजासुर का नाश करने वाले भगवान् पशुपति की निन्दा करने में लग गये। अज (बकरी) और गज (हाथी) की तुलना वाले इस अज (ब्रह्मा) और गजभिद् (शंकर) का यह भारी अन्तर वाला परस्पर का द्वेष क्या हानिकर नहीं होगा?॥२३॥

पशुपति की निन्दा करते हुए ब्रह्माजी कहने लगे कि आप तो निश्चय ही इस समस्त जगत् के आधार हैं! यह बात भी प्रसिद्ध है कि समस्त वेदशास्त्र आपकी ही स्तुति करते हैं, गुणगान करते हैं! हमारे जैसे समस्त देवताओं के नायक आप ही हैं! इतना ही क्यों? इस जगत् के मूल आधार परब्रह्म भी तो आप ही थे! इस तरह की उपहास-भरी उल्टी-सीधी बातों से अपना उपहास उड़ाते हुए ब्रह्माजी के अभी हाल में प्रकट हुए पाँचवें मुख को, त्रिपुरों का संहार करने वाले शिवजी ने क्रोध में भरकर अपने नखों से, उनके अहंकार के साथ ही काट डाला॥२४॥

अपने पाँचवें मुख के कटते ही ब्रह्मा शान्त हो गये। तत्क्षण वे बोल उठे कि हे पशुपते ! मेरे अन्य मुखों को आप मत काटिये। इतना कहकर ब्रह्माजी ने अपने सिरों पर इस अभिप्राय से हाथों को रख लिया कि मानों वे इनको कटने से रोक रहे हों। इसके साथ ही वे अपनी निन्दा करने लगे, उनके चरण-कमलों में गिरकर वे करुणामूर्ति भगवान् शिव की स्तुति करने लगे। इस पर करुणासागर शिव ने ब्रह्माजी को सांत्वना देकर सन्तुष्ट किया। इस तरह से दुष्टों के दर्प का हरण करने वाले कपालपाणि भगवान् शिव हमारी रक्षा करें॥२५॥

७. भिक्षाटनलीला

भक्तेरात्मनि विष्णुमुख्यविबुधव्रातस्य जिज्ञासया
भोगीन्द्राभरणः सुधांशुविलसन्मौलिर्जटामञ्जुलः ।
धृत्वा ब्रह्मकपालकं निजकरे भिक्षाटनव्याजकः
शम्भुः सुन्दरविग्रहः स्मरपितुर्लोकं प्रतस्थे पुरः ।।२६।।

विष्वक्सेनमथात्र विष्णुभवनद्वारे निरोधोद्यतं
शूलाग्रं गमयंस्ततोऽन्तरगतः शम्भुर्हरेः फालजैः ।
रक्तौघैः सुचिरस्त्रुतैरपि न सन्तृप्ते कपाले स्वयं
तद्भक्त्या सुहितोऽनुगृह्य तमयात् स्वर्लोकपालं प्रति ।।२७।।

भोगीन्द्रशोभी धृतसर्वमङ्गलो
विभूतियुक्तो वृषभेशभासितः ।
आत्मेव भातीन्द्रपुरीति शङ्कर-
स्तां प्राविशद् द्रष्टुमिवात्तकौतुकः ।।२८।।

---

७. भिक्षाटन लीला

विष्णु आदि प्रमुख देवाताओं की मेरे प्रति कैसी भक्ति है? इसको जानने की इच्छा से सर्पभूषण, ललाट पर चन्द्रकला को धारण किये, जटाजूटधारी सुन्दर स्वरूप वाले भगवान् शिव अपने हाथ में ब्रह्मकपाल रूपी पात्र को लेकर भिक्षाटन करने के बहाने कामदेव के पिता भगवान् विष्णु के लोक के लिये निकल पड़े।।२६।।

वहाँ पहुँच कर उन्होंने विष्णुलोक के द्वार पर रास्ता रोक कर खड़े हुए विष्वक्सेन को देखा। उसको अपने त्रिशूल से वेधकर भगवान् शंभु विष्णुलोक में प्रविष्ट हो गये। वहाँ विष्णु के कपाल से निरन्तर निकलते हुए रक्तस्राव से जब शिव का वह कपालपात्र नहीं भरा, तो स्वयं विष्णु ही भक्तिभावपूर्वक उनके अनुचर बनकर उनके पीछे-पीछे स्वर्गलोक को जाने को उद्यत हो गये।।२७।।

सर्पराज शेष से जिनका कण्ठ सुशोभित है, समस्त मंगल चिह्नों को जो धारण करने वाले हैं, ललाट आदि स्थानों पर भस्म से सुशोभित, वृषभेश्वर रूपी वाहन पर विराजमान भगवान् शंकर, यह इन्द्रपुरी (स्वर्गलोक) तो मेरी

गच्छन्तं तमवेक्ष्य सुन्दरतनुं तत्र स्त्रियो मोहिताः
काश्चित् त्यक्तनिजक्रिया अनुययुः सोच्छ्वासमुत्कम्पनम् ।
काश्चित् तं परिवव्रुरात्तपुलकं सस्वेदमुद्गद्गदं
काश्चित् तेन बभाषिरेऽयमपि ताः प्रीताः कटाक्षैर्वधात् ।।२९।।

गत्वा शक्रगृहं समर्पयति सद्वस्तूनि भक्त्या हरौ
शम्भुस्तं मुदितोऽनुगृह्य विनतं वह्निं तथाऽऽनन्दयन् ।
गत्वा संयमिनीं च नारकिगणान् सन्तार्य कालार्चितो
धन्यानन्यदिगीश्वरान् विरचयन् प्रीतो हिमाद्रिं ययौ ।।३०।।

दृष्ट्वा तत्र शिवं प्रविष्टमुटजं योगिस्त्रियो मोहिता
भिक्षां भूरि वितीर्य तत्करतलस्पर्शात् प्रसूतात्मजाः ।

जैसी ही अत्यन्त सुन्दर लग रही है, ऐसा विचार कर उसको देखने के लिये कौतूहलवश उसमें पवित्र हो गये।।२८।।

प्रविष्ट

स्वर्ग में विचरण करते हुए सुन्दर शरीर वाले भगवान् शिव को देखकर वहाँ रहने वाली स्त्रियाँ उन पर मोहित हो गईं। उनके पीछे चलने लगीं। कुछ स्त्रियाँ पुलकांचित होकर पसीने से सराबोर, लड़खड़ाती वाणी से कुछ बड़बड़ाती हुई उनको चारों तरफ से घेर कर खड़ी हो गईं। अन्य स्त्रियाँ उनसे बातचीत भी करने लगीं और भगवान् शिव ने भी उनको अपने कृपाकटाक्षों से प्रसन्न कर दिया।।२९।।

भगवान् शिव के इन्द्र के अन्तःपुर में प्रविष्ट होने पर इन्द्र ने भक्ति-पूर्वक उनको अच्छी-अच्छी वस्तुएँ भेंट कीं और शिव ने भी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर उस पर अनुग्रह किया। वहाँ उन्होंने विनम्रतापूर्वक नमन करते हुए अग्निदेव को भी आनन्दविभोर कर दिया। इसके बाद ये यमपुरी भी गये और वहाँ रहने वाले नारकी जीवों का उद्धार किया। यमराज के द्वारा पूजित होने के बाद अन्य दिक्पालों को भी अपने दर्शन से धन्य-धन्य करने के बाद प्रसन्न मुद्रा में अपने गृहस्थान हिमालय जा पहुँचे।।३०।।

वहाँ भिक्षा ग्रहण करने के लिये पर्णकुटी में प्रविष्ट हो रहे शिव को देखकर तपस्वी जनों की गृहणियाँ मोहित हो गईं और वे उनको बार-बार ढेर सारी भिक्षा देने लगीं। भिक्षा देते समय शिव के करतल का स्पर्श होने से उनमें

जातास्तन्मुनयोऽवकर्ण्य पुरभिन्मायानभिज्ञाः क्रुधा
शापं चिक्षिपुरीश्वरे शतमखो दम्भोलिमब्धौ यथा ।।३१।।

भूयस्तैः कलिताभिचारदहनाज्जातान् विभूष्योरगान्
हत्वा व्याघ्रममुष्य चर्म कलयन् धृत्वा मृगं चायुधम् ।
गृह्णन्नर्चिरपोह्य शक्तिमपि योऽपस्मारमूर्धोपरि
युक्तो भूतगणैर्ननर्त विपदं हन्यात् स भूतेश्वरः ।।३२।।

८. दक्षिणामूर्तिलीला

ज्ञात्वाऽद्भुतैस्तच्चरितैस्तमीशं
स्तुत्वा चिरं योगिजनो ययाचे ।
क्षन्तव्यमज्ञानविजृम्भितं न-
स्त्वयोपदेष्टव्यमिहेति तत्त्वम् ।।३३।।

नाना प्रकार की मनोभावनाएँ जागने लगीं। यह जानकर त्रिपुरों का नाश करने वाले भगवान् शिव की माया को न समझ कर मुनिगण क्रोध के मारे उनको शाप देने लगे, मानो शक्र समुद्र पर वज्र का प्रहार कर रहे हों।।३१।।

वे मुनिगण शाप देकर ही शान्त नहीं हो गये, अपितु शिव के प्रति उन्होंने अनेक प्रकार के अभिचार कर्मों (कृत्यों) का भी प्रयोग किया। उन सबको शिव ने भस्म कर दिया और उस भस्म से उत्पन्न हुए सर्पों को अपना आभूषण बना लिया। व्याघ्र को मार कर उसके चर्म से अपने ओढने का वस्त्र बना लिया। आयुध के रूप में अपने हाथ में मृग को धारण कर लिया। अग्नि की जलाने वाली शक्ति को दूर कर उसे भी ग्रहण कर लिया और अपस्मार व्याधि को अपने सिर पर धारण कर लिया। सभी प्राणियों के स्वामी वह भगवान् शिव अन्ततः भूतगणों के साथ नाचने लगे। वे भगवान् भूतेश्वर हमारी सारी विपत्तियों का नाश करें।।३२।।

८. दक्षिणामूर्ति लीला

भगवान् शिव की अनेक अद्भुत लीलाओं की सहायता से उनको पहचान कर और चिरकाल तक उनकी स्तुति करके मुनिगण भगवान् से याचना करने लगे कि हमने अज्ञान के कारण जो आपका अपमान किया, उसे आप क्षमा कर दें और हमें यथार्थ तत्त्व का उपदेश करें।।३३।।

कपालं दत्त्वेशः सदयहृदयो भैरवकरे
क्षपानाथापीडः कटितटकलच्चर्मवसनः ।
जटी व्यालोत्तंसो वटतरुतटेऽबोधयदलं
मुनिभ्यस्तत्त्वं यः स दिशतु मम ज्ञानमधिकम् ।।३४।।

९. कङ्कालधारणलीला

पूर्वं कैटभयुङ्मधौ श्रुतिगणान् हृत्वा निमग्नेऽर्णवे
क्षीणेष्वध्वरहव्यकव्यनियमेष्वभ्यर्थितेनामरैः ।
आज्ञप्तो गिरिशेन दानवरिपुर्मत्स्याकृतिर्वारिधिं
गत्वा तं दनुजं निहत्य निगमाल्लँब्ध्वाऽमरेभ्यो ददौ ।।३५।।

ततस्तस्मिन् मत्स्ये लुठति मदधै(तो) घोरमुदधौ
सुरेभ्यः शृण्वन् सन् द्रुतमवनिमासन्नविपदम् ।

मुनिगण की इस प्रार्थना को सुनकर महेश्वर का हृदय दया से भर उठा। अपने हाथ के कपालपात्र को उन्होंने भगवान् भैरव को सौंप दिया। चन्द्रकला से सुशोभित, कमर पर व्याघ्रचर्म को धारण करने वाले, जटाजूटधारी, सर्पभूषण भगवान् शिव ने तब उन मुनियों को वट वृक्ष की छाया में बैठकर तत्त्व का भरपूर उपदेश किया था। वे हमें भी ज्ञान का उपदेश करें।।३४।।

९. कङ्कालधारण लीला

पुराने समय की बात है कि मधु और कैटभ नामक राक्षस वेदों का अपहरण कर समुद्र में छिप गये। वेदों के अभाव में यज्ञ-याग आदि का देवों और पितरों के निमित्त किये जाने वाले हव्य एवं कव्य आदि के नियमों का नाश होने लगा। उस समय देवताओं की प्रार्थना को सुनकर गिरिजापति शिव की आज्ञा पाकर दानवों के शत्रु भगवान् विष्णु ने मत्स्यावतार धारण कर समुद्र में प्रवेश किया। वहाँ पहुँच कर उन्होंने मधु और कैटभ को मार कर वेदों का उद्धार किया और उनको लाकर देवताओं को सौंप दिया।।३५।।

बाद में भगवान् शिव ने देवताओं से यह सुनकर कि वह मत्स्य तो समुद्र में बहुत उत्पात मचा रहा है और उसके कारण इस पृथ्वी पर बड़ा भारी संकट आने वाला है। उस समय भगवान् शंभु तुरन्त वहाँ पहुँचे और बिना विलंब किये क्षण भर में उस मत्स्य को मार डाला। तब उसके कंकाल को अपने हाथों

उपेत्याब्धिं शम्भुस्तमनिमिषमाहत्य च करे
दधत् तत्कङ्कालं जयतु जगदानन्दचरितः ।।३६।।

१०. विषधारणलीला

जात्वारुह्य गजं पुरा पुरपथे शक्राय सङ्गच्छते
दुर्वासाः प्रददौ मुदा पुरभिदो माल्यं प्रसादात्मकम् ।
जिष्णुस्तत्प्ररिगृह्य मूर्धनि दधे नागस्य सम्पन्मदात्
तद्धस्तेन गजोपकृष्य चरणेनाधः पिपेष क्षणात् ।।३७।।

दृष्ट्वेदं कुपितस्य तस्य यमिनः शापात् तदा नाकिनां
सम्पद्राक्षसनायकेन बलिना प्राप्ताऽथ देवव्रजः ।
नीत्वा मन्दरकन्दरे बहुदिनान्यन्ते विरिञ्चा(ञ्च्य)न्वितो
विष्णोः प्राह स यातु सिन्धुमथने श्रीः स्याद्व इत्याह स ।।३८।।

देवैस्तैर्गुरुसन्धिवश्यदनुजैः साकं भुजङ्गावृतं
क्षिप्त्वा मन्दरमम्बुधौ प्रमथिते तत्रोत्थितादुद्भटात् ।

में उठा लिया। इस कंकालधारण की लीला से जगत् को आनन्द से भर देने वाले भगवान् शिव हमें सर्वत्र विजय दिलावें।।३६।।

१०. विषधारण लीला

पुराने जमाने की बात है कि एक बार इन्द्र अपने ऐरावत हाथी पर चढकर राजमार्ग से जा रहे थे। उस समय दुर्वासा ऋषि ने प्रसन्न होकर इन्द्र को प्रसाद के रूप में माला समर्पित की। इन्द्र ने उसे ग्रहण कर ऐरावत हाथी के मस्तक पर रख दिया। तब उस हाथी ने मतवालापन दिखाते हुए अपनी सूंड से उसे खींचकर तुरन्त अपने पैरोंतले रौंद डाला।।३७।।

यह देखकर क्रोध से भरे मुनि दुर्वासा ने शाप दे दिया और उस शाप के कारण देवताओं की सारी संपत्ति, समस्त ऐश्वर्य दानवों के स्वामी बलि को प्राप्त हो गई। इसके कारण देवताओं को मंदराचल की गुफाओं में छिपकर रहना पड़ा। इसी तरह से बहुत समय बीत जाने पर देवगण ब्रह्माजी को आगे कर भगवान् विष्णु के पास पहुँचे और उनसे समुद्र-मन्थन की प्रार्थना की, जिससे उनकी खोई हुई लक्ष्मी पुनः प्राप्त हो जाय।।३८।।

क्ष्वेलादुग्रतरात् प्रतप्तभुवनाद्धावत्सु सर्वेषु तत्
पीत्वा यो भुवनं ररक्ष तमहं श्रीनीलकण्ठं भजे ।।३९।।

११. चन्द्रधारणलीला

भूयस्तेषु हराज्ञया जलनिधिं मथ्नत्सु तत्रोत्थितान्
श्री-गो-वाजि-गजाप्सर-स्तरुगणान् चिन्तामणिं कौस्तुभम् ।
संगृह्य स्वयमर्पितं हरिर्मुखैर्देवैर्विधुं यो मुदा
मूर्धालङ्करणं चकार शशिभृन्मौलिः स कुर्यात् सुखम् ।।४०।।

१२. जलन्धरवधलीला

पुरन्दरो जातु रिपोरभावाद्
भृशं समासादितबाहुकण्डूः ।

देवगुरु बृहस्पति की सलाह से देवता और दानव मन्दर पर्वत की मथनी और शेषनाग की रस्सी बनाकर समुद्र को जब मथने लगे, तब उस समुद्र से उठे अत्यन्त भीषण उग्रतर विष के ताप से प्रतप्त अपने-अपने भुवनों को छोड़ कर समस्त प्राणी भागने लगे। उस समय उस हलाहल विष को पीकर जिन्होंने इस भुवन की रक्षा की, उन भगवान् नीलकण्ठ का मैं भक्तिभाव से स्मरण करता हूँ।।३९।।

११. चन्द्रधारण लीला

भगवान् हर की आज्ञा से देव-दानव गण पुनः समुद्र का मन्थन करने लगे। तब समुद्र में से लक्ष्मी, कामधेनु, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, अप्सरा, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, कौस्तुभमणि आदि प्रकट हुए। इनको तो विष्णु, इन्द्र आदि ने अपने लिये रख लिया, किन्तु चन्द्र को इन्होंने भगवान् शंकर को सौंप दिया। शिव ने प्रसन्नमुद्रा से चन्द्रमा को लेकर इसे अपने ललाट का आभूषण बना लिया। वह चन्द्रचूड़ भगवान् शंभु सबको सुख प्रदान करें।।४०।।

१२. जलन्धरवध लीला

एक समय की बात है कि इन्द्र का जब कोई शत्रु नहीं बचा, तो उसकी भुजाओं में युद्ध के लिये खुजली चलने लगी, अर्थात् युद्ध करने के लिये

हरं ययाचे नमुचिक्षयादि
न युध्यतो मे रिपुरादिशेति ।।४१।।

वर्धिष्णोर्विहिताद् विषल्लयमतिर्जिष्णो न जाने क्वचित्
कश्चिद्वा रिपुकाङ्क्षिणं जगति को भोगी रुजं वाञ्छति ।
अश्रेयोऽर्थनमुत्सृजेदमिति शम्भूक्तेऽपि शक्रे हठं
कुर्वाणे कुबकेशफालदहनात् कोऽपि स्फुलिङ्गोऽपतत् ।।४२।।

तदा शम्भुः सिन्धुं सुरपजयिपुत्राय सुचिरात्
तपस्यन्तं बुद्ध्वा तदभिलषितापूरणधिया ।
स्फुलिङ्गः स्यादेष स्वरधिपरिपू राक्षस इति
तमच्छाचिक्षेपानलकणमथाऽसौ शिशुरभूत् ।।४३।।

उसकी भुजाएँ फड़कने लगीं। इन्द्र ने भगवान् शंभु से प्रार्थना की कि नमुचि आदि दैत्यों का नाश हो जाने से अब मैं युद्ध नहीं कर पाता, अत: आप अब यह बतावें कि मैं किसके साथ युद्ध करूं॥४१॥

वर्धिष्णु, अपनी उन्नति की कामना करने वाले जिष्णु, इन्द्र की विष की लता के जैसे अपने ही नाश के लिये पैदा हुई इस बात को सुनकर शिव ने कहा कि मुझे याद नहीं पड़ता कि कहीं भी कोई व्यक्ति स्वयं अपने शत्रु की तलाश में घूमता हो। इस जगत् में कोई भी भोगी व्यक्ति नहीं चाहता कि उसे रोग आकर घेर ले। यह तुम्हारी प्रार्थना उचित नहीं है, इसे तुम छोड़ दो। इस तरह से भगवान् शिव के समझाने पर भी इन्द्र ने जब अपनी हठ नहीं छोड़ी, तब कर्बुर (पिशंग) केश वाले भगवान् शिव के ललाट स्थित अग्निनयन से एक स्फुलिंग बाहर निकल पड़ा॥४२॥

उसी समय भगवान् शिव को सुरपति इन्द्र पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से पुत्र की कामना से चिरकाल से तपस्या करते हुए सिन्धु (सागर) की याद आ गई और उसकी अभिलाषा को पूरा करने की इच्छा से उन्होंने संकल्प किया कि मेरे अग्निनेत्र से निकला यह स्फुलिंग इन्द्र के शत्रु के रूप में राक्षस बन जाय। उनकी इस इच्छा के साथ ही यह अग्निकण समुद्र के पास जाकर शिशु (बालक) बन गया॥४३॥

श्रुत्वा तत्पृथुकस्य रोदनमजो ब्रह्माण्डभेदोद्भटं
गत्वाब्धिं च जलन्धराह्वयमथो कृत्वाब्धितुष्ट्यै शिशोः ।
दत्त्वा तज्जनकं विना तदितरावध्यत्वरूपं वरं
चक्रे राक्षसचक्रवर्तिनममुं जालन्धराख्ये पुरे ।।४४।।

सोऽयं जातु जलन्धरोऽथ सदसि क्रूरैः परीतोऽसुरै-
र्देवानां निवहः पुरा स्वपितरं निर्मथ्य रत्नादिकम् ।
जग्राहेत्यवकर्ण्य शुक्रवचनं संरम्भतः सैनिकैः
संयुक्तस्त्रिदशैर्नियुध्य सुचिरं सर्वस्वमाचक्रमे ।।४५।।

देवा युद्धपलायिता विधियुताः श्रीशं शरण्यं गता
इत्याकर्ण्य रणप्रियादथ मुनेः क्रुद्धः स रक्षोऽधिपः ।

पैदा होने के साथ ही उस बालक की सारे ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर देने वाली रोने की आवाज को सुनकर ब्रह्मा जी ने समुद्र के पास जाकर इस शिशु को देखा और समुद्र को प्रसन्न करने की दृष्टि से उसका नाम जलन्धर रख दिया। साथ ही उसे यह वरदान भी दिया कि अपने पिता के सिवाय दूसरा कोई भी व्यक्ति इसे मार नहीं सकेगा। बाद में उन्होंने जालन्धर नगर में इसको राक्षसों के चक्रवर्ती राजा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया।।४४।।

यह बात प्रसिद्ध है कि यही जलन्धर किसी समय अपनी राजसभा के क्रूर राक्षसगणों से घिरा हुआ जब राज्य कर रहा था, वहाँ अपने पुरोहित शुक्राचार्य से उसे यह जानकारी मिली कि किसी समय देवगण तुम्हारे पिता समुद्र को मथकर इसमें से रत्न आदि को निकाल ले गये थे। इतनी जानकारी मिलने पर वह जलन्धर क्रोध से भरकर अपने सैनिकों को साथ लेकर देवताओं से युद्ध करने के लिये निकल पड़ा। चिरकाल तक देवताओं के साथ युद्ध करने के उपरान्त जलन्धर ने देवताओं की सारी संपत्ति को अपने अधीन कर लिया।।४५।।

जलन्धर के साथ हुए इस युद्ध में देवगण भाग खड़े हुए। वे ब्रह्मा जी को अपने साथ लेकर लक्ष्मीपति विष्णु की शरण में चले गये हैं, कलहप्रिय मुनि नारद से ऐसा सुनकर क्रुद्ध हुआ वह राक्षसों का स्वामी जलन्धर शुम्भ को स्वर्ग का स्वामी बनाकर बड़ी भारी सेना की सहायता से सर्वत्र आतंक

शुम्भं स्वर्गपतिं विधाय विधृतावष्टम्भसेनान्वितो
वैकुण्ठं च निरुध्य भूरि युयुधे सादित्यदैत्यारिणाम् ।।४६।।

ततो मत्वा विष्णौ युधि निशिचरं दुर्जयममुं
प्रसन्नोऽहं वीर्यादयि सुररिपो ! किं तव हितम् ।
वदैतत् ते दद्यामिति वदति युक्त्या स सुरभिद्
ययाचे तं विष्णो वश(स) मम वशे सामर इति ।।४७।।

तत्प्रार्थनानुगुणमेव सहामरोघै-
र्विष्णुर्जलन्धरगृहे निवसन् चिरेण ।
ज्ञात्वाथ तं विधिवरादितरैरवध्यं
गूढं प्रधाप्य(व्य) गिरिशं शरणं प्रपेदे ।।४८।।

श्रुत्वा चारमुखात् सुरापसरणं दैत्याधिपः कोपितो
जि(हि)त्वा मां त्रिजगत्पतिं च विनतां (तान्) त्रातुं क ईशो भवेत्।

को फैलाता हुआ वैकुण्ठ तक जा पहुँचा और वहाँ आदित्य (सूर्य) सहित सभी दैत्यारियों (देवताओं) के साथ चिरकाल तक युद्ध करता रहा।।४६।।

उस समय विष्णु के मन में यह विचार आया कि यह राक्षस जलन्धर युद्ध में दुर्जेय है, अर्थात् शिव के वरदान के कारण मैं इसे जीत नहीं सकता। तब उन्होंने युद्ध का रास्ता छोड़कर उसे सांत्वना देते हुए विष्णु बोले कि हे देवशत्रु जलन्धर! तुम्हारे पराक्रम को देखकर मैं प्रसन्न हूँ। तुम अपने कल्याण के लिये क्या चाहते हो? उसे मुझे बताओ, वही मैं तुमको दे दूंगा। भगवान् विष्णु के युक्तियुक्त, सांत्वनाभरे इन वचनों को सुनकर देवताओं के शत्रु जलन्धर ने विष्णु से यह वर मांगा कि आप सभी देवताओं के साथ मेरी अधीनता स्वीकार करें।।४७।।

जलन्धर की इस प्रार्थना के अनुसार ही भगवान् विष्णु समस्त देवगण के साथ उसके गृह में निवास करने लगे। चिरकाल तक इसी तरह से रहते हुए उन्हें मालूम हुआ कि ब्रह्माजी के वरदान के कारण इसको अन्य कोई मार नहीं सकता, वे एक दिन चुपके से वहाँ से निकलकर भगवान् शंकर की शरण में पहुँच गये।।४८।।

जासूसों के मुख से विष्णु के निकल भागने की बात को जानकर वह दैत्यों का स्वामी क्रुद्ध हो उठा और बोला कि मैं तीनों लोगों का स्वामी हूँ।

इत्युद्घुष्य महेशवैरमिह ते न श्रेयसे स्यादिति
संरुद्धो भृगुणापि सैन्यसहितो रौप्याद्रिमाप द्रुतम् ।।४९।।

युद्ध्वा घोरतरं चिरं हरगणैर्दृष्ट्वा हतं स्वं बलं
क्रुद्धे दैत्यपतौ प्रवर्षति शरान् छित्वाथ तान् तत्क्षणम् ।
रूपं तस्य निजं प्रदर्श्य दयया हे वत्स ! ते शौर्यतः
प्रीतोऽस्म्यद्य तवेहितं वृणु ददामीत्याह तं शङ्करः ।।५०।।

लब्धज्ञाने तदास्मिन्नसुरपरिवृढे मत्कृतागः क्षमस्व
जन्मैतन्मे हरेति स्तुतिनमनमुखं याचमाने गिरीशः ।
चक्रेणामुं विभिद्य स्वपदलिखितभूजन्मना फालनेत्रे
संयोज्याथ प्रहृष्टं सुरगणमकरोद् यः स दद्यात् सुखं नः ।।५१।।

मुझे छोड़कर ऐसा कौन व्यक्ति है? जो अपनी शरण में आये शरणागतों की रक्षा कर सके। इस घोषणा के साथ ही, दैत्यगुरु शुक्राचार्य के समझाने पर भी कि भगवान् महेश्वर के साथ वैर करना ठीक नहीं है, वह जलन्धर अपनी सेना को साथ लेकर शिव के निवासस्थान हिमालय पर द्रुत गति से आक्रमण कर बैठा।।४९।।

वहाँ उसका रुद्रगणों के साथ चिरकाल तक भयंकर युद्ध होता रहा। उसमें अपनी सेना के हुए विनाश को देखकर वह दैत्यपति अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और महेश्वर पर भयंकर वाणों की वृष्टि करने लगा। भगवान् महेश्वर ने उन सबको तत्काल छिन्न-भिन्न कर डाला। बाद में उस पर दया करते हुए उसे अपने वास्तविक स्वरूप को दिखाकर वे बोले कि हे वत्स ! तुम्हारे पराक्रम को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आज तुम्हें जो कुछ चाहिये माँगो। तुम्हारी इच्छा को मैं अवश्य पूरी करूँगा, ऐसा भगवान् शंकर ने उससे कहा।।५०।।

भगवान् शंकर की वाणी को सुनकर उस जलन्धर को यह ज्ञात हो गया कि मेरे सामने तो साक्षात् शिव ही उपस्थित हैं। समस्त असुर परिवार के साथ वह प्रार्थना करने लगा कि हे भगवन्! मेरे अपराध को आप क्षमा करें, मेरे इस निकृष्ट जन्म से मुझे छुटकारा दिलावें। भगवान् शंकर ने उसकी इस विनीत प्रार्थना को सुनकर चक्र से उसके सिर को काट डाला और अपने पैरों पर लुढ़के हुए उसके शरीर से निकले हुए तेज को पुनः अपने ललाट पर स्थित अग्निनेत्र में मिला लिया। इस तरह से जलन्धर का वधकर भगवान् शिव ने देवताओं को प्रसन्न कर दिया। वे भगवान् महेश्वर हमें भी सब प्रकार का सुख प्रदान करें।।५१।।

१३. चक्रप्रदानलीला

तुष्टं जात्वथ शङ्करं स्वतपसा स्वामिन् जगत्य(त्यु)द्धत-
क्रव्यादेशजलन्धरक्षयकृते चक्रं त्वया निर्मितम् ।
मह्यं देयमितीन्दिरापरिवृढे स्वं याचमाने हरः
प्रीतोऽस्मै विततार चक्रमतुलं सूर्येन्दुवह्न्यात्मकम् ।।५२।।

अक्षद्यूतविधौ पुरा क्षुपदधीच्योर्जातु जाते रणे
स्वे भक्ते क्षुपभूपतौ प्रणयतश्चक्रं दधीचौ हरिः ।
क्षिप्त्वा तन्मुनिनेशभक्तिबलतश्चक्रे हते तत्कृते
शम्भुं पूजयितुं सहस्रकमलैः प्रारब्धवान् प्रत्यहम् ।।५३।।

कदाचिदेकोनसहस्रपद्मैः
संयोज्य नेत्रं हरिणार्चितो यः ।

---

१३. चक्रप्रदान लीला

अन्ततः अपनी तपस्या से सन्तुष्ट हुए भगवान् शंकर से इन्दिरा (लक्ष्मी)-पति विष्णु ने याचना की कि हे स्वामिन् ! आपने इस जगत् में अत्यन्त उद्धत बने राक्षसों के अधिपति जलन्धर के वध के लिये जिस चक्र की रचना की थी, उसे आप मुझे दे दीजिये। इस तरह अपने लिये चक्र की मांग करने वाले विष्णु पर प्रसन्न होकर शिव ने उस अनोखे सूर्य-चन्द्र-वह्नि से उत्पन्न चक्र को उन्हें सौंप दिया।।५२।।

पुराने समय की बात है कि पासों (अक्ष) की सहायता से जुआ खेलते समय राजा क्षुप और दधीचि में आपस में झगड़ा खड़ा हो गया। अपने भक्त राजा क्षुप के प्रति स्नेह के कारण भगवान् विष्णु ने दधीचि के ऊपर चक्र से प्रहार किया। भगवान् महेश्वर के प्रति भक्तिभाव से प्राप्त शक्ति के आधार पर मुनि दधीचि ने उस चक्र के प्रहार को निष्फल बना दिया। अपनी इस निष्फलता को देखकर विष्णु पुनः सर्वत्र अप्रतिहत चक्र की प्राप्ति के लिये प्रतिदिन एक हजार कमल-पुष्पों से भगवान् शिव की आराधना करने लगे।।५३।।

इस तरह प्रतिदिन शिव की आराधना में लगे विष्णु ने एक दिन देखा कि एक हजार कमलों में एक पुष्प कम पड़ गया है। उस समय उन्होंने अपने

तुष्टः पुनश्चक्रमदात्पुरेव
श्रीशाय शम्भुः स करोत्वभीष्टम् ।।५४।।

१४. गजासुरसूदनलीला

कावेरीजन्मशैले कृततपसि मुनौ कुम्भयोनौ कदाचिद्
गन्धर्वः कोऽपि गच्छन् गगनभुवि सहारुह्य वध्वा विमानम् ।
तस्या मूर्धस्य माल्यं तदुपरि विसृजन् गर्वतस्तेन कोपा-
च्छप्तो मत्तो गजः सन् त्रिजगदभिभवन् दुर्जयोऽभूद् वृषाद्यैः ।।५५।।

दिक्ष्वाधाव्य गजासुरे त्रिभुवनान्युच्चावचं हिंसति
देवास्तद्व्यथिता भृशं कमलभू- श्रीशौ शरण्यं ययुः ।

नेत्र को ही निकालकर भगवान् शिव को समर्पित कर दिया। उनकी इस उत्कृष्ट भक्ति को देखकर सन्तुष्ट हुए शंभु ने पुनः उन्हें चक्र प्रदान किया। वे भगवान् शिव सबकी मनोकामनाओं को पूरा करें।।५४।।

१४. गजासुरसूदन लीला

एक समय की बात है कि जब कावेरी नदी के उद्गम-स्थल मलयाचल पर कुंभयोनि (कुंभ से उत्पन्न) मुनि अगस्त्य तपस्या में निमग्न थे, उस समय कोई गन्धर्व अपनी पत्नी के साथ विमान पर चढ़कर आकाश मार्ग से जा रहा था। अहंकारवश उसने अपनी पत्नी के गले की माला को मुनि अगस्त्य के ऊपर डाल दी। इससे क्रुद्ध होकर मुनि ने उस गन्धर्व को शाप दे दिया। उस शाप के कारण वह मदमत्त हाथी बन गया और तीनों लोगों में आतंक मचाने लगा। वह नन्दीश्वर आदि से भी दुर्जेय हो गया।।५५।।

यह गजासुर सभी दिशाओं में दौड़ता हुआ सारी त्रिलोकी को अपने आक्रमण से रौंदने लगा। उसके इन हिंसक आक्रमणों से अत्यन्त पीडित हुए देवगण कमलजन्मा ब्रह्मा और श्रीपति विष्णु की शरण में पहुँचे। अपने पूरे पराक्रम के साथ ब्रह्मा और विष्णु गजासुर के साथ चिरकाल तक युद्ध करते रहे, किन्तु अन्ततः गुजासुर ने इन दोनों को परास्त कर दिया। तब वे कालहर,

तौ तेनातिबलान्वितौ चिरतरं युध्वाऽमुना निर्जितौ
गत्वा कालहराय तस्य चरितं विज्ञापयामासतुः ।।५६।।

तच्छ्रुत्वा रभसादुपेत्य करिणं बाणेन भित्वा गले
गन्धर्वेण ततो निजाकृतिजुषा सम्प्रार्थितस्तत्क्षणात् ।
दत्त्वास्मै गणतां गजासुरहतेश्चिह्नं तदीयत्वचं
धृत्वा यः प्रमदान्ननर्त दिशतु श्रेयः स चर्माम्बरः ।।५७।।

१५. दक्षाध्वरध्वंसलीला

दक्षो जातु विधिं समेत्य भगवन् द्रष्टुं सुतां मां पुरा
रौप्याद्रिं गतमीश्वरोऽतिविभवश्चक्रे न लक्ष्यं दृशोः ।
एतस्मादवमन्तुमध्वरमहं कर्तुं यते तं विने-
त्यालोच्याब्जजसम्मतीकृतसुरैर्यष्टुं समारब्धवान् ।।५८।।

काल के भी महाकाल भगवान् शंकर के पास जाकर गजासुर के दुष्कृत्यों का वर्णन करने लगे।।५६।।

ब्रह्मा और विष्णु से गजासुर की उद्दण्डता को सुनकर भगवान् शिव अत्यन्त तीव्र गति से गजासुर के पास पहुँचे और उसके गले को बाण से बींध डाला। इसके साथ ही वह गन्धर्व अपना स्वरूप धारण कर वहाँ से निकला और अपनी प्राणरक्षा की प्रार्थना करने लगा। आशुतोष भगवान् ने उस पर प्रसन्न हो अपने गणों में उसे मिला लिया। गजासुर के वध के चिह्न के रूप में उन्होंने उस गज के चर्म को वस्त्र के रूप में धारण कर लिया और खुशी के मारे नाचने लगे। वह चर्माम्बरधारी भगवान् शिव सबका कल्याण करें।।५७।।

१५. दक्षाध्वरध्वंस लीला

किसी समय दक्ष प्रजापति ब्रह्माजी के पास जाकर बोले कि हे भगवन् ! एक बार जब मैं अपनी पुत्री से मिलने हिमालय गया था, तब महेश्वर शिव अपने वैभव के मद में भरकर मेरी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। इस अपमान का बदला लेने के लिये मैं एक ऐसा यज्ञ करना चाहता हूँ, जिसमें उनको न बुलाया जाय। इस पर ब्रह्माजी की स्वीकृति मिल जाने पर सभी देवताओं की सहायता से दक्ष प्रजापति यज्ञ का अनुष्ठान करने में लग गये।।५८।।

दाक्षायण्यथ नारदेन तदिदं श्रुत्वा पितुर्दुर्मतिं
मार्ष्टुं यज्ञकुटीमुपेत्य बहुधा नश्येन्निरीशः क्रतुः।
तन्मा मेति निवारितेऽपि गिरिशं दक्षे निनिन्दत्यसौ
त्यक्त्वा तज्जनितं कृधाङ्गमनले जाता हिमाद्रेस्ततः ।।५९।।

ज्ञात्वा तच्चरितं करालविचलद्भ्रूत्रस्तलोके हरे
कोपात् तत्क्षणमग्रतः समुदितं श्रीवीरभद्रं क्रतुम्।
हन्तुं प्रेषयति द्रुतं सरभसाद् गत्वा मखे सङ्गतै-
र्युध्वा ब्रह्ममुखामरैर्बहुतरं व्यद्रावयद् दिक्षु तान् ।।६०।।

धावन्तं मृगरूपतो मुररिपुं भित्वाथ तत्प्रार्थितो
वीरोऽस्याजिनमासनं जपतपोयज्ञोपयोग्यस्त्विति।
दत्वास्मै वरमुत्तमाङ्गमपि दक्षस्य प्रलूयानले
हुत्वा तद्वनितार्थितोऽजशिरसं दक्षं चकार क्षणात् ।।६१।।

नारद मुनि से अपने पिता की दुर्गति की इस बात को सुनकर दाक्षायणी, दक्ष प्रजापति की पुत्री सती इस भूल को सुधारने की दृष्टि से अपने पिता की यज्ञशाला में जाकर उन्हें समझाने लगीं कि महेश्वर की उपस्थिति के बिना यह यज्ञ नष्ट हो जायगा। ऐसा नहीं होना चाहिये। सती के बार-बार समझाने पर भी दक्ष प्रजापति जब महेश्वर शंकर की निन्दा करने से नहीं रुके, तब दक्ष प्रजापति से प्राप्त अपने शरीर को सती ने अग्नि को समर्पित कर दिया। इसके बाद हिमालय की पुत्री पार्वती के रूप में सती ने नया जन्म लिया।।५९।।

इस वृत्तान्त को सुनकर भगवान् शंकर की क्रोध के मारे भृकुटि तन गई। इसे देखकर सारा जगत् भय से कांपने लगा और उनकी क्रोधाग्नि से तत्काल उनके सामने वीरभद्र प्रकट हो गये। शिव ने वीरभद्र को दक्ष के उस यज्ञ का नाश कर देने के लिये भेजा। वीरभद्र आवेश में भरकर बड़ी तेजी के साथ वहाँ पहुँचे और उस यज्ञ में संमिलित हुए ब्रह्मा आदि सभी प्रमुख देवताओं के साथ भयंकर युद्ध कर उनको सभी दिशाओं में भगा दिया।६०।।

मृग का रूप धारण कर भागते हुए मुररिपु (मुर नामक दैत्य का वध करने वाले विष्णु) को इन्होंने घायल कर दिया। वीरभद्र ने प्रार्थना करने पर उनको यह वर प्रदान किया कि आज से मृगचर्म का आसन जप, तप, यज्ञ आदि के लिये अत्यन्त पवित्र माना जायगा। इसके बाद क्रुद्ध वीरभद्र ने दक्ष

ततो निवृत्तं सुतवीरभद्रं
हतोद्धसारातिमखं निरीक्ष्य।
प्रीतो य आनन्दयदध्वरारि-
श्चैको विहारी स ममास्तु शम्भुः।।६२।।

१६. शरभावतारलीला

स्वामिन् क्रूरतरं हिरण्यकशिपुं विष्णुर्नृसिंहात्मना
हत्वा तद्रुधिरं निपीय समदो लोकान् भृशं बाधते।
तद्धिंसां परिहृत्य पाहि जगदित्यभ्यर्थितो निर्जरैः
शम्भुः प्रेषयति स्म जातु नृहरिध्वंसाय वीरं सुतम्।।६३।।

वीरेशो रभसादुपेत्य नृहरिं विष्णोर्जगद्रक्षिणो
नार्हं ते जगदर्दनं जहि जहीत्युक्त्वाप्यशान्तं रणे।

के सिर को काट कर यज्ञीय अग्नि में उसकी आहुति दे दी। दक्ष की पत्नी के प्रार्थना करने पर भगवान् शिव ने कटे हुए दक्ष के सिर पर बकरे के सिर को जोड़कर उसे तत्क्षण जीवित कर दिया।।६१।।

इस तरह से दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर वापस आये अपने पुत्र वीरभद्र के इस अद्भुत पराक्रम को देखकर शिव अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और उसके पराक्रम की प्रशंसा कर वीरभद्र को आनन्द-विभोर कर दिया। इस प्रकार दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर अकेले विचरण करने वाले शंभु हमें सुख-शान्ति प्रदान करें।।६२।।

१६. शरभावतार लीला

हे स्वामिन्! (भगवन् शिव)! भगवान् विष्णु ने नृसिंहावतार धारण कर अत्यन्त क्रूर हिरण्यकशिपु को मारकर उसके रुधिर को पीकर मतवाले हो उठे हैं और अब सारे जगत् को भयंकर पीड़ा पहुँचा रहे हैं। उनकी इस हिंसक प्रवृत्ति को रोककर आप इस जगत् की रक्षा कीजिये, इस तरह की देवताओं की प्रार्थना को सुनकर भगवान् शंभु ने अपने पुत्र वीरभद्र को नृसिंहावतार के भय से जगत् के उद्धार के लिये भेजा था।।६३।।

शिव की आज्ञा से वीरभद्र तत्काल बड़ी तेजी से नृसिंह का स्वरूप धारण किये श्रीविष्णु के पास पहुँचे और उनको समझाने लगे कि त्रिलोकी का रक्षण

जित्वा तं शरभात्मना तदजिनं हृत्वार्पयत्यासनं
कृत्वा तत्परमेश्वरः प्रमुदितः पायादपायात् प्रभुः ।।६४।।

१७. कामदहनलीला

धाता जातु हरिं ननाथ भगवंस्तीव्रं तपस्तारकः
कृत्वा पूर्वमुमेशवीर्यजनितं षाण्मातुरार्भं विना ।
लब्ध्वान्यैरवधार्हतात्मकवरं मत्तः प्रमत्तोऽधुना
लोकानर्दयतेऽस्य नाशविषये साहाय्यकृत् स्या इति ।।६५।।

विष्णुस्तत्र समादिदेश मदनं सूनो ! शिवा मेनका-
पुत्रीभूय सुवर्णकूटशिखरे योगैकनिष्ठं शिवम् ।

करने वाले आपका यह जगत् को पीड़ा पहुँचाने वाला कार्य उचित नहीं है। इसे आप छोड़िये-छोड़िये। इतना समझाने के बाद भी जब वे शान्त नहीं हुए, तब वीरभद्र ने शरभावतार धारण कर उनको युद्ध में परास्त किया। इसके उपरान्त वीरभद्र ने व्याघ्रचर्म को लेकर भगवान् शिव को समर्पित किया और परमेश्वर ने प्रसन्न होकर उसे आसन के रूप में ग्रहण किया। ये सबके स्वामी भगवान् शिव हम सबकी अनिष्ट से रक्षा करें।।६४।।

१७. कामदहन लीला

किसी समय की बात है कि ब्रह्मा ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि हे भगवन् ! तारकासुर ने पहले तीव्र तपस्या कर यह वरदान प्राप्त किया था कि भगवान् शिव के वीर्य से उत्पन्न छः माताओं से पालित बालक (स्कन्द) के सिवाय अन्य किसी से न मारा जाऊँ। इस वरदान को प्राप्त कर मदमत्त हुआ वह तारकासुर समस्त लोकों को पीडा पहुँचा रहा है। इसके नाश के विषय में आप हमारी सहायता कीजिये।।६५।।

ब्रह्माजी की बात सुनकर विष्णु भगवान् ने अपने पुत्र कामदेव को आज्ञा दी कि हे पुत्र ! शिवा (भगवती सती) पर्वतराज हिमालय के घर पर मेनका की पुत्री के रूप में नया जन्म लेकर एकमात्र योगसाधना में लगे रहने के अभिप्राय से हेमकूट पर्वत पर तपस्या में निरत भगवान् शिव को पुनः पति के रूप में प्राप्त करने की इच्छा से उनकी सेवा में लगी हुई है। तुम वहाँ जाकर तुरन्त

अञ्चत्यद्य सुरारितारकभिदाहो(हे)तोः कुमाराद्भुतो-
त्पत्त्यर्थं हरमम्बिकामपि मिथः संयोजय द्रागिति ।।६६।।

देवैरप्यथ याचिते रतिपतौ सेनान्विते सम्भ्रमाद्
आगत्यालितती गुणेक्षुधनुषा पुष्पाशुगान् मुञ्चति ।
यः फालेक्षणवीक्षणात् सपदि तं दग्ध्वा विलासेन तद्
भस्मोद्धूलितविग्रहः स्मरहरः कामं प्रकामं क्रियात् ।।६७।।

१८. गौरीविवाहलीला

पार्वत्यां हेमकूटे चिरकृततपसि त्र्यक्षपाणिग्रहार्थं
तत्रागत्येन्दुमौलिः कपटयतितनुः सन् तदिष्टं विचार्य ।

शिव और पार्वती को आपस में मिला दो, जिससे देवशत्रु तारकासुर के वध करने में समर्थ अद्भुत बालक कुमार स्कन्द का जन्म हो सके।।६६।।

रति के पति कामदेव से इस कार्य के निमित्त देवताओं ने भी प्रार्थना की। तब कामदेव ने तुरन्त अपनी सेना के साथ वहाँ से प्रस्थान कर दिया और वहाँ पहुँच गये, जहाँ भगवान् शिव तपस्या में निरत थे। वहाँ पहुँच कर कामदेव जब भ्रमरों की पंक्ति से बनी ज्या (डोरी) को इक्षु (ईख) से बने धनुष पर चढाकर पुष्पों से बने बाण भगवान् शंकर पर छोड़ने लगे, तब उन्होंने खेल ही खेल में अपने ललाट पर स्थित तृतीय नेत्र को खोलकर कामदेव को तत्काल भस्म कर दिया। बाद में उसी भस्म से स्नान कर, अर्थात् उद्धूलन क्रिया से उसे अपने सारे शरीर पर लपेट कर विचरण करने वाले ये कामदहन लीला के नायक महेश्वर हमारी सारी मनोकामनाओं को पूरा करें।।६७।।

१८. गौरीविवाह लीला

त्रिलोचन भगवान् शिव के साथ विवाह करने की कामना से पार्वती हेमकूट पर्वत पर चिरकाल से तपस्या कर रही थी। वहाँ संन्यासी का कपट वेष धारण कर ललाट पर चन्द्रकला को धारण करने वाले भगवान् शिव पार्वती जी के मनोभावों को जानते हुए प्रकट हो गये। इन्होंने पार्वती से कहा कि हे सुन्दरि! तुम तो अत्यन्त सौम्य स्वभाव की हो, ऐसे में तुम इस भयजनक व्याघ्र के

घोरं चर्माम्बरं भिक्षुकमसमशरध्वंसिनं सुन्दरि त्वं
वाञ्छत्यार्या सतीमं किमुचितमिति तां वक्रवाचा बभाषे ।।६८।।

आर्यायाः सह चैवमेव त्रिनयनापेक्षेति गौर्युत्तरात्
तुष्टो नैजवपुः प्रदर्श्य गिरिशस्तत्प्रार्थितो दर्पकम् ।
भूयो विश्वमनोभुवं नियमयन् पाणिग्रहाङ्गीकृते-
स्तुष्टां तां पितुरालयं प्रगमयन् रौप्याद्रिमाप स्वयम् ।।६९।।

श्रुत्वा सप्तमुनीश्वरैर्हिमवतः स्वस्यागमं तत्क्षणात्
त्वष्टाऽकारि तमाविशन् सह सुरैर्वैवाहिकं मण्टपम् ।
शम्भुः सम्भ्रमतो विवाह्य गिरिजां सन्तोष्य सर्वानुगान्
लीलामारचयत् तया स कुरुतादामोदभूमोदयम् ।।७०।।

चर्म को धारण करने वाले, सदा भिक्षाटन में लगे हुए, कामदेव को भस्म कर देनेवाले भस्मधारी शिव को क्यों चाहती हो? क्या यह उचित है? इस तरह वक्रोक्ति से उन्होंने पार्वती से पूछा।।६८।।

इस पर गौरी (पार्वती) ने उत्तर दिया कि मुझे तो इसी तरह के तीन नेत्रों वाले विरूपाक्ष की चाह है। इस उत्तर से सन्तुष्ट हुए भगवान् शिव अपने वास्तविक रूप में वहाँ प्रकट हो गये और गौरी की प्रार्थना पर समस्त प्राणियों के मन में पैदा होनेवाले, अहंकार से भरे कामदेव पर नियन्त्रण स्थापित कर भगवती पार्वती की अपने साथ विवाह करने की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। इस तरह से उनको सन्तुष्ट कर तथा उन्हें उनके पिता के घर पहुँचा कर बाद में स्वयं भी अपने निवास स्थान कैलाश पर्वत पर चले गये।।६९।।

भगवान् शिव ने सप्तर्षियों के माध्यम से हिमवान् को विवाह के लिये अपने आगमन की सूचना भेजी। उस समय त्वष्टा (देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा) ने विवाह के लिये सुन्दर मण्डप का निर्माण किया। उस मण्डप में देवताओं के साथ भगवान् शिव ने उत्साह के साथ प्रवेश किया और गिरिजा के साथ विवाह कर एवं अपने सभी अनुचरों का संमान करते हुए गौरीविवाह की लीला को पूरा किया। वे भगवान् शिव हम लोगों को भी आनन्द की पराकाष्ठा तक पहुँचावें।।७०।।

१९. कुमारजननलीला

देवाः कृत्वा चिरमथ तपो हृष्टमानम्य शम्भुं
स्वामिन्नद्य प्रबलखलराट्तारकध्वंसनार्थम् ।
त्वद्वीर्येणाऽचलपतिसुतागर्भयोगं विनैव
द्रागुत्पाद्यस्तनय इति तं प्रार्थयामासुरीशम् ।।७१।।

आकर्ण्येदं सरोषां सुरततिरसुता स्यादिति द्राक् शपन्तीं
रुद्राणीं सान्त्वयन् सन् पशुपतिरमराभीष्टसिद्ध्यै स्ववीर्यम् ।
तत्याजैतद् गृहीत्वाऽनिलसुहृदमरैः प्रार्थितो विष्णुपद्या-
मत्याक्षीत् साप्यशक्ता तदथ शरवणं प्रापयामास तीव्रम् ।।७२।।

तस्मिन् वीर्येऽत्र दीप्ते निजसविधजुषां वीक्षितुं कृत्तिकानां
सम्पर्कात् षणमुखाब्जे परिणमति शिशौ यौ तदार्यामहेशौ ।

---

१९. कुमारजनन लीला

भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिये देवताओं ने चिरकाल तक तपस्या की। तपस्या से संतुष्ट हुए शंभु से उन्होंने प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! अत्यन्त दुष्ट स्वभाव के तारकासुर के नाश के लिये पर्वतराज हिमालय की पुत्री के गर्भ धारण के बिना ही आपके वीर्य से अतिशीघ्र पुत्र को जन्म दीजिये।।७१।।

देवताओं की इस बात को सुनकर पार्वती जी बहुत क्रुद्ध हुईं और उन्होंने देवताओं को शाप दे दिया कि उनको कभी भी पुत्र की प्राप्ति न हो। रुद्राणी (क्रोध से भरी भगवती पार्वती) को सांत्वना देने के साथ पशुपति (सभी प्राणियों के स्वामी) शिव ने देवताओं की अभीष्ट की सिद्धि के लिये अपने वीर्य का त्याग कर दिया। इस वीर्य को देवताओं की प्रार्थना पर अग्निदेव ने विष्णुपदी (गंगाजी) में छोड़ दिया। गंगाजी भी उस वीर्य को धारण करने में असमर्थ होकर बड़ी तीव्रता से अपने किनारे पर स्थित शरवण (नरकुल के झुरमुट) में उसे छोड़ दिया।।७२।।

उस शरवण में प्रज्वलित हो रहे शिववीर्य को, यह क्या है? यह देखने की जिज्ञासा से वहाँ पहुँचीं कृत्तिका-नक्षत्रों के, जिनकी संख्या छः होती है, संपर्क से उस तेज ने छः मुख वाले बालक का रूप धारण कर लिया। शीघ्र

द्रागागत्योपलाल्यार्भकमथ मुदितौ तारकं मारयित्वा
तेनादातां सुरालेः सुखमनवरतं तौ शिवौ स्तः शिवाय ।।७३।।

२०. त्रिपुरदहनलीला

पुत्रास्तारकदानवस्य कमलाक्षस्तारकाक्षाह्वयो
विद्युन्माल्यपि पङ्कजासनवराल्लब्ध्वा महासम्पदम् ।
दुर्जय्ये त्रिपुरे सदाऽभ्रवलने स्थित्वा चिरादुद्धताः
सम्पीड्य त्रिदशान् बलेन जगृहुः स्वाराज्यलक्ष्मीमपि ।।७४।।

तद्धिंसाकान्दिशीते(के) सविधिसुरगणे शम्भुमाश्रित्य भक्त्या
दत्त्वास्मै पाशुपत्यं प्रणमति गिरिशो वासुकिज्यं हरीषुम् ।
संगृह्णन् मेरुचापं निगमहययुतं ब्रह्मसूतं रविग्लौ-
चक्राढ्यं भूशताङ्गं त्रिपुरविदलनामध्यरोक्षच्चिकीर्षुः ।।७५।।

ही वहाँ पार्वती और परमेश्वर आ पहुँचे एवं उन्होंने उस बालक का बड़ी प्रसन्नता के साथ लालन-पालन लिया। उस बालक ने यथासमय तारकासुर का वध कर देवगण को सुखसागर से सराबोर कर दिया। अपने पुत्र की सहायता से इस कार्य को सम्पन्न कराने वाले पार्वती-परमेश्वर सबका कल्याण करें।।७३।।

२०. त्रिपुरदहन लीला

इस तारकासुर के कमलाक्ष, तारकाक्ष और विद्युन्माली नाम के तीन पुत्र हुए। कमलासन ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर ये परम ऐश्वर्य से सम्पन्न हो गये। ये आकाश-मण्डल में निरन्तर चक्कर लगाते दुर्जेय तीन पुरों का निर्माण कर उनमें चिरकाल से निर्भय होकर रहते-रहते उद्दण्ड हो उठे और बलपूर्वक देवताओं को पराजित कर उनकी समस्त स्वाराज्य-लक्ष्मी को छीन लिया।।७४।।

इनके आक्रमण से भय के मारे भाग खड़े हुए देवगण ब्रह्मा जी को साथ लेकर भगवान् शिव के पास पहुँचे और भक्तिपूर्वक उनको समस्त प्राणियों का आधिपत्य प्रदान कर उनको नमन करने लगे। इस पर भगवान् शिव वासुकि की प्रत्यंचा, इन्द्र का बाण और सुमेरु का धनुष बनाकर तथा निगमशास्त्र को अश्व, ब्रह्मा को सूत, रवि-चन्द्र को चक्र और पृथ्वी को रथ के रूप में नियोजित कर त्रिपुरों का नाश करने की इच्छा से उस पर आरूढ हुए।।७५।।

विष्णौ गोरूपतस्तद्धरनमितरथोद्धारिणि द्विट्पुरस्थं
पीत्वा सिद्धं रसौघं (सु)? गततनुधृतेस्तत्पुरः स्त्रीसतीत्वम् ।
भिन्दत्यात्माज्ञयाथो निजगणविजिते राक्षसौघे पुराणि
त्र्यक्षो दग्ध्वा क्षणाद् यस्त्वसुखयदमरान् पातु सोऽस्मान् पुरारिः ।।७६।।

२१. गङ्गाधारणलीला

शम्भोश्चैत्ररथाह्वयोपवनमाकल्यैकदा मन्दरे
नानाक्रीडनतत्परस्य गिरिजा पश्चाद् गता लीलया ।
नेत्रे छादयति स्म तावदखिलो लोकोन्धकारावृतो
ध्वान्तं ध्वंसयितुं हरेण विवृते फालाक्षिण तेजोऽत्यभूत् ।।७७।।

तावज्ज्वालासहिष्णु त्रिभुवनरुदितैः स्रंशितोमाकराग्रा-
सङ्गत्यक्तेशहर्षाश्रुपयसि रभसाल्लोकमावृत्य भित्त्वा ।

इनके भार से जब रथ जमीन में धंसने लगा, तो भगवान् विष्णु ने पृथ्वी का रूप धारण कर उस रथ का उद्धार किया। इसके बाद भगवान् शिव ने शत्रु की नगरियों में स्थित समस्त सिद्ध-रसायन को पी डाला। नास्तिकों ने उनकी स्त्रियों का सतीत्व नष्ट कर दिया। अपने रुद्रगणों के माध्यम से समस्त राक्षसगणों पर विजय प्राप्त कर लेने के उपरान्त शिव ने अपने त्रिनेत्र रूपी बाण से राक्षसों के तीनों पुरों को एक साथ जला डाला। इस तरह देवताओं को आनन्द से भर देने वाले भगवान् त्रिपुरसूदन हमारी रक्षा करें।।७६।।

२१. गंगाधारण लीला

एक समय की बात है कि मन्दराचल में स्थित चैत्ररथ नामक उपवन में भगवान् शिव नाना प्रकार की क्रीडाएँ कर रहे थे। उसी समय भगवती गिरिजा ने पीछे से आकर खेल-खेल में भगवान् शंकर के नेत्रों को अपने हाथों से बन्द कर दिया। इसके साथ ही समस्त संसार में अन्धकार छा गया। इस अन्धकार को दूर करने के लिये शिव ने अपने ललाट स्थित नेत्र को खोला, तो उससे अत्यधिक तेज निकला।।७७।।

भगवान् शिव के तीसरे नेत्र से निकली तेज की उस ज्वाला को सहन न कर सकने के कारण समस्त भुवन में आक्रन्दन प्रारंभ हो गया और इधर

विध्यण्डं तस्य बाह्याम्बुनि मिलति सुरैरर्थितो लीलया यो
धृत्व(ा)म्भस्तज्जटाग्रे भुवनमसुखयत् पातु गङ्गाधरो नः ।।७८।।

२२. अन्धकासुरवधलीला

पार्वत्या पिहिते गिरीशनयने प्राङ्मन्दरे लीलया
यल्लोके प्रचुरं तदान्धतमसं लेभे पलाशाकृतिम् ।
ख्यातः सन्नयमन्धकासुर इति स्वर्णाम्बकस्यात्मजो
भूत्वा शम्भुवरादथोद्धटतरस्त्रैलोक्यमाविव्यथे ।।७९।।
गीर्वाणैः शरणीकृतस्त्रिनयनः स्वं हन्तुमुद्युक्त इ-
त्याकर्ण्याजिहितान्मुनेस्तमसुरं सद्योऽभ्यमित्रं रुषा ।

भगवती पार्वती के भगवान् शंकर की आँखों पर से हाथ को हटा लेने पर उनके नेत्रों से भी हर्षाश्रु निकलने लगे। इन अश्रुओं के कारण आई बाढ से सारे भुवन घिर गये। यह अश्रु-जल ब्रह्माण्ड में विद्यमान जल से मिलकर भयंकर विनाश करने लगा। तब देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् शंकर एक नई लीला करते हुए उस सारे जल को अपनी जटा में बाँध लिया। इस लीला के कारण ही वे गंगाधर कहलाये और बाढ के भय से त्रिभुवन को मुक्त कर सर्वत्र आनन्द का संचार कर दिया। वे गंगाधर हमारी रक्षा करें।।७८।।

२२. अन्धकासुरवध लीला

पहले मन्दराचल पर खेल-खेल में पार्वती जी ने जब शंकर के नयनों को अपने हाथों से छिपा लिया था, तब सारे लोक में गहरा अन्धकार छा गया और उसने पलाशपत्र की सी आकृति धारण कर ली। यही बाद में अन्धकासुर के नाम से स्वर्णाम्बक के पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ और अपनी तपस्या से भगवान् शिव का वरदान प्राप्त कर अत्यन्त बलशाली होकर त्रिलोकी को कष्ट पहुँचाने लगा।।७९।।

उस समय सभी देवगण भगवान् शिव की शरण में आ गये। वह अन्धकासुर भगवान् शंकर को ही मारने आ रहा है, यह सुनकर भगवान् शंकर तत्काल क्रोध से भर उठे और उस भयंकर शत्रु के नाश के लिये उसके हृदय पर त्रिशूल से प्रहार किया। इस तरह से चल रहे युद्ध में भगवान् शिव ने

शूलेन प्रहरन् हरः समिति यस्तत्प्रार्थितस्तद्दहृदि
नृत्यन् सन् दयया निनाय गणतां पात्वन्धकारिः स नः ।।८०।।

२३. मृत्युञ्जयलीला

श्वेताख्यो नृपतिः पुरा मृगवधासक्तो गृहान्निर्गतो
वाणिज्योद्गतरत्नवर्णवणिजः पत्नीं गृहोर्ध्वस्थिताम् ।
दृष्ट्वा कामवशान्निकृत्य निशि तामाहूय तत्खेलने
पुष्पं प्राह पतगृ(ग्र)हे च्युतमिदं शम्भ्वर्पितं स्यादिति ।।८१।।

काले याति महत्यथान्त्यसमये कृष्टः स मृत्योर्भटैः
शम्भोरेकसुमार्पणोक्तिसुकृतात् स्वर्नीत एकां निशम् ।
रम्भा तं त्वरमाणमात्मविहृतौ दृष्ट्वा हसित्वा नृपं
प्रोचे किं क्षणसौख्यतः सुगतये शम्भुं भजेथा इति ।।८२।।

अन्धकासुर की प्रार्थना पर दया करके उसको अपने गणों में स्थान दे दिया। वह अन्धकारि शिव हमारी रक्षा करें॥८०॥

२३. मृत्युंजय लीला

किसी समय श्वेत नाम का राजा मृगया (शिकार) के लिये जब अपने महल से निकला, तो वह अपने व्यापार के कारण अत्यन्त समृद्ध हुए किसी व्यापारी की अपनी हवेली की अट्टालकी पर चढी पत्नी को देखकर काम के वशीभूत हो गया और रात्रिबेला में उसे बुलाकर उसके साथ कामक्रीडा करने में लग गया। उस समय पीकदान में गिरते हुए पुष्प को देखकर उसने कहा कि यह शिव को समर्पित हो॥८१॥

इस घटना को हुए बहुत समय बीत गया। उसका अन्तिम समय आने पर यमराज के दूत उसे खींच कर ले गये। अपने इस जन्म में इसने भगवान् शिव को एक पुष्प समर्पित किया है, यह जान कर यमदूत उसे एक रात्रि के लिये स्वर्गलोक में ले गये। यहाँ रंभा (अप्सरा) ने एक रात्रि के लिये प्राप्त सुखोपभोग में अपने को भूले हुए राजा से हँस कर कहा कि इस क्षणिक सुख से क्या होगा? तुम अपनी सुगति के लिये भगवान् शिव का भजन करो॥८२॥

कालादल्पात् कथं स्यात् सुगतिरिति वदन्तं नृपं प्राह रम्भा
प्राक्कञ्चिद् म्रीयमाणं शव इति शुनके भक्षणायैत्यपादैः ।
स्पृष्ट्वा भस्मावलिप्तैरपसरति भिया सोऽन्त्यकाले स्ववक्त्रे
भस्माङ्काद् मृत्युमुक्तः सपदि शिवपदं प्रापितः शम्भुभृत्यैः ।।८३।।

वनेचरः कश्चिदलर्ककण्ठे
रुद्राक्षमाल्यं प्रणयाद् बबन्ध ।
क्रोडाहतोऽसौ शुनकः प्रणीतः
कैलासमन्ते शिवचिह्नधृत्या ।।८४।।

मृकण्डोः सूनोर्द्वादश वयसि याते रविभुवा
विकृष्टः शिश्लेष स्वहृदि शिवलिङ्गं कृतनुतिः ।

थोड़े से समय में सुगति कैसे मिल सकती है? इस तरह से पूछते हुए राजा श्वेत से अप्सरा रंभा बोली कि पुराने समय में किसी मरते हुए व्यक्ति को मरा हुआ समझ कर कोई कुत्ता उसे खाने की इच्छा से उसके पास गया। उस कुत्ते के पैर में भस्म लगी हुई थी। जब वह उसे खाने के लिये आगे बढा, तो उसको जीवित जानकर भय के मारे वह वापस मुड़ा। इसी बीच उसके पैरों में लगी भस्म उस शव के सिर पर अंकित हो गई। इसके साथ ही वह जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो गया और शिव के अनुचरों की सहायता से उनसे तत्काल शिवपद प्राप्त कर लिया।।८३।।

किसी वनवासी ने किसी पालतू कुत्ते (अलर्क) के गले में स्नेह से भरकर रुद्राक्ष की माला पहना दी। जंगली सूअर से मारे जाने के बाद शिव के चिह्न रुद्राक्ष को धारण करने के कारण वह अन्त में रुद्रगणों के द्वारा कैलास पर ले जाया गया।।८४।।

मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय की आयु बारह वर्ष की निर्धारित थी। समय आने पर रविभू (सूर्यपुत्र यमराज) उसे लेने आ गये। तब मार्कण्डेय ने शिव-लिंग को प्रणाम कर उन्हें अपनी छाती से चिपका लिया। यमराज जब मार्कण्डेय को खींच रहे थे, तभी शिवलिंग से तत्काल गिरिजापति प्रकट हो गये और त्रिशूल के अग्र भाग से यमराज को घायल कर दिया। क्या उन्होंने यमराज

ततोऽत्राविर्भूतः सपदि गिरिशं(शः) शूलशिखया
यमं भित्त्वा भक्तं न किमु चिरजीवित्वमनयत् ।।८५।।

प्राक् सानन्दमुनौ गते यमपुरालोकाय पञ्चाक्षरीं
तेनोक्तामवकर्ण्य नारकिगणः कैलासमापोत्तरम् ।
चण्डाल्या विरहस्पुरा प्रचलितश्चौर्याय शैवालये
दीपद्योतनतो द्विजः शिवपदं कश्चित् कृतोऽन्ते गतः ।।८६।।

इत्युक्ते रम्भयाऽस्मिन् नृप उपकरणैस्तत्प्रणीतैः शिवार्चां
कुर्वाणे शैवचिह्ने रटति यमकराकर्षणात् प्रातरत्र ।
सद्यः प्रादुर्भवन् यः प्रशमितशमनो दृष्टिमात्राद् दिदेश
श्वेतायात्मप्रमोदं स शिव उपनतान् पातु मृत्युञ्जयाख्यः ।।८७।।

के हाथ से मार्कण्डेय मुनि को बचा कर उन्हें चिरंजीवी होने का वरदान नहीं दिया था।।८५।।

पुराने समय की बात है कि सानन्द मुनि एक बार यमपुरी को देखने वहाँ गये हुए थे। उस समय उनके मुख से निकले पंचाक्षरी मन्त्र को सुनकर सभी नारकी जीव उत्तम कैलास-पदवी पर पहुँच गये। इसी तरह से अपनी पत्नी चण्डालिनी की मनोकामना को पूरा करने के लिये कोई चण्डाल चौरी करने की इच्छा से किसी शिवालय में पहुँचा। वहाँ उसने दीपक जलाया। इसी पुण्य के प्रताप से पहले उसने द्विजकुल में जन्म लिया और अन्त में उसे शिवपद की प्राप्ति हुई।।८६।।

इस प्रकार रंभा ने स्वल्प काल में ही मुक्ति पाने के अनेक उदाहरण उस श्वेत राजा को सुनाये। राजा तत्काल रंभा के द्वारा इकट्ठी की गई सामग्री से शिव की आराधना में लग गया, भस्म-रुद्राक्ष धारण कर वह पंचाक्षरी मन्त्र का जप करने लगा। प्रात:काल होने के साथ ही यमराज उसे खींचकर नरकलोक में ले जाने वाले थे, किन्तु तत्काल भगवान् शिव वहाँ प्रकट हो गये और आँखों के इशारे से ही उन्होंने यमराज को शान्त कर दिया। इसीके साथ श्वेत को उन्होंने अपने प्रमोद-स्थान कैलास पर पहुँचा दिया। वे भगवान् मृत्युंजय अपनी शरण में आये भक्तों की रक्षा करें।।८७।।

२४. सुखावहलीला

बुद्ध्वा द्वादशवत्सरं क्षितिरवग्राहाकुला स्यादिति
तद्भीतेरथ दण्डकावनतपश्चर्यापरे गौतमे।
शम्भुः कैतववैष्णवाकृतिमुपेत्येतत्परीक्ष्येच्छया
तत्रागत्य च विप्रलम्भवचनं प्रोचे विनोदादमुम्।।८८।।

किं स्यात् तेऽद्य फलं कपालिभजनाच्छ्रीशाज्जगद्रक्षकात्
प्राप्यं सर्वफलं जनैरिति वदन् अत्र प्रमाणं हरे[ः]।
फालेऽदर्शयदीक्षणं मुनिरसौ नानाप्रकारैर्हरिं
धिक्कृत्याऽभिदधे हरः पर इति स्वाङ्घ्रौ दृशं दर्शयन्।।८९।।

शम्भौ तन्मुनिभक्तिदार्ढ्यमुदिते सन्दर्श्य रूपं निजं
तद्देशो निरवग्रहोऽस्त्विति गते दत्त्वा वरं योगिने।

---

२४. सुखावह लीला

बारह वर्ष तक यह पृथ्वी अवग्रह (अनावृष्टि) से पीडित रहेगी, यह जानकर भय के मारे गौतम मुनि दण्डक वन में जाकर तपस्या करने लगे कि यह पृथ्वी अनावृष्टि के भय से मुक्त हो जाय। इनकी परीक्षा करने के अभिप्राय से शिव गौतम मुनि के सामने विष्णु का नकली स्वरूप धारण कर विनोद में ही उनको ठगने के लिये उलटी-सीधी बात बनाने लगे॥८८॥

वे बोले कि कपालपात्र धारण करने वाले शिव की सेवा करने से तुम्हें क्या मिलने वाला है? लक्ष्मी के पति, इस जगत् के रक्षक विष्णु से ही सबको मनोवांछित फल मिल पाता है। प्रमाण के रूप में उन्होंने अपने ललाट पर भी तृतीय नेत्र को दिखाया। इस पर मुनि गौतम तरह-तरह से उनको धिक्कारते हुए बोले कि भगवान् शिव ही सर्वश्रेष्ठ है। ऐसा कहते हुए गौतम मुनि ने अपने चरणों में उनको नेत्र दिखा गया॥८९॥

भगवान् शिव मुनि गौतम की अपने प्रति इस प्रकार की दृढ भक्ति को देखकर प्रसन्न हो गये और उनको अपना स्वरूप दिखाकर कहा कि यह स्थान अनावृष्टि के भय से मुक्त रहेगा। भगवान् शिव योगी गौतम को इस प्रकार का वर दे गये हैं, इस बात को सुनकर सभी ऋषिगण उस अकाल के समय

तच्छ्रुत्वा मुनिमेत्य सर्व ऋषयस्तत्पोषिता अप्यहो
अन्ते द्रोहकृतो मुनीन्द्रशपनात् पाषण्डितां प्रापयुः ।।९०।।

कैश्चित् काश्यपपूर्वकैस्तदितरैस्तद्योगिभिः प्रार्थितः
शम्भुर्नन्दिमुखाद् रहस्यमखिलं शैवागमानां क्षितौ ।
तत्पाषण्डिमुनिव्रजस्य दयया प्राबोध्य यः सद्गतिं
प्रादात् सर्वसुखावहः स गिरिशो दद्यात् सुखं नः सदा ।।९१।।

२५. पार्थास्त्रप्रदानलीला

पार्थे व्यासगिरा पुरा हिमगिरौ तीव्रं तपः कुर्वति
तज्ज्वालापरितप्यमानमखिलं लोकं हरो नारदात् ।
ज्ञात्वा दातुमभीष्टमस्य शबराकारोऽनुगैश्चोमया
स्वाकारैर्मृगयोचितोपकरणैर्युक्तो हिमाद्रिं ययौ ।।९२।।

उनके पास चले आये। उनसे भरण-पोषण पाने पर भी यह आश्चर्य की ही बात है कि ये उन्हीं से द्रोह कर बैठे। कुपित हो मुनि ने उनको शाप दे दिया, जिसके कारण ये सब पाखंडी बन गये।।९०।।

इस स्थिति में काश्यप आदि ऋषियों तथा अन्य अनेक योगियों की प्रार्थना पर भगवान् शिव ने नन्दी के माध्यम से इस पृथ्वी पर शैवागमों के समस्त रहस्य को खोल दिया। इन्हीं शैवागमों की सहायता से उन पांखडी मुनियों पर भी दया कर उनकी सद्गति के लिये भगवान् शिव ने सर्वसुखावह स्वरूप धारण किया। वे गिरीश हम सबको सदा सुख प्रदान करें।।९१।।

२५. पार्थास्त्रप्रदान लीला

महाभारत युद्ध के समय व्यास मुनि के कहने पर अर्जुन हिमालय पर पाशुपतास्त्र की प्राप्ति के लिये तीव्र तपस्या करने लगे। नारद मुनि के कहने पर भगवान् शिव को ज्ञात हुआ कि अर्जुन की तपस्या से समस्त लोक उसके ताप से पीडित है। अर्जुन को अभीष्ट पाशुपतास्त्र देने के अभिप्राय से भगवान् शिव ने शबर का वेष धारण कर लिया। अपने गणों और उमा भगवती को भी शिकारी परिवार का वेष धारण कराया। फिर शिकारी कुत्तों आदि को साथ लेकर हिमालय के वन में प्रवेश किया।।९२।।

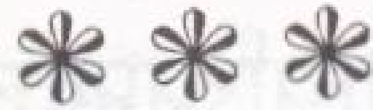
तत्र स्वाशुगविद्धपूर्वकपटक्रोडे हते जिष्णुना
युद्ध्वा क्रुद्ध इवामुनाऽथ सुचिरं तद्गाण्डिवाघाततः ।
तुष्टो दर्शितनैजरूपमहिमा तत्प्रार्थितो यो ददा-
वस्त्रं पाशुपतं स पातु कुहनादासो महेशोऽनिशम् ।।९३।।

श्रुतिस्मृतिपुराणागमेतिहासविपश्चिता ।
रचिताः शिवलीलास्तु वीरभद्रेण शर्मणा ।।९४।।

... ...

वहाँ शिव ने लीला करते हुए एक सूअर का निर्माण किया। सूअर को अपने ऊपर आक्रमण करता देख अर्जुन ने उसे अपने तीव्र गतिवाले तीखे बाणों से बींध दिया। इसी बीच शंकर प्रकट हो गये और पहला बाण किसका लगा? इस पर दोनों में युद्ध होने लगा। शिव जैसे क्रोध में भरे हों, इसका दिखावा करते हुए बहुत देर तक अर्जुन से युद्ध करते रहे। अर्जुन ने शिव पर गाण्डीव धनुष की सहायता से आक्रमण किया। इससे सन्तुष्ट हो भगवान् ने उसको अपना वास्तविक स्वरूप दिखाया और अर्जुन की प्रार्थना पर उसे पाशुपतास्त्र प्रदान किया। इस तरह की नाना प्रकार की अनोखी लीलाओं के स्वामी भगवान् महेश्वर हमारी सदा रक्षा करें।।९३।।

श्रुति, स्मृति, पुराण, आगम और इतिहास — इन समस्त शास्त्रों में निष्णात वीरभद्र शर्मा ने इस शिवलीलाओं की रचना की है।।९४।।



पण्डित श्री दवन उपाध्याय द्वारा लिखित

शिवपञ्चविंशतिलीलाशतक : एक अध्ययन

१. ताण्डव लीला

भगवान् शंकर का एक नाम रुद्र है, क्योंकि वे प्रत्याहार, प्रलय के आकर्षण हैं। वे परम नर्तक, महान् नटराज भी हैं। उनके नृत्य का नाम ताण्डव है। भगवान् शिव का नृत्य शाश्वत है; क्योंकि उनमें कल्याण की मङ्गलकारी अनुभूति भी शाश्वत है। यह विश्व ही उनकी नृत्यशाला है। संसार में अणु-परमाणु से लेकर बड़ी से बड़ी शक्ति में जो स्पन्दन दिखलायी पड़ता है, वह उनके नृत्य एवं नाद का ही परिणाम है।

नृत्य से भगवान् शिव ब्रह्माण्ड में गति लाते हैं और जीव-निर्जीव की सृष्टि करते हैं। उनके नृत्य की गति है उपरति, निवृत्ति, समाधि, प्रलय की ओर— अर्थात् अन्तरतम से ऊर्ध्वतम की ओर। उनका नृत्य भयंकर है, लेकिन शिवत्व से शून्य नहीं। वे ब्रह्माण्ड का कभी विनाश नहीं चाहते। वे तो स्रष्टा हैं, पालक हैं, कल्याण करने वाले हैं। उन्हें संहार कदापि प्रिय नहीं; लेकिन जब पाप अपनी चरम स्थिति को प्राप्त कर लेता है, तो उनका नर्तन विवश होकर प्रलयङ्कारी रूप ग्रहण कर लेता है। परन्तु शिव की यह ताण्डवलीला भी निसन्देह जगत् की रक्षा के लिए ही होती है। इसीलिए भगवान् पुष्पदन्त ने लिखा है—

जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।

भगवान् शिव का 'ताण्डवनृत्य' उनके महिमामय स्वरूप और अमित ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति करता हुआ **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** का अमर सन्देश देता सा प्रतीत होता है। चतुर्भुज नटराज के एक हाथ में रजोगुण का प्रतीक डमरु है, जो द्यावापृथिवी, अनन्तलोक और जीव-जगत् की सृष्टि करता है और उनके दूसरे हाथ में है तमोगुण का प्रतीक अग्नि, जिससे वे उन बन्धनों का संहार करते हैं, मानवात्मा को बाँधे रहते हैं। नटराज के एक हाथ में

त्रिशूल है, जो उनका परमप्रिय अस्त्र है। त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखों का सूचक है। उनका चौथा हाथ वरद मुद्रा में रहता है, जो सर्वदा जगत्कल्याण की भावना को सूचित करता है। भूमि पर आरोपित एक चरण से वे माया, मोह और अविद्या को दबाये रहते हैं और उठे हुए दूसरे पैर से सङ्कटों से त्रस्त प्राणियों को मुक्ति देते हैं। कटिवस्त्र दिक् का प्रतीक है और भुजाओं पर लिपटा हुआ सर्प काल का प्रतीक है।

शिव की जटा-लटें पाँच से तेरह तक दिखलायी गयी हैं। जटाओं में नर-कपाल और चन्द्रमा भी दिखाये गये हैं, जो अमृत-तत्त्व के प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त धर्म की प्रतीक गङ्गा का स्रोतस्थान भी उनकी जटा ही हैं। जो पाप से मलिन मन वाले व्यक्तियों का भी उद्धार करती हैं। उनकी लम्बी जटायें वैसे सदा बँधी रहती हैं, लेकिन युगान्तरों में जब पापिनी और आसुरी शक्तियों से विश्व त्रस्त हो उठता है, तब एकाध बार सृष्टि के त्राण के लिये खुलती हैं। तीनों ज्योति (सूर्य, चन्द्र, अग्नि) उनके तीन नेत्र हैं। शिव का प्रथम नेत्र धरातल, द्वितीय आकाश तथा तृतीय बुद्धि के अधिदैव सूर्य एवं ज्ञानाग्नि का सूचक है। इसी तृतीय नेत्र के खुलने से काम भस्म हो गया था, क्योंकि ज्ञानाग्नि के खुलने से सभी काम-वासनायें नष्ट हो जाती हैं।

शिव की निर्निमेष तापस ऊर्ध्व दृष्टि कुटिल को सरल बनाती हैं, अस्पष्ट को स्फुट करती हैं और द्वैध को तिरोहित कर स्थैर्य और निश्चलता प्रदान करती हैं। नटराज भगवान् शिव सर्वाङ्ग में विभूति से अनुलिप्त रहते हैं। भस्म मौलिक तत्त्व है, इसे नष्ट नहीं किया जा सकता।

भगवान् शिव तो आशुतोष हैं, वे किसी का अकल्याण नहीं चाहते, फिर वे नटराज-स्वरूप धारण कर प्रलयङ्कारी ताण्डव-लीला क्यों करते हैं? इस सम्बन्ध में दक्षिण में बहुत सी कथायें प्रचलित हैं। सर्वमान्य और सर्वाधिक प्रसिद्ध कथा यह है कि तारगम नामक एक निर्जन स्थान में कुछ मीमांसक अभिमानी ऋषिगण निवास करते थे। उनका मिथ्याभिमान दूर करने के लिए वहाँ की जनता ने शिव की आराधना की। फलस्वरूप ऋषियों के समक्ष भगवान् शिव गये, परन्तु अभिमानी ऋषियों ने उन्हें वहाँ देखकर उनका सम्मान नहीं किया और उलटे उनके प्रति क्रोध प्रकट किया। अभिमानी ऋषियों ने वराह को भगवान् शिव पर आक्रमण करने का आदेश

दिया। भयानक गुर्राहट के साथ वह शिवजी पर टूटा; परन्तु अमित बलशाली भगवान् शङ्कर ने उसे पकड़ कर एक छिंगुलीमात्र से उसकी खाल उधेड़ डाली और उसे पहन लिया। यह देखकर ऋषिगण आगबबूला हो उठे और भयङ्कर विषधर नाग को शिवजी की ओर प्रेरित किया, परन्तु ज्यों ही वह शिवजी के पास पहुँचा, उन्होंने उसे गले में माला के समान लपेट लिया। क्रोध और अभिमान से पागल ऋषियों ने अपने मन्त्रबल से वहाँ एक राक्षस को उत्पन्न किया। वह राक्षस भीषण गर्जना करता हुआ भगवान् शंकर की ओर दौड़ा, किन्तु महिमामय भगवान् ने उसे पकड़ कर पैरों तले रौंद डाला और उसके शव पर खड़े होकर नृत्य करने लगे। इस प्रकार भगवान् शंकर ने ऋषियों के गर्व का नाश किया। यही भगवान् शिव के ताण्डव-लीला करने वाले नटराज-स्वरूप के प्राकट्य की कथा है।

इसी प्रकार भगवान् शिव ने ताण्डव लीला द्वारा पर्वतराज हिमालय एवं राजरानी मेना के अहङ्कार का भी नाश किया था। कथा कुछ इस प्रकार है—

पर्वतनन्दिनी पार्वती भगवान् शंकर को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रही थीं। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव उन्हें वर प्रदान कर जब अपने धाम को चले गये, तब पार्वती भी अपने रूप को सफल करके महादेव जी का नाम लेती हुईं पिता हिमालय के घर चली गयीं। पार्वती का आगमन सुन मेना और हिमालय ने पुरोहित, पुरवासियों समेत मिलकर भव्य स्वागत किया। हिमलाय ने कहा— पुत्रि! तुमने अपने कुल का उद्धार करने वाले उत्तम कार्य को अच्छी तरह सिद्ध किया है। तुम्हारे सदाचरण से हम लोग पवित्र हो गये हैं। ऐसा कह कर सब लोगों ने हर्ष के साथ पार्वती की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए चन्दन और सुन्दर फूलों से सानन्द पूजन किया। उस अवसर पर विमान पर बैठे हुए देवताओं ने पार्वती को प्रणाम करके उन पर फूलों की वर्षा की।

इसके बाद हिमवान् प्रसन्नचित्त से सबका आदर-सत्कार करके गंगा-स्नान के लिए चले गये। इसी बीच में सुन्दर लीला करने वाले भक्तवत्सल भगवान् शम्भु एक अच्छा नाचने वाला नट बन कर मेनका के समीप गये। उन्होंने बायें हाथ में सींग और दाहिने हाथ में डमरु ले रखा था। पीठ पर कथरी ले रखी थी। लाल वस्त्र पहने वे भगवान् रुद्र नाच और गान में अपनी

निपुणता का परिचय दे रहे थे। सुन्दर नट का रूप धारण किये हुए भगवान् शिव ने मेनका के पास बैठी हुईं स्त्रियों की टोली के समक्ष सुन्दर ताण्डव नृत्य किया और अत्यन्त मनोहर नाना प्रकार के गीत गाये। उन्होंने वहाँ सुन्दर ध्वनि करने वाले शृङ्ग और डमरु को भी बजाया। वहाँ उन्होंने नाना प्रकार की बड़ी मनोहारिणी लीलाएँ कीं। नटराज की उस लीला को देखने के लिए नगर के सभी स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध भी वहाँ आ गये। उस सुमधुर गीत और नृत्य के आनन्द से सबलोग मोहित हो गये। मेना भी मोही गयीं। उधर पार्वती ने अपने हृदय में भगवान् शंकर का साक्षात् दर्शन किया। उस समय उन्हें वे त्रिशूल आदि चिह्न धारण किये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देते थे। वे नरमुण्ड की माला से अलंकृत थे। उनका मुख सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि रूप तीन नेत्रों से उद्भासित था। वे नाग की यज्ञोपवीत धारण किये थे। उनके उस सुरम्य रूप को देखकर पार्वती प्रेमावेश से मूर्च्छित हो गयीं। गौरवर्ण विभूषित दीनबन्धु दयासिन्धु और सर्वथा मनोहर महेश्वर पार्वती से कह रहे थे कि 'वर माँगो'। अपने हृदय में विराजमान महादेव जी को इस रूप में देखकर शिवा देवी ने उन्हें प्रणाम किया और मन-ही-मन यह वर माँगा कि 'आप मेरे पति हो जाइये।' प्रीतियुक्त हृदय से शिवा को वैसा कल्याणकारी वर देकर वे पुनः अन्तर्धान हो गये और वहाँ पूर्ववत् भिक्षा माँगने वाला नट बनकर उत्तम ताण्डव नृत्य करने लगे।

उस समय पर्वतरानी मेना सोने की थाली में रखे हुए बहुत से सुन्दर रत्न लेकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक देने के लिये गयीं। उनका यह ऐश्वर्य देखकर भगवान् आशुतोष मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु उन्होंने उन रत्नों को स्वीकार नहीं किया। जब मेना ने मुहमाँगी वस्तु देने के लिए आश्वासन दिया, तब उन्होंने कहा— हे राजरानी! आप अपनी लाड़ली पुत्री को मुझे भिक्षा में दे दीजिये। यह कहकर पुनः कौतुकवश सुन्दर नृत्य एवं गान करने के लिए उद्यत हुए। मेना उस भिक्षुक नट की बात सुनकर अत्यन्त कुपित हो उठीं और उसे डाँटने-फटकारने लगीं। उनके मन में उसे बाहर निकाल देने की इच्छा हुई। इतने में गिरिराज हिमवान् भी गंगास्नान कर लौट आये। उन्होंने अपने सामने उस नटाकार भिक्षुक को आँगन में खड़ा देखा। रानी मेना के मुख से सारी बातें सुन कर उनको भी बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि इस नट को बाहर निकाल दो। वे नटराज विशालकाय अग्नि

के समान अपने उत्तम तेज से प्रज्वलित हो रहे थे। उन्हें छूना भी कठिन था। इसलिये कोई भी उन्हें बाहर न निकाल सका। फिर तो नाना प्रकार की लीला में विशारद भिक्षुशिरोमणि नटराजराज ने शैलराज को अपना अनन्त प्रभाव दिखलाना आरम्भ किया। हिमवान् ने देखा, भिक्षु ने वहाँ तत्काल भगवान् विष्णु का रूप धारण कर लिया है। उनके मस्तक पर किरीट, कानों में कुण्डल और शरीर पर पीत वस्त्र शोभा पा रहे हैं। उनके चार भुजायें हैं। हिमवान् ने पूजा के समय गदाधारी श्री हरि को जो-जो पुष्प आदि चढ़ाये थे, वे सब उन्होंने भिक्षु के शरीर और मस्तक पर विद्यमान देखा।

इसके बाद गिरिराज ने उस भिक्षुशिरोमणि को जगत्स्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्मा के रूप में देखा। उनके शरीर का वर्ण लाल था और वे वैदिक सूक्त का पाठ कर रहे थे। तदनन्तर शैलराज ने उन कौतुककारी नटराज को एक क्षण में जगत् के नेत्र रूप सूर्य के आकार में देखा। इसके बाद वे महान् अद्भुत रुद्र के रूप में दिखायी दिये। उनके साथ देवी पार्वती भी थीं। वे उत्तम तेज से सम्पन्न रमणीय रुद्र मन्द-मन्द हास्य कर रहे थे। फिर वे केवल तेजोमय रूप में दृष्टिगोचर हुए। उनका वह स्वरूप निराकार, निरञ्जन, उपाधिशून्य, निरीह एवं अत्यन्त अद्भुत था।

इस प्रकार हिमवान् ने उनके अनन्त रूपों का दर्शन किया। इससे उन्हें बड़ा विस्मय हुआ और वे तत्क्षण ही परमानन्द में निमग्न हो गये। तदनन्तर सुन्दर लीला करने वाले भिक्षुशिरोमणि नटराजेश्वर ने हिमवान् और मेना से पार्वती को ही भिक्षा के रूप में माँगा। दूसरी कोई वस्तु ग्रहण नहीं की। परन्तु शिव की माया से मोहित होने के कारण शैलराज ने उनकी उस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। फिर भिक्षु ने भी कोई अन्य वस्तु नहीं ली और वे वहाँ से अन्तर्धान हो गये। तब मेना और शैलराज को ज्ञान हुआ और सोचने लगे— भगवान् शिव हमें अपनी माया से मोहित कर अपने स्थान को चले गये। यह विचार कर उन दोनों की भगवान् शिव में पराभक्ति हुई, जो महान् मोक्ष की प्राप्ति कराने वाली, दिव्य तथा सम्पूर्ण आनन्द प्रदान करने वाली है।

इस प्रकार भगवान् शंकर की ताण्डव लीला जगत् के अहङ्कार को दूर करने वाली है। इस लीला के स्मरण करने, पठन और पाठन करने से अहङ्कार का नाश होता ही है, अन्त में भगवान् शिव की सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है।

माहेश्वरसूत्र का रहस्य

भगवान् नन्दिकेश्वरकृत काशिका में उल्लेख है कि सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आदि सिद्ध ऋषियों के उद्धार की कामना वाले भगवान् नटराजराज भगवान् महेश्वर ने अपने प्रसिद्ध नृत्य ताण्डव की सम्पूर्ति होने पर चौदह बार डमरु को बजाया था। डमरू के उन शब्दों को सुनकर शास्त्रकारों ने अपने-अपने अनुकूल सूत्रों का निर्माण किया। जैसा कि उल्लेख है—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

(नन्दिकेश्वरकृत काशिका)

भगवान् पाणिनि ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में चौदह सूत्रों का उल्लेख किया है, जिनकी प्रसिद्धि माहेश्वरसूत्र के रूप में है। वे चौदह सूत्र इस प्रकार हैं— अ इ उ ण्।।१।। ऋ ऌ क्।।२।। ए ओ ङ्।।३।। ऐ औ च्।।४।। ह य व र ट्।।५।। ल ण्।।६।। ञ म ङ ण न म्।।७।। झ भ ञ्।।८।। घ ढ ध ष्।।९।। ज ब ग ड द श्।।१०।। ख फ छ ठ थ च ट त व्।।११।। क प य्।।१२।। श ष स र्।।१३।। ह ल्।।१४।।

इन सूत्रों में महर्षि पाणिनि ने वर्णसमुदाय का परिचय अत्यन्त वैज्ञानिक रीति से दिया है, जो उन्हें महेश्वर (भगवान् शंकर) की कृपा से प्राप्त हुआ है। जैसा कि लघुशब्देन्दुशेखर ('दीपक' पृ. ३ काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, १९५४ संस्करण) में कहा गया है— महेश्वरादागतानि इत्यर्थः, महेश्वरप्रसादलब्धानीति फलितम्।

इस सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है— पाणिनि अपने गुरु वर्षाचार्य के यहाँ अध्ययन करते समय अपनी प्रतिभा का विकास न होते हुए देख खिन्न रहा करते थे। तदनन्तर उन्होंने शिव की आराधना की। जिसके फलस्वरूप उन्हें इस प्रकार वर्णसमाम्नाय की प्राप्ति शिव के डमरुनिनाद से हुई। आराधक को अपना अभीष्ट उसी रूप में प्राप्त होता है, जिस रूप में उसे आवश्यकता रहती है। आकाशदेशस्थ शब्द (१४ सूत्रों) की उस रूप में कल्पना कर महामुनि पाणिनि ने स्वर तथा व्यञ्जन का विभाग अति वैज्ञानिक रीति से किया है। इस रूप में स्वर-व्यञ्जनों के विभाग से प्रत्याहारों की

कल्पना द्वारा विषय का निरूपण करने में बड़ा लाघव हुआ है। ये प्रत्याहार व्याकरण में उसी प्रकार उपयोगी होते हैं, जिस प्रकार गणित आदि में सूत्रभूत पारिभाषिक शब्द अपनी उपयोगिता प्रतिपादित करते हैं। प्रत्याहार का अर्थ है— संक्षेप में कथन। अनेक वर्णों का बोध संक्षेप में हो जाने के कारण कार्यपद्धति में सुगमता हो जाती है। उदाहरणार्थ 'अच्' और 'हल्' प्रत्याहारों से क्रमश: 'स्वर' तथा 'व्यञ्जनों' का बोध हो जाता है।

महर्षि पाणिनि ने किस प्रकार की विचित्र परिस्थिति में माहेश्वर सूत्रों को प्राप्त किया, इस सम्बन्ध का इतिहास नन्दिकेश्वर की **'काशिकावृत्ति'** के साथ-साथ **'कथासरित्सागर'**, **'हरचरितचिन्तामणि'**, **'बृहत्कथामञ्जरी'** में भी उपलब्ध होता है। इन ग्रन्थों में जो कुछ वृत्तान्त मिलता है, वह प्राय: परस्पर मिलता-जुलता-सा है। मुख्य घटना अर्थात् शिव से पाणिनि के रचनाशक्ति प्राप्त करने के सम्बन्ध में तो बिलकुल मतभेद नहीं है। जैसा कि कथासरित्सागर में कहा गया है—

सर्वविद्यामुखं तेन प्राप्तं व्याकरणं नवम्।

(कथासरित्सागर)

इसी प्रकार हरचरितचिन्तामणि की उक्ति है—

आराध्य तपसा तत्र विद्याकामः स शङ्करम्।
प्राप्य व्याकरणं दिव्यं स च विद्यामुखं शुभम्।।

पाणिनि की माता का नाम दाक्षी तथा पिता का नाम पाणिन् था। पाणिनि के सम्बन्ध में यह प्रसिद्धि है कि वे बाल्यकाल में मन्दबुद्धि के थे। इन्होंने बचपन में ही आचार्य उपवर्ष (वर्षाचार्य) के यहाँ विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। व्याडिं तथा वररुचि (कात्यायन) इनके सहाध्यायी थे। एक दिन पाणिनि व्याकरण-सम्बन्धी शास्त्रार्थ में अपने सहाध्यायियों से हार गये, जिससे उनके हृदय को गहरी चोट पहुँची। भगवान् का विधान सदा मङ्गलपूर्ण होता है। उनका शाप भी अनुग्रहरूप हुआ करता है। बाद में अपनी बराबरी वालों से हारने के कारण पाणिनि को जो असह्य ग्लानि हुई, उसने उनके जीवन को पलट दिया। व्याकरणशास्त्र में पारदर्शी होने के उद्देश्य से तथा वैयाकरणों में सर्वश्रेष्ठ बनने की प्रबल आकांक्षा से उन्होंने आशुतोष भगवान् शंकर की आराधना के हेतु कठोर तप आरम्भ किया। भगवान् के अनुग्रह से

उनकी अभिलाषा पूर्ण हुई। पाणिनि ने अद्भुत सफलता के साथ एक ऐसे शृङ्खलाबद्ध व्याकरण की रचना की, जिसके जोड़ का दूसरा व्याकरण विश्ववाङ्मय में अभी तक कदाचित् बना ही नहीं। इस सम्बन्ध में एक दूसरी आख्यायिका भी प्रचलित है, जो इस प्रकार है—

प्रयाग में अक्षयवट के नीचे पाणिनि कठोर तपस्या कर रहे थे। उस समय भगवान् शूलपाणि सिद्धों का संघ साथ लिये हुए उनके सामने प्रकट हुए और लगे ताण्डव नृत्य करने। नृत्य के समय भगवान् ने आनन्दातिरेक से चौदह बार डमरु-ध्वनि की। जैसा कि कहा है—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान् एतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

(नन्दिकेश्वरकाशिका)

इस अपूर्व एवं अलौकिक घटना से पाणिनि को पहली बार व्याकरण-सूत्र रचने की शक्ति प्राप्त हुई और इसी शक्ति के द्वारा उन्होंने आगे चलकर अष्टाध्यायी का वैज्ञानिक ढंग से निर्माण किया, जिसका आज संस्कृत व्याकरण में इतना मान है। डमरु के चौदह नादों से ही चौदह मूल सूत्रों की रचना हुई, जिनके आधार पर सारी अष्टाध्यायी प्रणीत हुई। इसीलिये इनको शिव-सूत्र अर्थात् शिव के द्वारा आविर्भूत व्याकरण-सूत्र कहते हैं, जो सर्वथा उचित ही है।

पाणिनीय व्याकरण की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह पिछला इतिहास अधिक मान्य है। पाणिनीय शिक्षा में भी यह आख्यान इसी प्रकार वर्णित है—

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः।।

(पा.शि.)

भगवान् नन्दिकेश्वर ने अपनी **'काशिकावृत्ति'** में इन शिव-सूत्रों की इस प्रकार से व्याख्या की है, मानों इसकी रचना शैवागम तथा शाक्तागम के दिव्य रहस्य का उद्घाटन करने के उद्देश्य से ही हुई थी। उदाहरणतः उन्होंने प्रथम सूत्र **'अ इ उ ण्'** की निम्न प्रकार से व्याख्या की है—

'अ' निर्गुण ब्रह्म का वाचक है और **'उ'** सगुण ब्रह्म का। जब 'अ' अर्थात् निर्गुण ब्रह्म 'इ' अर्थात् माया (चिच्छक्ति) के साथ सम्पर्क में आता है, तब वह 'उ' अर्थात् सगुण ब्रह्म हो जाता है। तन्त्रों में भी इसी प्रकार का सिद्धान्त वर्णित है। वहाँ कहा गया है— **शिवशक्त्यात्मकं विश्वम्।**

तान्त्रिक सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि का विकास शिवशक्ति के संयोग का परिणाम है। श्रीमच्छङ्कराचार्य ने भगवती त्रिपुरसुन्दरी की स्तुति में पुरुष और प्रकृति के इस अनादि युग्म का (जिसे विज्ञान तथा दर्शन की भाषा में जड़ तथा चेतन का संयोग कह सकते हैं) बड़े हृदयग्राही शब्दों में वर्णन किया है। वे कहते हैं—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।।

(सौन्दर्यलहरी)

वर्णों की दिव्य शक्ति (मामृका वर्ण) को पहले-पहल तान्त्रिकों ने ही स्वीकार किया हो, यह बात नहीं है। वैदिक काल में भी यह बात सिद्धान्तरूप में स्वीकार कर ली गयी है। यही कारण है कि प्रणव (ॐकार) को वेदों ने साक्षात् ब्रह्म का स्वरूप माना है और उपनिषदों में परब्रह्म के लिङ्गरूप में शब्दब्रह्म की उपासना का उपदेश दिया गया है। महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ने भी वर्णों को ब्रह्म का जाज्वल्यमान स्फुलिंग माना है। यथा—

सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायपुष्पितः फलितश्चन्द्रकारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः।

नाट्यशास्त्र के आदि प्रवर्तक नटराज शंकर

भगवान् शंकर नाट्य के आद्य प्रवर्तक हैं और इस प्रवर्तना के अवसर पर वे नटराज के नाम से अभिहित किये जाते हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में इस विषय का बड़ा ही रोचक वर्णन उपलब्ध होता है। भरत के अनुसार कृतयुग में नाटक का आरम्भ परिलक्षित नहीं होता। इसका आरम्भ त्रेतायुग में दृष्टिगोचर होता है। त्रेतायुग में विश्व में विशेष परिवर्तन हुआ। लोगों में काम, क्रोध, ईर्ष्या, लोभ आदि भावों का विशेष अस्तित्व आ गया। ग्राम्य

धर्म की अधिक प्रवृत्ति हुई। उस युग में मनोरञ्जन का सर्वथा अभाव था। देवताओं को यह बात खलने लगी। उन सब ने जाकर पितामह ब्रह्मा से प्रार्थना की।

महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्।।

(नाट्यशास्त्र, १.११)

ब्रह्मा ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर चारों वेदों से एक-एक तत्त्व का संग्रह कर उन्होंने चार तत्त्वों से सम्पन्न नाट्यवेद का निर्माण किया—

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।

(नाट्यशास्त्र, १.१७)

इसके अनन्तर तन्निर्दिष्ट अभिनय के प्रदर्शन के लिये ब्रह्मा ने भरत मुनि को आदेश दिया। तदनुसार इन्होंने अपने पुत्रों तथा अप्सराओं के सहयोग से दो नाटकों का मञ्चन किया, जिसमें प्रथम था अमृत-मंथन समवकार और दूसरा था त्रिपुट-दाह डिम। पूर्वरङ्ग की विधिवत् पूजा तथा अर्चना के अनन्तर समुचित अवसर पर इन दोनों का अभिनय किया गया। इस अभिनय के द्रष्टा के रूप में भगवान् शंकर स्वयं उपस्थित थे तथा साथ ही उनके भूतगण भी थे। भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने नाट्य की सम्यक् सृष्टि से आह्लादित होकर पितामह से कहा कि नाटक का प्रयोग तो यथार्थ ही हुआ है, परन्तु इसमें रोचकता कम है; क्योंकि इसमें नृत्य का कथमपि सन्निवेश नहीं किया गया है। इस अभाव की पूर्ति का उपाय भगवान् शंकर ने बताया—

मयापीदं स्मृतं नृत्यं सन्ध्याकालेषु नृत्यता।
नानाकरणसंयुक्तैरङ्गहारैर्विभूषितम् ।।
पूर्वरङ्गविधावस्मिन् त्वया सम्यक् प्रयोज्यताम्।।

(नाट्यशास्त्र, ४.१३)

नाट्यशास्त्र में नृत्त के सम्पादन की क्रिया अङ्गहारी के द्वारा होती है। अङ्गकार का प्रधान सहायक होता है 'करण'। इस शब्द की व्याख्या में भरतमुनि का लक्षण-निर्देश इस प्रकार है—

हस्तपादसमायोगो नृत्यस्य करणं मतम्।

(नाट्यशास्त्र, ४.३०)

ये करण एक सौ आठ प्रकार के होते हैं, जिसमें पहले का नाम 'तलपुष्पपुट' है तथा अन्तिम का नाम 'गङ्गावतरण' है।

मूलतः ये समग्र करण कोपरूंजीदेव नामक दक्षिण भारत के शासक द्वारा (१२४३ ई., १२७२ ई.) चिदम्बर नामक प्रख्यात स्थान में नटराज के गोपुरों में पत्थर काट कर तैयार किये गये थे और प्रत्येक करण का नाम-निर्देश नाट्यशास्त्र के श्लोकों के साथ किया गया था, जिसमें से केवल ७३ ही करण आज उपलब्ध हैं। शेष १५ करण नष्ट हो गये हैं। श्लोकों से सम्पन्न होने के कारण इनकी पहचान भली-भाँति की गयी है।

इन्हीं करणों से संवलित होने वाले अङ्ग-विक्षेप संख्या में ३२ होते हैं, जिनके नाम और लक्षण नाट्यशास्त्र में दिये गये हैं। प्रथम अङ्गहार का नाम 'स्थिरहस्त' है और अन्तिम का नाम 'अर्धनिकुट्टक'। इन्हीं के संग से चार रेचक भी होते हैं। रेचक शब्द का अर्थ होता है 'वलन' - चलना, हिलाना या गति देना। चार विशिष्ट अङ्गों के चलाने के कारण चार रेचक होते हैं— १. पादरेचक, २. कटिरेचक, ३. कररेचक तथा ४. कण्ठरेचक।

इन समग्र अङ्गधारों तथा रेचकों से संयुक्त लय और ताल के वश में भगवान् शंकर ने दक्ष-यज्ञ के नष्ट किये जाने पर डिंडिम, गोमुख, पणव आदि विविध वाद्यों के संग में सन्ध्याकाल में जो नृत्य किया, उसे ही **'ताण्डव'** कहते हैं। महादेव की आज्ञा से उन्हीं के प्रधानगण 'तण्डु' ने इन नृत्यों को अभिनय के प्रयोग के निमित्त भरतमुनि को दिया था। तण्डु से सम्बन्ध रखने के कारण इनका नाम **'ताण्डव'** पड़ा। अभिनवगुप्त ने अपनी टीका में **'तण्डु'** शम्भु के प्रख्यात गण नन्दी का ही नामान्तर बतलाया है। महादेव के आदेश से भरत ने इनका समुचित प्रयोग अभिनय के संग कर उसे चमत्कृत, आकर्षक, मनोरञ्जक बनाया। इन्हीं नृत्यों के कर्ता होने के कारण शंकर **'नटराज'** के प्रख्यात अभिधान में अभिहित किये जाते हैं और नाट्य के आद्य प्रवर्तक होने के गौरव से मण्डित माने जाते हैं—

आङ्गिकं भुवनं यस्य वाचिकं सर्ववाङ्मयम्।
आहार्यं चन्द्रतारादि तं नुमः सात्त्विकं शिवम्।।

(अभिनयदर्पण)

मुनियों का कहना है कि यह नाट्य तो देवताओं की आँखों को लुभाने वाला यज्ञ है। पार्वती के साथ विवाह के अनन्तर शिव ने अपने शरीर में इसके दो भाग कर दिये हैं, एक है **'ताण्डव'** और दूसरा है **'लास्य'**। ताण्डव तो शंकर का नृत्य है, जो उद्धत और आकर्षक है। लास्य पार्वती का नृत्य है, जो सुकुमार तथा मनोहर है। संसार के तीनों गुणों से उत्पन्न नाना रसचरित यहाँ दिखाई पड़ते हैं। तथ्य तो यह है कि अलग-अलग रुचि वाले लोगों के लिये नाटक ही ऐसा उत्सव है, जिसमें सबको एक समान आनन्द मिलता है। महाकवि कालिदास ने नाट्य के महत्त्व का अपने इस कथन से पूरा समर्थन किया है—

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।।

(मालविकाग्निमित्रम्, १.४)

आद्य नर्तक तथा अभिनयकर्ता के रूप में नटराजराज भगवान् शंकर का बड़ा ही अभिराम वर्णन महाकवि विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस में उपलब्ध होता है—

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवनेः रक्षतः स्वैरपातैः
सङ्कोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयतः सर्वलोकातिगानाम्।
दृष्टिं लक्ष्येषु नोग्रां ज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते-
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्यम्।।

(मुद्राराक्षस, १.२)

अर्थात् भगवान् शंकर पूरे हर्ष में आकर पृथिवी पर अपना पैर पटकते हैं, तो पृथिवी के धँस जाने की आशङ्का उत्पन्न हो जाती है। अतः वे पृथिवी की इस अवनति से रक्षा करते हुए नाचते हैं। समस्त लोकों में फैलने वाली अपनी भुजाओं को संकुचित करते हुए अभिनय करते हैं, जिससे वे लोक भुजाओं के आघात से छिन्न-भिन्न न हो जायँ। शिव जी के तृतीय नेत्र से अग्नि के कण निकलते हैं, अतः लोकों के जल जाने के भय से अपनी दृष्टि को बन्द करके ही नाचते हैं। इस प्रकार आधार को किसी प्रकार आघात न

पहुँचे, इसलिये वे स्वच्छन्द-रूप से नाचने का व्यापार नहीं करते। त्रिपुर के विजयकर्ता भगवान् शंकर का दुःख से सम्पादित नृत्य आप लोगों की रक्षा करे।

इस प्रकार भगवान् शिव का ताण्डव नृत्य जगत् के मङ्गल के लिये प्रवृत्त होता है। नटराज का नर्तन जगत् की सृष्टि के लिये होता है, संहार के लिये नहीं। नटराज की यही कल्पना पुराणों तथा काव्य ग्रन्थों में बहुशः वर्णित है। नटराज भगवान् शंकर नृत्त तथा नाट्य के आद्य प्रवर्तक माने जाते हैं। साहित्य जगत् को नटराज की यह देन सर्वथा स्मरणीय एवं अभिनन्दनीय बनी रहेगी।

नटराज उपाधि का रहस्य

मृत्युलोक के प्राणियों को नृत्य-दर्शन के पुण्य दिलाने के लिये भगवान् महाकाल शिव ने राधा जी का अवतार लेकर व्रज में जन्म लिया और देवदुर्लभ रासमण्डल का आयोजन किया तथा श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र को नटराज की उपाधि दी गयी। जैसा कि कल्याण के शिवाङ्क में वर्णित है—

किसी समय प्रदोषकाल में जब देवगण रजतगिरि कैलास पर 'नटराज' शिव के ताण्डव में सम्मिलित हुए और जगज्जननी आद्या श्री गौरी जी रत्नसिंहासन पर बैठकर अपनी अध्यक्षता में ताण्डव कराने को तैयार हुईं, उसी समय वहाँ महर्षि नारद भी पहुँच गये और अपनी वीणा के साथ ताण्डव में सम्मिलित हुए। तदनन्तर श्री शिव ताण्डवनृत्य करने लगे। श्री सरस्वती जी वीणा बजाने लगीं। देवराज इन्द्र बांसुरी बजाने लगे, ब्रह्मा जी हाथ से ताल देने लगे और लक्ष्मी जी आगे-आगे गाने लगी। भगवान् विष्णु मृदङ्ग बजाने लगे और शेष देवगण तथा गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, उरग, सिद्ध, विद्याधर, अप्सरायें सभी चारों ओर स्तुति में लीन हो गये। बड़े ही आनन्द के साथ ताण्डव सम्पन्न हुआ। उस समय श्री आद्या भगवती (महाकाली) पार्वती जी परम प्रसन्न हुईं और उन्होंने श्री शिव जी (महाकाल) से पूछा कि आप क्या चाहते हैं? आज बड़ा ही आनन्द हुआ। फिर सब देवों से, विशेषकर नारदजी से प्रेरित होकर उन्होंने यह वर माँगा कि 'हे देवि! इस आनन्द को केवल हम लोग ही लेते हैं, किन्तु पृथिवीतल में एक ही नहीं, हजारों भक्त इस आनन्द से तथा नृत्य-दर्शन से वञ्चित रहते हैं, अत एव

मृत्युलोक में भी जिस प्रकार मनुष्य इस आनन्द को प्राप्त करें, ऐसा कीजिये। यह सुनकर भगवान् शिव ने कहा कि मैं अपने ताण्डव को समाप्त करूँगा और **'लास्य'** करूँगा। इस बात को सुनकर श्री आद्या भुवनेश्वरी महाकाली ने एवमस्तु कहा और देवगणों से मनुष्य-अवतार लेने को कहा और स्वयं श्यामा (आद्या महाकाली) श्यामसुन्दर का अवतार लेकर श्री वृन्दावन धाम में आयीं और भगवान् शिव (महाकाल) राधा जी का अवतार लेकर व्रज में आये और देवदुर्लभ रासमण्डल की आयोजना की तब नटराज की उपाधि यहाँ श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र को दी गयी।



२. उमामहेश्वर-लीला

किसी समय नारद मुनि ने ब्रह्मा जी से कहा— हे ब्रह्मन्! परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को जानने वाले पितामह! आपके कृपाप्रसाद से मैंने भगवान् विष्णु के उत्तम माहात्म्य का पूर्णतया ज्ञान प्राप्त किया है। भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, अत्यन्त दुस्तर तपोमार्ग, दानमार्ग तथा तीर्थमार्ग का भी वर्णन सुना है, परन्तु शिवतत्त्व का ज्ञान मुझे अभी तक नहीं हुआ है। इसलिये मैं आपके शरण में आया हूँ। आप कृपा कर शिव और शिवा के विविध चरित्रों तथा उनके स्वरूपतत्त्व, प्राकट्य आदि सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे बतलायें।

अपने पुत्र नारद जी की यह बात सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा इस प्रकार बोले— हे ब्रह्मन्! ऋषिशिरोमणे! तुम सदा समस्त जगत् के उपकार में लगे रहते हो। तुमने लोगों की हित की कामना से यह उत्तम वृत्तान्त पूछा है, जिसके सुनने से सम्पूर्ण लोकों के समस्त पापों का क्षय हो जाता है, उस अनामय, शिवतत्त्व का वर्णन करता हूँ। शिवतत्त्व का स्वरूप बड़ा ही उत्कृष्ट और अद्‌भुत है। जिस समय समस्त चराचर जगत् प्रलय के गाल में विलीन हो चुका था, सर्वत्र केवल अन्धकार ही अन्धकार था, न सूर्य दिखायी देते थे, न चन्द्रमा। अन्यान्य ग्रहों और नक्षत्रों का भी पता नहीं था। न दिन होता था न रात, अग्नि, पृथ्वी और जल की सत्ता नहीं थी। प्रधान-तत्त्व (अव्याकृत प्रकृति) से रहित सूना आकाशमात्र शेष था। इस प्रकार सब ओर निरन्तर सूचीभेद्य घोर अन्धकार फैला हुआ था। उस समय 'तत्सद्‌ब्रह्म' इस श्रुति में जो 'सत्' सुना जाता है, एकमात्र वही शेष था। वह सत्तत्त्व मन का विषय नहीं है। वाणी की भी वहाँ तक कभी पहुँच नहीं होती। वह नाम तथा रूप-रंग से भी शून्य है। वह न स्थूल है, न कृश, न ह्रस्व है न दीर्घ तथा न लघु है न गुरु। श्रुति भी चकित भाव से उसकी सत्तामात्र का ही निरूपण कर पाती है, उसका कोई विशेष विवरण देने में असमर्थ हो जाती है। वह सत्य, ज्ञानस्वरूप, अनन्त, परमानन्दमय परम ज्योति:स्वरूप, अप्रमेय,

निर्विकार, निराकार, निर्गुण, योगिजनगम्य, सर्वव्यापी, अनादि, सङ्कोच-विकास से शून्य तथा चिन्मय है।

जिस परब्रह्म के विषय में ज्ञान और अज्ञान से पूर्ण उक्तियों द्वारा ऊपर बतायी गयी श्रुति के अनुसार विकल्प किये जाते हैं, उसने सृष्टि का समय आने पर द्वितीय की इच्छा प्रकट की। उसके भीतर एक से अनेक होने का सङ्कल्प उदित हुआ। तब उस निराकार परमात्मा ने अपनी लीला शक्ति से अपने लिये मूर्ति (आकार) की कल्पना की। वह मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणों से सम्पन्न, सर्वज्ञानमयी, शुभस्वरूपा, सर्वव्यापिनी, सर्वदर्शिनी, सर्ववन्द्या एवं सम्पूर्ण संस्कृतियों का केन्द्र थी। उस शुद्धरूपिणी ईश्वर-मूर्ति की कल्पना करके वह अद्वितीय, अनादि, सर्वप्रकाशक परब्रह्म अन्तर्हित हो गया। जो मूर्तिरहित परम ब्रह्म है, उसी की मूर्ति चिन्मय आकार भगवान् सदा कल्याण करने वाले सदाशिव हैं। अर्वाचीन और प्राचीन विद्वान् उन्हीं को ईश्वर कहते हैं। उस समय एकाकी रह कर स्वेच्छा से विहार करने वाले उन सदाशिव ने अपने विग्रह से स्वयं ही एक स्वरूपभूता शक्ति की सृष्टि की, जो उनके अपने श्री अङ्ग से कभी अलग होने वाली नहीं थी। उस परा शक्ति को प्रधान, प्रकृति, गुणवती, माया, बुद्धितत्त्व की जननी तथा विकाररहित बतलाया गया है। वह शक्ति अम्बिका कही गयी है। वह अचिन्त्य तेज से जगमगाती है। वह सबकी योनि है और सदा उद्यमशील रहती है। एकाकिनी होने पर भी मायासंयोगवशात् अनेक हो जाती है।

वे जो सदाशिव हैं, उन्हें परमपुरुष, ईश्वर, शिव-शम्भु और महेश्वर कहते हैं। वे अपने मस्तक पर आकाश-गङ्गा को धारण करते हैं। उनके भालदेश में चन्द्रमा शोभा पाता है। उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र हैं। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है। उनके अङ्गों की प्रभा कर्पूर के समान श्वेत-गौर है। अपने अङ्गों में भस्म रमाये रहते हैं। उस कालरूपी ब्रह्म ने एक ही समय शक्ति के साथ 'शिवलोक' नामक क्षेत्र का निर्माण किया था। उस उत्तम क्षेत्र को ही 'काशी' कहते हैं। वह परम निर्वाण या मोक्ष का स्थान है, जो सबके ऊपर विराजमान है। वे शक्तिविशिष्ट शिव, जो परमानन्दस्वरूप हैं, उस परम मनोहर क्षेत्र में नित्य निवास करते हैं। शिव और शिवा ने प्रलयकाल में भी कभी उस क्षेत्र को अपने सान्निध्य से मुक्त

नहीं किया, इस लिये विद्वान् पुरुष उसे **'अविमुक्त क्षेत्र'** के नाम से भी जानते हैं। यह क्षेत्र सम्पूर्ण आनन्द का हेतु है। इसलिये पिनाकधारी शिव ने इसका नाम **'आनन्दवन'** रखा है।

पुनः ब्रह्मा ने कहा— हे देवर्षे! एक समय उस आनन्दवन में रमण करते हुए शिव और शिवा के मन में यह इच्छा हुई कि किसी दूसरे पुरुष की भी सृष्टि करनी चाहिये, जिस पर यह सृष्टि सञ्चालन का महान् भार रखकर हम दोनों केवल काशी में रहकर इच्छानुसार विचरण करें। वही पुरुष हमारे अनुग्रह से सदा सबकी सृष्टि, पालन करे और अन्त में वही सबका संहार भी करे। यह चित्त एक समुद्र के समान है। इसमें चिन्ता की उत्ताल तरङ्गें उठ-उठ कर इसे चञ्चल बनाये रहती हैं। इसमें सत्त्वगुणरूपी रत्न, तमोगुणरूपी ग्राह और रजोगुणरूपी मूँगे भरे हुए हैं। इस विशाल चित्तसमुद्र को सङ्कुचित कर हम दोनों उस पुरुष के प्रसाद से आनन्द-कानन (काशी) में सुखपूर्वक निवास करें। ऐसा निश्चय कर शक्तिसहित सर्वव्यापी परमेश्वर शिव ने अपने वाम भाग के दसवें अङ्ग पर अमृत मल दिया। फिर तो वहाँ से एक पुरुष प्रकट हुआ, जो तीनों लोकों में सबसे अधिक सुन्दर था। वह शान्त था। उसके अङ्ग-अङ्ग से दिव्य शोभा छिटक रही थी।

तदनन्तर उस पुरुष ने परमेश्वर शिव को प्रणाम करके कहा— स्वामिन्! मेरे नाम निश्चित कीजिये और काम बतलाइये। उस पुरुष की यह बात सुनकर महेश्वर भगवान् शंकर हँसते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी में उससे बोले। शिव ने कहा— वत्स! व्यापक होने के कारण तुम्हारा नाम **विष्णु** विख्यात हुआ। इसके अतिरिक्त और भी बहुत नाम होंगे। तुम सुस्थिर उत्तम तप करो; क्योंकि वही समस्त कार्यों का साधक है।

ऐसा कह कर भगवान् शिव ने श्वास मार्ग से श्रीविष्णु को वेदों का ज्ञान प्रदान किया। तदनन्तर अपनी महिमा से कभी च्युत न होने वाले भगवान् शिव को प्रणाम कर श्रीविष्णु बड़ी भारी तपस्या में लग गये। भगवान् शिव भी वहाँ से अदृश्य हो गये। भगवान् विष्णु ने सुदीर्घ काल तक बड़ी कठोर तपस्या की। तपस्या के प्रभाव से भगवान् विष्णु के अङ्गों से नाना प्रकार की जलधारायें निकलने लगीं। उस जल से सारा सूना आकाश व्याप्त हो गया। वह ब्रह्मरूप जल अपने स्पर्श मात्र से सब पापों का नाश करने वाला सिद्ध

हुआ। उस समय थके हुए परम पुरुष विष्णु ने स्वयं उस जल में शयन किया। उन्होंने दीर्घकाल तक बड़ी प्रसन्नता के साथ जल में निवास किया। नार अर्थात् जल में अयन अर्थात् निवास के कारण ही उनका नाम **'नारायण'** यह श्रुति-सम्मत नाम प्रसिद्ध हुआ। उस समय उस परम पुरुष नारायण के अतिरिक्त दूसरी कोई प्राकृत वस्तु नहीं थी। उसके बाद ही उन महात्मा नारायण देव से यथासमय सभी तत्त्व प्रकट हुये।

जब नारायण देव जल में शयन कर रहे थे, उस समय उनकी नाभि से भगवान् शंकर के इच्छावश सहसा एक उत्तम कमल प्रकट हुआ, जो बहुत बड़ा था। वह कमल अत्यन्त सुन्दर होने के साथ ही सम्पूर्ण तत्त्वों से युक्त था और अत्यन्त अद्भुत, परम रमणीय, दर्शनीय तथा सबसे उत्तम था। तत्पश्चात् कल्याणकारी परमेश्वर साम्ब सदाशिव ने पूर्ववत् प्रयत्न करके ब्रह्मा को अपने दाहिने जङ्घे से उत्पन्न कर नारायणदेव के नाभिकमल में डाल दिया और लीलापूर्वक ब्रह्मा को वहाँ से प्रकट किया। इस प्रकार उस कमल के पुत्र के रूप में हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का जन्म हुआ। उनके चार मुख और शरीर की कान्ति लाल थी। भगवान् शिव की माया से मोहित होने के कारण ब्रह्मा ने उस कमल के सिवा दूसरे किसी को अपने शरीर का जनक या पिता नहीं समझा। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरा क्या है— इस प्रकार संशय में पड़े हुये ब्रह्मा के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ। पुनः किसलिये मोह में पड़ा हुआ हूँ? जिसने मुझे उत्पन्न किया है, उसका पता लगाना तो बहुत सरल है। इस पत्रयुक्त कमलपुष्प के नाल का उद्गमस्थान इस जल के भीतर नीचे की ओर है। जिसने मुझे उत्पन्न किया है, वह पुरुष भी वहीं होगा— इसमें कोई संशय नहीं है।

ब्रह्मा जी कहते हैं— हे मुनि नारद! ऐसा निश्चय कर मैंने अपने को कमल के नीचे उतारा। मैं उस कमल की एक-एक नाल में गया और सैंकड़ों वर्षों तक वहाँ भ्रमण करता रहा, किन्तु कहीं भी उस कमल के उद्गम का स्थान मुझे नहीं मिला। तब पुनः संशय में पड़कर मैं उस कमल पुष्प पर जाने के लिये उत्सुक हुआ और नाल के सहारे उसी कमल पर चढ़ने लगा। इस तरह बहुत ऊपर जाने पर भी मैं उस कमल के कोश को न प्राप्त कर सका। उस समय मैं और भी मोहित हो उठा। तब भगवान् शिव की इच्छा से परम

मङ्गलमयी आकाशवाणी हुई, जो मेरे मोह को विध्वंस करने वाली थी। उस वाणी ने कहा— 'तप' (तपस्या करो)। उस आकाशवाणी को सुनकर मैंने अपने जन्मदाता पिता का दर्शन करने के लिए प्रयत्नपूर्वक बारह वर्षों तक घोर तपस्या की। तब मुझ पर अनुग्रह करने के लिए ही चार भुजाओं और सुन्दर नेत्रों से सुशोभित भगवान् विष्णु वहाँ सहसा प्रकट हुये। उस परम पुरुष ने अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रखे थे। उनका मुखारविन्द प्रसन्नता से खिला हुआ था। मैं उनकी छवि पर मोहित हो रहा था। उस समय उन सदसत्स्वरूप, सर्वात्मा, चतुर्भुज, महाबाहु नारायणदेव को वहाँ उस रूप में अपने साथ देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ।

तदनन्तर उन नारायणदेव के साथ मेरी बातचीत प्रारम्भ हुई। भगवान् शिव की लीला से वहाँ हम दोनों में कुछ विवाद छिड़ गया। इसी समय हम दोनों के बीच एक महान् अग्निस्तम्भ (ज्योतिर्मय लिङ्ग) प्रकट हुआ। मैंने और विष्णु ने क्रमशः ऊपर और नीचे जाकर उसके आदि अन्त का पता लगाने के लिये बड़ा प्रयत्न किया। परन्तु हमें कहीं भी उसका ओर-छोर नहीं मिला। मैं थककर ऊपर से नीचे लौट आया और भगवान् विष्णु भी उसी तरह नीचे से ऊपर आकर मुझ से मिले। हम दोनों शिव की माया से मोहित थे। श्रीहरि शिव को प्रणाम कर सोचने लगे — यह क्या वस्तु है? इसके स्वरूप का निर्देश नहीं किया जा सकता ; क्योंकि न तो इसका कोई नाम है और न कर्म ही है। लिङ्गरहित तत्त्व ही यहाँ लिङ्गभाव को प्राप्त हुआ है। ध्यान मार्ग से भी इसके स्वरूप का कुछ पता नहीं चलता। इसके बाद मैं और हरि दोनों ने अपने चित्त को स्वस्थ करके उस अग्निस्तम्भ को प्रणाम करना आरम्भ किया। हम दोनों बोले— महाप्रभो! हम आपके स्वरूप को नहीं जानते। आप जो कोई भी क्यों न हों, आपको हमारा नमस्कार है। आप शीघ्र ही हमें अपने यथार्थ स्वरूप का दर्शन करायें। इस प्रकार अहङ्कार से आविष्ट हुये हम दोनों ही वहाँ नमस्कार करने लगे। ऐसा करते हुये हमारे सौ वर्ष बीत गये।

ब्रह्माजी कहते हैं— हे मुनिश्रेष्ठ नारद! तब हम दोनों का गर्व नष्ट हो गया और हम दोनों देवता गर्वरहित हो निरन्तर प्रणाम करते रहे। हम दोनों के मन में एक ही अभिलाषा थी कि इस ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में प्रकट हुए परमेश्वर दर्शन दें। भगवान् शंकर दोनों के प्रतिपालक, अहङ्कारियों का गर्व

चूर्ण करने वाले तथा सबके अविनाशी प्रभु हैं। वे हमदोनों पर दयालु हो गये। उस समय वहाँ पुनः उन सुरश्रेष्ठ से 'ओ३म्' 'ओ३म्' ऐसा शब्द रूप नाद प्रकट हुआ। जो स्पष्ट रूप से सुनायी देता था। वह नाद प्लुत स्वर में अभिव्यक्त हुआ था। भगवान् विष्णु सर्वथा वैरभाव से रहित थे, इसलिये उन्होंने उस नादस्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार किया।

तत्पश्चात् श्रीहरि यह सोचने लगे कि यह अग्नि-स्तम्भ यहाँ कहाँ से प्रकट हुआ है? हम दोनों पुनः इसकी परीक्षा करें। मैं इस अनुपम अनलस्तम्भ के नीचे जाऊँगा — ऐसा विचार करते हुए श्रीहरि ने वेद और शब्द दोनों के आवेश से युक्त विश्वात्मा शिव का चिन्तन किया। तदनन्तर वहाँ एक ऋषि प्रकट हुए, जो ऋषि-समूह के परम स्वरूप माने जाते हैं। उन्हीं ऋषि के द्वारा परमेश्वर विष्णु ने जाना कि इस शब्दब्रह्ममय शरीर वाले परम लिङ्ग के रूप में साक्षात् परब्रह्मस्वरूप महादेव जी ही यहाँ प्रकट हुये हैं। ये अचिन्त्य रुद्र हैं। जहाँ जाकर मनसहित वाणी उसे प्राप्त किये बिना लौट आती है, उस परब्रह्म परमात्मा शिव का वाचक एकाक्षर (प्रणव) ही है, वे इसके वाच्यार्थरूप हैं। वह परम कारण, ऋत, सत्य, आनन्द एवं अमृतस्वरूप परात्पर परब्रह्म एकाक्षर का वाचक है। वे भगवान् शङ्कर ही 'अ', 'उ' और 'म्' इन त्रिविध रूपों में वर्णित हुए हैं। इसी अभिप्राय से उन ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप सदाशिव ने 'ओ३म्' 'ओ३म्' ऐसा कहा। इस तरह देवेश्वर शिव को जानकर श्रीहरि ने शक्तिसम्भूत मन्त्रों द्वारा उत्तम एवं महान् अभ्युदय से सुशोभित होने वाले उन महेश्वर देव का स्तवन किया।

ब्रह्माजी कहते हैं— हे मुनीश्वर! इसी बीच में भगवान् विष्णु ने एक और भी अद्भुत एवं सुन्दर रूप देखा। मुने! वह रूप पाँच मुखों और दश भुजाओं से सुशोभित था। उसकी कान्ति कर्पूर के समान गौर थी। वह नाना प्रकार की छटाओं से छविमान् और भाँति-भाँति के आभूषणों से विभूषित था। उस उत्कृष्ट रूप का दर्शन करके हम दोनों कृतार्थ हो गये।

तत्पश्चात् परमेश्वर महेश प्रसन्न हो अपने दिव्य शब्दमय रूप को प्रकट कर हँसते हुए खड़े हो गये। इस प्रकार निर्गुण एवं सगुणस्वरूप परमात्मा के शब्दमय रूप को देखकर ब्रह्मा और श्रीहरि दोनों कृतार्थ हो गये। तब ब्रह्मा और विष्णु ने प्रिय वचनों द्वारा सन्तुष्ट चित्त से साम्बशिव का स्तवन किया।

ब्रह्माजी कहते हैं— हे नारद! भगवान् विष्णु के द्वारा की गयी अपनी स्तुति सुनकर करुणानिधि महेश्वर बड़े प्रसन्न हुए और उमादेवी के साथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उस समय उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र शोभा पा रहे थे। भालदेश में चन्द्रमा का मुकुट सुशोभित था। सिर पर जटा धारण किये गौरवर्ण विशालनेत्र शिव ने अपने सम्पूर्ण अङ्गों में विभूति लगा रखी थी। उनके दस भुजायें थीं। कण्ठ में नीला चिह्न था। भगवान् परमेश्वर महादेव को भगवती उमा के साथ उपस्थित देख मैंने और भगवान् विष्णु ने पुनः प्रिय वचनों द्वारा उनकी स्तुति की। तब पापहारी, करुणाकर भगवान् महेश्वर ने प्रसन्नचित्त होकर उन श्रीविष्णुदेव को श्वासरूप से वेद का उपदेश दिया। मुने! उसके बाद शिव ने परमात्मा हरि को गुह्य ज्ञान प्रदान किया। फिर उन परमात्मा ने कृपा करके मुझे भी वह ज्ञान दिया। वेद का ज्ञान प्राप्त करके कृतार्थ हुये भगवान् विष्णु ने मेरे साथ हाथ जोड़कर महेश्वर को नमस्कार करके पुनः उनसे पूजन की विधि बताने तथा सदुपदेश देने के लिये प्रार्थना की।

तत्पश्चात् श्री शिवजी बोले— हे सुरश्रेष्ठ! मैं तुम दोनों की भक्ति से निश्चय ही बहुत प्रसन्न हूँ। इस समय तुम्हें मेरा स्वरूप जैसा दिखायी देता है, वैसे ही रूप का प्रयत्नपूर्वक पूजन-चिन्तन करना चाहिये। मैं तुमदोनों पर भली-भाँति प्रसन्न हूँ। हे ब्रह्मन्! तुम मेरी आज्ञा का पालन करते हुए जगत् की सृष्टि करो और वत्स विष्णु! तुम इस चराचर जगत् का पालन करते रहो। पुनः श्री महेश्वर बोले— मैं सृष्टि, पालन और संहार का कर्ता हूँ, सगुण और निर्गुण हूँ तथा सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ। हे विष्णो! सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों अथवा कार्यों के भेद से मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करके तीन स्वरूपों में विभक्त हुआ हूँ। विष्णु! तुम दोनों ने मेरे उमामहेश्वर अवतार के निमित्त जो स्तुति की है, तुम्हारी उस प्रार्थना को मैं अवश्य सत्य करूँगा; क्योंकि मैं भक्तवत्सल हूँ। ब्रह्मन्! मेरा ऐसा ही परम उत्कृष्ट रूप तुम्हारे शरीर से इस लोक में प्रकट होगा, जो नाम से 'रुद्र' कहलायेगा। मेरे अंश से प्रकट हुए रुद्र का सामर्थ्य मुझसे कम नहीं होगा। जो मैं हूँ, वही यह रुद्र है। जैसे ज्योति का जल आदि के साथ सम्पर्क होने पर भी उसमें स्पर्श-दोष नहीं लगता, उसी

प्रकार मुझ निर्गुण परमात्मा को भी किसी के संयोग से बन्धन नहीं प्राप्त होता। यह मेरा शिव रूप है।

पुनः शिव ने कहा— हे ब्रह्मन्! मैं, तुम, विष्णु तथा जो ये रुद्र प्रकट होंगे, वे सब के सब एक रूप हैं। इनमें भेद नहीं है। भेद मानने पर अवश्य ही बन्धन होगा। मेरा शिवरूप ही सनातन है। यही सदा सब रूपों का मूलभूत कहा गया है। यह सत्य, ज्ञान एवं अनन्त ब्रह्म है।

मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यज्ञानमनन्तकम्।

(शि.पु., रु.सं., ९.४०)

हे ब्रह्मन्! गुणों में भी मेरा प्राकट्य कहा गया है। लोग हर को तामस प्रकृति का कहते हैं। वास्तव में उस रूप में अहङ्कार का वर्णन हुआ है। उस अहङ्कार को केवल तामस ही नहीं, वैकारिक (सात्त्विक) भी समझना चाहिये; क्योंकि सात्त्विक देवगण वैकारिक अहङ्कार की ही सृष्टि हैं। यह तामस और सात्त्विक आदि भेद केवल नाममात्र का है, वस्तुतः नहीं है। वास्तव में हर को तामस नहीं कहा जा सकता। इसलिये ब्रह्मा तुम तो इस सृष्टि के निर्माता बनो और श्रीहरि इसका पालन करें तथा मेरे अंश से प्रकट होने वाले रुद्र इसका प्रलय करने वाले होंगे।

ये जो 'उमा' नाम से विख्यात परमेश्वरी प्रकृति देवी हैं, इन्हीं की शक्तिभूता वाग्देवी ब्रह्माजी का सेवन करेंगी। फिर इन प्रकृति देवी से वहाँ जो दूसरी शक्ति प्रकट होगी, वे लक्ष्मीरूप से भगवान् विष्णु का आश्रय लेंगी। तदनन्तर पुनः काली नाम से जो तीसरी शक्ति प्रकट होगी, वे निश्चय ही मेरे अंशभूत रुद्रदेव को प्राप्त होंगी। वे कार्य की सिद्धि के लिये वहाँ ज्योतीरूप में प्रकट होंगी। इस प्रकार मैंने देवी की शुभस्वरूपा पराशक्तियों का परिचय दिया। उनका कार्य क्रमशः सृष्टि, पालन और संहार का सम्पादन ही है। सुरश्रेष्ठ! ये सब-की-सब मेरी प्रिया प्रकृति देवी की अंशभूता हैं। हरे! तुम लक्ष्मी का सहारा लेकर कार्य करो। ब्रह्मन्! तुम्हें प्रकृति की अंशभूता वाग्देवी को पाकर मेरी आज्ञा के अनुसार मन से सृष्टि कार्य का सञ्चालन करना चाहिये और मैं अपनी प्रिया की अंशभूता परात्पर काली का आश्रय लेकर रुद्ररूप से प्रलयसम्बन्धी उत्तम कार्य करूँगा। इस प्रकार त्रिदेवों में कोई अन्तर नहीं है। जो अन्तर समझता है, वह अवश्य नरक में गिरता है।

भगवान् शिव स्वयं कहते हैं—

त्वां यः समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः।
अन्तरं यश्च जानाति निरये पतति ध्रुवम्।।

(शि.पु., रु.सं., सृ.खं. १०.१४)

इसके बाद श्रीविष्णु ने कहा— हे करुणासिन्धो! जगन्नाथ शङ्कर! मैं आपकी आज्ञा के अधीन रहकर यह सब कुछ करूँगा। स्वामिन्! जो मेरा भक्त होकर आपकी निन्दा करेगा, उसे आप निश्चय ही नरकवास प्रदान करेंगे। नाथ! जो आपका भक्त है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। जो ऐसा जानता है, उसके लिये मोक्ष दुर्लभ नहीं है—

मम भक्तश्च यः स्वामिंस्तव निन्दां करिष्यति।
तस्य वै निरये वासं प्रयच्छ नियतं ध्रुवम्।।
त्वद्भक्तो यो भवेत्स्वामिन् मम प्रियतरो हि सः।
एवं वै यो विजानाति तस्य मुक्तिर्न दुर्लभा।।

(शि.पु., रु.सं., सृ.ख. १०.३०-३१)

ब्रह्माजी कहते हैं— हे नारद! श्रीहरि का यह कथन सुनकर दुःखहारी हर ने उनकी बात का अनुमोदन किया और नाना प्रकार के धर्मों का उपदेश देकर हम दोनों की हित की इच्छा से हमें अनेक प्रकार के वरदान दिये। इसके बाद भक्तवत्सल भगवान् शम्भु कृपापूर्वक हमारी ओर देखकर हम दोनों के देखते-देखते सहसा वहीं अन्तर्धान हो गये। तभी से इस लोक में लिङ्ग-पूजा का विधान प्रारम्भ हुआ है। लिङ्ग में प्रतिष्ठित भगवान् शिव भोग और मोक्ष देने वाले हैं। शिवलिङ्ग की जो वेदी या अर्घा है, वह महादेवी उमा का स्वरूप है और लिङ्ग साक्षात् महेश्वर का। लय का अधिष्ठान होने के कारण भगवान् शिव को **'लिङ्ग'** कहा गया है; क्योंकि उन्हीं में निखिल जगत् का लय होता है। महामुने नारद! जो शिवलिङ्ग के समीप कोई कार्य करता है, उसके पुण्यफल का वर्णन करने की शक्ति मुझमें नहीं है।

महामहेश्वर भगवान् शिव ही समस्त प्राणियों के अन्तिम विश्राम के स्थान हैं— **विश्रामस्थानमेकम्। शीङ् स्वप्ने'** धातु से शिवशब्द की सिद्धि है। **'शेरते प्राणिनो यत्र स शिवः'** अनन्त पापतापों से उद्विग्न होकर विश्राम के लिये प्राणी जहाँ शयन करे, बस उसी सर्वाधिष्ठान सर्वाश्रय को शिव कहा जाता है। **'शेते**

जगदस्मिन्निति शिवः' इस व्युत्पत्ति से भी शिव का जगत् का अधिष्ठान होना सिद्ध होता है। वही परम तत्त्व शिव अपनी दिव्य शक्तियों से युक्त होकर अनन्त ब्रह्माण्डों का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि के रूपों को धारण करते हैं। इसलिये मुण्डक श्रुति में सविशेष और निर्विशेष ब्रह्म का पृथक्-पृथक् विषेषणों से कथन किया गया है। यथा— **'यत्तदद्दृश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्'** यहाँ निर्विशेष ब्रह्म का कथन किया गया है, जो अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण और चक्षु-श्रोत्रादि से रहित हैं। परन्तु इससे अग्रिम वाक्य में जो कहा है कि— **'नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः'** (मुण्डक., १.१.६)। यहाँ सविशेष ब्रह्म का कथन किया गया है। इसलिये ब्रह्म को नित्य, विभु, सर्वव्यापक, सूक्ष्म, अव्यय तथा सम्पूर्ण भूतों का कारण बताया गया है। धीर, विवेकी पुरुष ही उसे सब ओर देखते हैं। ब्रह्म एक ही है, पर मायाविशिष्ट हो जाने पर वही ईश्वर-संज्ञक भी बन जाता है। इसी हेतु से सविशेष और निर्विशेष ब्रह्म का कथन किया गया है।

उस ब्रह्मतत्त्व से इच्छाशक्तिरूपा ब्रह्मशक्ति माया या प्रकृति अव्यक्तावस्था से व्यक्तभाव को प्राप्त होती है। वह माया विशिष्ट चैतन्यस्वरूप ब्रह्म ही ईश्वर-संज्ञक है। ब्रह्म एक ही है, वह है निर्विशेष। निर्विशेष ब्रह्म ही माया विशिष्ट होकर सविशेष अर्थात् ईश्वर संज्ञक हो जाता है। वह मायाविशिष्ट ईश्वर ही शिव और शक्ति के रूप में विद्यमान है। बाह्यरूप में भी जो हम शिव का पूजन-अर्चन आदि करते हैं, उस शिवलिङ्ग को भी वस्तुतः शिव-शक्ति के ही लिङ्ग (चिह्न) के रूप में पूजते हैं। इसलिये शिवपुराण की विद्येश्वरसंहिता (श्लो.१०७) में कहा है— **शिवशक्त्योश्च चिह्नस्य मेलनं लिङ्गमुच्यते।** अर्थात् ईश्वर और माया का मेल ही शिवलिङ्ग के नाम से कहा जाता है। उसे ही उपासना के लिये परमेश्वर का प्रतीक माना जाता है और शिवालयों में पूजन किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि 'शिव' शब्द का अर्थ ब्रह्म और 'लिङ्ग' शब्द का अर्थ चिह्न या प्रतीक है, अर्थात् मायाविशिष्ट परमेश्वर का ही लिङ्ग के रूप में पूजन होता है।

शिवपुराण विद्येश्वरसंहिता में 'लिङ्ग' शब्द का अर्थ इस प्रकार बतलाया गया है—

लीनार्थगमकं चिह्नं लिङ्गमित्यभिधीयते।
भं वृद्धिं गच्छतीत्यर्थाद् भगः प्रकृतिरुच्यते।।
मुख्यो भगस्तु प्रकृतिर्भगवान् शिव उच्यते।।

लीन अर्थात् अव्यक्तावस्थापन्न वस्तु के गमक— बतलाने वाले चिह्न को लिङ्ग कहते हैं। भ— अभिवृद्धि को तथा ग— प्राप्त होने वाली वस्तु को भग कहते हैं। उस भग के अधिष्ठाता को भगवान् शिव कहते हैं।

भगवान् शिव की स्थूल मूर्त्ति को 'शिवलिङ्ग' कहते हैं। ब्रह्माण्ड इनका लिङ्ग है। अर्थात् ज्ञापक है। उस लिङ्ग का ब्रह्मा और विष्णु भी आदि-अन्त न पा सके। यह कथा शिवपुराण में इस लिये कही गयी है कि शिव वस्तुतः **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** ही हैं। यही तात्पर्य बतलाना उसका अभिप्राय है। यजुर्वेद शतरुद्रिय अध्याय की इस विषय में पर्याप्त प्रसिद्धि है। अर्थात् अद्वय ब्रह्म ही शिव के रूप में विद्यमान हैं।

लिङ्गशब्द का साधारण अर्थ चिह्न या लक्षण है। सांख्य दर्शन में प्रकृति को, प्रकृति से विकृति को भी चिह्न कहते हैं। देव-चिह्न के अर्थ में 'लिङ्ग' शब्द शिव के ही लिङ्ग के लिये आता है और प्रतिमाओं को मूर्त्ति कहते हैं, कारण यह है कि औरों का आकार मूर्तिमान् के ध्यान के अनुसार होता है, परन्तु लिङ्ग में आकार या रूप का उल्लेख नहीं है। यह चिह्नमात्र है और चिह्न भी पुरुष की जननेन्द्रिय का-सा है, जिसे लिङ्ग कहते हैं, परन्तु स्कन्दपुराण में **'लयनाल्लिङ्गमुच्यते'** कहा है, जिसका अर्थ लय या प्रलय होता है। इसीसे उसे लिङ्ग कहते हैं। प्रलय से लिङ्ग का क्या सम्बन्ध है?

प्रलय की अग्नि में सभी कुछ भस्म होकर शिवलिङ्ग में समा जाता है। वेद-शास्त्रादि भी लिङ्ग में ही लीन हो जाते हैं। फिर सृष्टि के आदि में लिङ्ग से ही सब-के-सब प्रकट होते हैं। अतः 'लय' से ही लिङ्ग-शब्द का उद्भव ठीक ही है। उससे लय या प्रलय होता है और उसी में सम्पूर्ण विश्व का लय होता है। यह एक संयोग की बात है कि 'लिङ्ग' शब्द के अनेक अर्थों में लोक-प्रसिद्धि अर्थ अश्लील है। वैदिक शब्दों का यौगिक अर्थ लेना ही समीचीन है। यौगिक अर्थ में कोई अश्लीलता नहीं रह जाती। इसके सिवा अश्लीलता तो प्रसङ्ग से आती है। विषयात्मक वर्णन में जो अश्लील और अनुचित दीखता है, वही वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक वर्णनों में श्लील और

समुचित हो जाता है। लिङ्गार्चन में अश्लीलता के भाव की कल्पना परम मूर्खता, भयंकर नास्तिकता और घोर अनभिज्ञता है।

हमारे देश में प्राय: सर्वत्र पार्थिवपूजा प्रचलित है। परन्तु विशेष-विशेष स्थानों में पाषाणमय शिवलिङ्ग की भी स्थापना है। यह स्थावर मूर्तियाँ होती हैं। बाणलिङ्ग या सोने-चाँदी के छोटे लिङ्ग जङ्गम कहलाते हैं। इन्हें प्राचीन पाशुपत-सम्प्रदाय वाले एवं साम्प्रतिक लिङ्गायत सम्प्रदाय में दीक्षित पूजा के व्यवहार में लाने के लिये सर्वदा बाँह या गले में धारण करते हैं। इनका त्याग होने पर प्राणों को भी त्याग देते हैं।

लिङ्ग विविध द्रव्यों के बनाये जाते हैं। गरुडपुराण में इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। यहाँ संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत है—

१. **गन्धलिङ्ग**— दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन और तीन भाग कुंकुम से बना कर शिवसायुज्य की प्राप्ति के लिये गन्धलिङ्ग का अर्चन किया जाता है।

२. **पुष्पलिङ्ग**— विविध सौरभमय फूलों से बनाकर पृथिवी के आधिपत्य-लाभ के लिये पुष्पलिङ्ग की पूजा की जाती है।

३. **गोशकृल्लिङ्ग**— स्वच्छ कपिलवर्ण की गाय के गोबर से शिवलिङ्ग बनाकर पूजा करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, परन्तु जिसके लिये बनाया जाता है, वह मर जाता है। मिट्टी पर गिरे गोबर का व्यवहार वर्जित है।

४. **रजोमयलिङ्ग**— रज से बनाकर पूजन करने वाला मनुष्य विद्याधरत्व और फिर शिवसायुज्य प्राप्त करता है।

५. **यवगोधूमशालिजलिङ्ग**— यव, गेहूँ या चावल के आटे का लिङ्ग बनाकर पूजन किया जाता है। इससे श्रीपुष्टि और पुत्रलाभ होता है।

६. **सिताखण्डमयलिङ्ग**— खाड़ या शक्कर का लिङ्ग बनाकर पूजन करने से आरोग्य लाभ होता है।

७. **लवणजलिङ्ग**— हरताल, त्रिकटु को लवण में मिलाकर लिङ्ग का निर्माण किया जाता है। इस लिङ्ग का पूजन करने से वशीकरण होता है।

८. **तिलपिष्टोत्थलिङ्ग**— तिल के चूर्ण से लिङ्ग बनाकर पूजन करने से सभी प्रकार की अभिलाषा पूर्ण होती है।

९-१२. इसी प्रकार **तुषोत्थलिङ्ग** मारणशील होता है, **भस्ममयलिङ्ग** सर्वफलप्रद होता है, **गुडोत्थलिङ्ग** प्रीति बढ़ाने वाला एवं **शर्करामयलिङ्ग** सुखप्रद होता है।

१३-१४. **वंशाङ्कुरमयलिङ्ग** वंशकर होता है, **केशास्थिलिङ्ग** सर्वशत्रुनाशक होता है।

१५. **द्रुमोद्भूतलिङ्ग**— यह द्रारिद्र्यहर होता है।

१६. **पिष्टमयलिङ्ग**— यह विद्याप्रद होता है।

१७. **दधिदुग्धोद्भवलिङ्ग**— यह कीर्ति, लक्ष्मी और सुख प्रदान करने वाला होता है।

१८. **धान्यजलिङ्ग**— यह धन-धान्य प्रदान करता है।

१९. **फलोत्थलिङ्ग**— यह फलप्रद होता है।

२०. **धात्रीफलजातलिङ्ग**— यह मुक्ति प्रदान करने वाला होता है।

२१. **नवनीतजलिङ्ग**— मक्खन का लिङ्ग बनाकर पूजन करने से कीर्ति और सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

२२. **दूर्वाकाण्डजलिङ्ग**— यह अपमृत्यु का नाश करता है।

२३. **कर्पूरजलिङ्ग**— यह मुक्ति प्रदान करने वाला होता है।

२४. **अयस्कान्तमणिजलिङ्ग**— यह सिद्धिप्रद होता है।

२५. **मौक्तिकलिङ्ग**— इस लिङ्ग का पूजन सौभाग्यकर होता है।

२६. **स्वर्णनिर्मितलिङ्ग**— स्वर्णनिर्मित लिङ्ग का पूजन महामुक्तिप्रद होता है।

२७. **राजतलिङ्ग**— चाँदी का लिङ्ग बनाकर पूजन करने से ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

२८-२९. **पित्तलजलिङ्ग** एवं **कांस्यजलिङ्ग** मुक्तिदायी होता है।

३०. **जपुजलिङ्ग**— टिन या राँगा का लिङ्गपूजन शत्रुनाशक होता है।

३१. **आयसजलिङ्ग**— लोहे के निर्मित लिङ्ग के पूजन से भी शत्रुनाश होता है।

३२. **सीसकजलिङ्ग**— शीशे से निर्मित लिङ्ग के पूजन करने से शत्रु-नाश होता है।

३३. **अष्टधातुजलिङ्ग**— यह लिङ्ग सर्वसिद्धिप्रद होता है।

३४. **अष्टलौहजातलिङ्ग**— इस लिङ्ग के पूजन करने से कुष्ट का नाश होता है।

३५. **वैडूर्यजलिङ्ग**— यह लिङ्ग शत्रुदर्पनाशक होता है।

३६. **स्फटिकलिङ्ग**— यह लिङ्ग सर्वकामप्रद होता है।

परन्तु ताम्र, सीसक, रक्तचन्दन, शङ्ख, काँसा, लोहा— इन द्रव्यों के लिङ्गों की पूजा कलियुग में वर्जित है। पारे का शिवलिङ्ग विहित है और यह ऐश्वर्यदायक होता है। इस लिङ्ग का माहात्म्य सबसे अधिक बतलाया गया है। पारद शब्द में प-विष्णु, आ-कालिका, र-शिव, द-ब्रह्मा— इस तरह सभी स्थित हैं। पारद के बने लिङ्ग की पूजा यदि जीवन में एक बार भी की जाय, तो धन, ज्ञान, सिद्धि एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

पार्थिव लिङ्ग को छोड़कर अन्य लिङ्गों का निर्माण कर उसका संस्कार करना अनिवार्य होता है। स्वर्णपात्र में दूध के अन्दर तीन दिनों तक रखकर फिर **'त्र्यम्बकं यजामहे'** इत्यादि मन्त्रों से स्नान कराकर वेदि पर पार्वती जी का षोडशोपचार पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पात्र से उठाकर लिङ्ग को तीन दिन तक गङ्गाजल में रखना चाहिये। पुनः प्राण-प्रतिष्ठा करके स्थापना की जाती है।

पार्थिव लिङ्ग एक या दो तोला मिट्टी लेकर बनाना चाहिये। ब्राह्मण सफेद, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीली और अन्य काली मिट्टी से लिङ्ग का निर्माण करें, तो उत्तम है। परन्तु यह जहाँ अव्यवहार्य हो, वहाँ कोई हानि नहीं, मिट्टी चाहे, जैसी मिले, पार्थिव लिङ्ग बनाकर पूजन करना चाहिये। लिङ्ग साधारणतया अङ्गुष्ठ-प्रमाण का बनाया जाता है। पाषाणादि के लिङ्ग मोटे और बड़े बनते हैं। लिङ्ग से दूनी वेदि और उसका आधा योनिपीठ करना चाहिये। लिङ्ग की लम्बाई कम होने से शत्रु की वृद्धि होती है। योनिपीठ के बिना या मस्तकादि अङ्गों के बिना लिङ्ग बनाना अशुभ माना जाता है। पार्थिव लिङ्ग अपने अँगूठे के एक पोरवे भर बनाया जाता है। लिङ्ग सुलक्षण होना चाहिये। अलक्षण अमङ्गलकारी होता है।

लिङ्गमात्र की पूजा से उमा-महेश्वर दोनों की पूजा हो जाती है। लिङ्ग के मूल में ब्रह्मा, मध्य देश में त्रिलोकीनाथ विष्णु और ऊपर प्रणवाख्य महादेव स्थित हैं। वेदि महादेवी हैं और लिङ्ग महादेव हैं। अत: शिवलिङ्ग की पूजा से सबकी पूजा हो जाती है— यह लिङ्गपुराण का कथन है।

नर्मदादि नदियों में पाषाणलिङ्ग मिलते हैं। नर्मदा का बाणलिङ्ग मुक्ति और भुक्ति दोनों को देने वाला होता है। बाणलिङ्ग की पूजा इन्द्रादि देवों ने की थी। इसकी वेदिका बनाकर उस पर स्थापना करके पूजा की जाती है। वेदि ताँबा, स्फटिक, सोना, पत्थर, चाँदी या रूपे की भी बनाते हैं। बाणलिङ्ग इसलिये कहते हैं कि बाणासुर ने तपस्या करके महादेव जी से वर पाया था कि वे पर्वत पर सर्वदा लिङ्गरूप में प्रकट रहेंगे।

नर्मदा नदी से बाणलिङ्ग निकालकर पहले परीक्षा की जाती है। पहले एक बार लिङ्ग के बराबर चावल लेकर तौलें। पुन: दूसरी बार उसी चावल से तौलने पर लिङ्ग हलका ठहरे, तो गृहस्थों के लिये वह लिङ्ग पूजनीय है। तीन, पाँच अथवा सात बार तौलने पर भी तौल बराबर निकले, तो उस लिङ्ग को जल में फेंक दें। यदि तौल में भारी निकले, तो वह लिङ्ग उदासीनों के लिये पूजनीय है— (सूतसंहिता)। तौल में कमी-वेशी ही बाणलिङ्ग की पहचान है। जब बाणलिङ्ग की ग्राह्यता का निर्धारण हो जाय, तब संस्कार करना उचित है। संस्कार के बाद पूजा आरम्भ होती है। पहले सामान्य विधि से गणेश आदि की पूजा होती है। तदनन्तर बाणलिङ्ग को स्नान कराते हैं। स्नान कराकर निम्न ध्यान-मन्त्र को पढ़ना चाहिये—

ॐ प्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं बाणाख्यं च महाप्रभम्।
कामबाणान्वितं देवं संसारदहनक्षमम्।।
शृङ्गारादिरसोल्लासं बाणाख्यं परमेश्वरम्।।

इसके बाद मानसोपचार से ध्यानकर पूजा करनी चाहिये। प्रयत्नपूर्वक षोडशोपचार पूजा करना श्रेष्ठ है। तदनन्तर जप करके स्तुतिपाठ करने की पद्धति है। बाणलिङ्ग की पूजा में आवाहन और विसर्जन नहीं होता।

बाणलिङ्ग अनेक प्रकार के होते हैं। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि बाणलिङ्ग निन्द्य न हो। कर्कश होने से पुत्र-दारादि का क्षय, चिपटा होने से गृहभङ्ग, एकपार्श्वस्थित होने से पुत्र-दारादि-धनक्षय, शिरोदेश स्फुटित होने

से व्याधि, छिद्र होने से प्रवास और लिङ्ग में कर्णिका रहने से व्याधि होती है। ये निन्द्य लिङ्ग हैं, इनकी पूजा वर्जित है। तीक्ष्णाग्र, वक्रशीर्ष तथा त्रिकोणलिङ्ग भी वर्जित हैं। अतिस्थूल, अतिकृश, स्वल्प, भूषणयुक्त मोक्षार्थियों के लिये हैं, गृहस्थों के लिये वर्जित हैं।

मेघाभ और कपिल वर्ण का लिङ्ग शुभ है, परन्तु गृहस्थ लघु या स्थूल कपिल वर्ण वाले लिङ्ग की पूजा न करे। भौंरे के समान काला लिङ्ग सपीठ हो या अपीठ, संस्कृत हो या मन्त्रसंस्कार रहित भी हो, तो गृहस्थ उसकी पूजा कर सकता है। बाणलिङ्ग प्रायः कँवलगट्टे रंग का होता है। पकी जामुन या मुरगी के अण्डे के समान भी होता है। श्वेत, नीला और शहद के रङ्ग का भी होता है। ये ही लिङ्ग पूजा के लिये प्रशस्त हैं। एक बाणलिङ्ग की पूजा से अनेक अन्य लिङ्गों की पूजा का फल मिलता है। श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक लिङ्ग की पूजा से सर्वविध मनोरथ की पूर्ति होती है, इसमें रञ्चमात्र भी सन्देह नहीं है।



३. वृषभवाहन लीला

स्कन्दपुराण में कथा आती है कि एक बार भगवान् धर्म की इच्छा हुई कि मैं देवाधिदेव शंकर का वाहन बनूँ और तब दीर्घकाल तक उन्होंने इसके लिये तपस्या की। अन्त में भगवान् ने उन पर अनुग्रह किया और उन्हें अपने वाहन के रूप में स्वीकार किया तथा वे भगवान् धर्म ही नन्दी वृषभ के रूप में उनके सदा के लिये वाहन बन गये— **वृषो हि भगवान् धर्मः।** भगवान् शिव वृषभेश्वर कहे जाते हैं, उनकी कथा कुछ इसप्रकार है—

एक समय देवता और दैत्यों ने मिलकर समुद्र का मन्थन किया। देवताओं सहित विष्णु ने बड़ी युक्ति से समुद्र-मन्थन कर उससे सम्पूर्ण रत्न निकाल लिये। समुद्र से निकले हुए रत्नों में से लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, शार्ङ्ग नामक धनुष विष्णु ने लिया। सूर्य ने उच्चैश्रवा घोड़ा लिया। इन्द्र ने कल्पवृक्ष और ऐरावत हाथी लिया। दैत्यों ने मद्य ली। भगवान् आशुतोष के हिस्से में कालकूट विष और चन्द्रमा मिला। जब धन्वन्तरि हाथ में अमृत कलश लिये हुए निकले, तो दैत्यों ने अमृत-कलश छीन लिया। देवताओं ने विष्णु से गुहार मचायी, तो विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर माया से देवताओं को अमृत पिला दिया। धन्वन्तरि वैद्य आरोग्य की रक्षा करने लगे और वैद्यक विद्या में बड़े प्रवीण हुए। जो स्त्रीरत्न थी, वह अनेक कन्याओं के साथ संयुक्त थी, दैत्यों ने उन सबों को ले जाकर पाताल में ठहराया। पुनः वहाँ से आकर देवताओं से युद्ध किया, परन्तु उनसे पराजित होकर दैत्य पाताल में जाकर रहने लगे।

इसके बाद विष्णु भी पीछा करते हुए दैत्यलोक में गये और वहाँ की स्त्रियों को देखकर मोहित हो गये और उन्हीं के साथ विहार करते हुए वहाँ रह गये। वहाँ विष्णु से बहुत लड़के उत्पन्न हुए, जो उन्हीं के समान बलिष्ठ थे। वे पाताल से निकल कर देवता आदि सभी को दुःख देने लगे। यहाँ तक कि इन्द्र आदि देवताओं का संकोच छोड़कर नाना प्रकार के उत्पात मचाने

लगे। उनसे उत्पीडित हो देवताओं ने ब्रह्मा के यहाँ गुहार मचायी। तदनन्तर ब्रह्मा जी ने देवताओं को साथ लेकर देवाधिदेव भगवान् शंकर के समीप जाकर स्तुतिपूर्वक निवेदन करते हुए कहा— हे प्रभो! विष्णु ने पाताल में जाकर बहुत स्त्रियों के साथ विहार करते हुए बहुत पुत्र उत्पन्न किये हैं। वे अपने लोक को लौट नहीं रहे हैं। विष्णु के वे लड़के अति बलिष्ठ होकर अत्यधिक उपद्रव मचा रहे हैं। आप हमारी रक्षा करें।

इसके बाद ब्रह्मा के इस प्रकार दैन्ययुक्त वचन सुनकर भगवान् शिव ने अपना स्वरूप बैल के समान धारण कर बहुत उच्च स्वर से नाद किया। तदनन्तर शीघ्र ही विष्णु के समीप पाताल लोक में पहुँच गये। पुनः वहाँ महाघोर शब्द किये, जिससे वह नगर भय से काँप उठा। तदनन्तर विष्णु ने क्रोधित होकर इस प्रकार के भयङ्कर शब्द करने वाले वृषभ के साथ युद्ध करने के लिये अपने लड़कों को आज्ञा दी। जब वे लड़के वृषभेश्वर के सम्मुख आये, तो उन्होंने अपने सींगों से सबको मार डाला। अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर विष्णु ने कुपित होकर वृषभेश्वर से सामना करने के लिये स्वयं चल पड़े। वहाँ पहुँच कर विष्णु ने वृषभावतार भगवान् शिव पर अनेक अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार किया। तब वृषभेष्वर ने भी कुपित होकर भयानक शब्द करते हुए अपने नख एवं सींगों से प्रहार कर विष्णु को विकल कर दिया।

इसके बाद वृषरूप भगवान् शिव को पहचान कर अहङ्कार का त्याग करते हुए विष्णु उनकी स्तुति करने लगे और अपराध क्षमा करने की याचना करने लगे। तदनन्तर भगवान् शंकर ने कहा— हे विष्णु! तुम कामी पुरुष के समान आचरण करते हुए अपने लोक को भी विस्मृत कर दिये हो, अब शीघ्र ही इन स्त्रियों को त्याग कर अपने लोक को चले जाओ। भगवान् शिव के वचन को सुनकर विष्णु ने अति लज्जा से कहा— हे प्रभो! यहाँ पर मेरा चक्र रखा है, उसे लेने जाने की अनुमति चाहते हैं। तब भगवान् आशुतोष ने कहा कि उस चक्र को यहीं रहने दो, हम तुम्हें दूसरा चक्र प्रदान करेंगे। भगवान् शिव ने विष्णु को दूसरा चक्र प्रदान किया, जिसकी कथा चक्रप्रदान लीला में वर्णित है।

तदनन्तर विष्णु ने अलग जाकर देवताओं से कहा— हे देवों! यहाँ की स्त्रियाँ अमृत से उत्पन्न होकर स्थित हैं। वे हर प्रकार से आनन्द देने वाली

हैं। इनसे जो भोग करता है, वही इनका स्वामी है। यह सुनकर देवताओं ने भी उन स्त्रियों के समीप जाने की इच्छा की। भगवान् शंकर ने देवताओं की इच्छा जानकर शाप देते हुए कहा कि शान्त मुनीश्वरों एवं मद्यप दैत्यों के अतिरिक्त जो कोई अन्य यहाँ आयेगा, वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। यह सुनकर सभी देवता भयभीत होकर अपने-अपने धामों को चले गये। विष्णु भी अपने धाम को चले गये।

इसके बाद भगवान् शंकर ने विचार किया कि मैं जगत् का आधार हूँ। धर्म की रक्षा के लिये ही मैंने धर्मस्वरूप वृषभ का अवतार धारण किया है। इस चैतन्य शक्ति धर्म के अलावे दूसरा कौन मुझे धारण कर सकता है। उन्होंने उस धर्मस्वरूप वृषभ को ही अपना वाहन बनाया। तदनन्तर भगवान् महेश्वर धर्म के रक्षक अपनी शक्तिस्वरूपा उमा के साथ उस पर आरूढ़ हुए। उस समय की अनुपम शोभा वर्णनातीत है। भगवान् वृषभेश्वर की लीला का स्मरण करने वाले मनुष्य की बुद्धि कभी भी अधर्म में प्रवृत्त नहीं होती। जो इस लीला का श्रवण-मनन करता है, वह सर्वदा आनन्द को प्राप्त करते हुए मोक्ष मार्ग का पथिक बन जाता है। (शि.पु.भाषा, सातवाँ खण्ड, अ. २९, पृ. ५९९)।

भगवान् शिव के वाहन के स्वरूप का वर्णन करते हुए शब्दार्थचिन्तामणि में कहा गया है—

शृङ्गायुधः शुद्धकायश्चतुष्पादसितक्षुरः।
बृहत्ककुत्कृष्णपुच्छः श्यामस्कन्धो वृषः स्मृतः।। इति।

(श.चि., पृ. ४२५)

अर्थात् इस वृष के शृङ्ग ही आयुध हैं, यह शुद्ध शरीर वाला, चार पैरों से युक्त, कृष्ण वर्ण के खुर वाला, बड़े ककुत् (डील) से सम्पन्न, काले रङ्ग के पुच्छ वाला एवं श्याम रंग के कन्धों वाला कहा गया है।

जैसा कि कहा गया है कि भगवान् शंकर ने धर्मस्वरूप वृषभ को ही अपना वाहन बनाया; क्योंकि भगवान् आशुतोष इस वृषभ के माध्यम से सभी कामनाओं की वर्षा करते हैं। धार्मिक प्रवृत्ति होने पर ही सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति होती है। इसीलिये धर्म को वृषभ कहा गया है। वृषभ का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ बताते हुए शांकरभाष्य में कहा गया है कि सम्पूर्ण

कामनाओं की वर्षा करने के कारण ही धर्म को वृषभ कहा गया है। यथा— **'वर्षणात्सर्वकामानां धर्मो वृष इति शाङ्करभाष्यम्** (शब्दार्थचिन्तामणि, पृ. ४२५)।

श्रीमद्भागवतमहापुराण में कथा आती है कि धर्मस्वरूप वृषभ की रक्षा के लिये राजा परीक्षित ने कलि का निग्रह किया था। कथा कुछ इस प्रकार है—

पाण्डवों के महाप्रयाण के अनन्तर राजा परीक्षित ब्राह्मणों की आज्ञा से पृथिवी का पालन करने लगे। उत्तर की पुत्री इरावती से उनका विवाह हुआ। जिससे जनमेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न हुए। अनन्तर उन्होंने गङ्गा-तट पर जाकर तीन अश्वमेध यज्ञ किये। उन यज्ञों के आचार्य कृपाचार्य थे, जिनमें देवताओं ने प्रत्यक्ष होकर अपने-अपने भागों का ग्रहण किया था। एक समय राजा परीक्षित ने दिग्विजय करते हुए कलि को पकड़ा। वह राजा का वेष धारण किये हुए अपने पैरों से गौ और बैल को मार रहा था। वह बैल वृषभरूपधारी धर्म ही था, जो एक पैर से ही चल रहा था। उसने रोती हुई गौ से पूछा— हे माता! आप दु:खी क्यों हैं? क्यों रो रही हैं? आपका मुख मलिन मालूम पड़ रहा है। क्या आपका कोई बन्धु दूर चला गया है? क्या उसी का शोक कर रही हैं? अथवा मेरी दशा देखकर दु:खी हो रही हैं? या दुष्ट राजाओं के अत्याचार से दु:खी हो रही हैं? अथवा इधर-उधर सबके हाथ का जलपान तथा भोजन करने वाले कामिनी-काञ्चनलोलुप जीवलोक का शोक कर रही हैं? अथवा भगवान् कृष्ण पृथिवीलोक को छोड़कर चले गये, उनके गुणों का स्मरण कर दु:खी हो रही हैं?

वह गाय कोई अन्य नहीं, पृथिवी ही थी। वृषभ के वचनों को सुनकर गोरूपा पृथिवी ने कहा— हे धर्म! आप सब कुछ जानते हुए भी अनजान की तरह क्यों पूछ रहे हैं? जैसा आपने कहा है, मैं इन सभी का शोक कर रही हूँ। आपके तीन पैर किसने काट दिये। आपको एक पैर से खड़े देखकर आपका शोक कर रही हूँ। सत्य, शौच, दया, शान्ति आदि कल्याणकारी अनन्त गुण जिनमें नित्य निवास करते हैं, उन भगवान् से रहित तथा कलि से आक्रान्त इस लोक का शोक कर रही हूँ। नीच, पतित और धर्म-कर्मशून्य राजा मुझ पृथिवी का उपभोग करेंगे, यह विचार कर अपने लिये ही शोक

कर रही हूँ। देवता, पितर, ऋषि, साधु, वर्ण तथा आश्रमों की दशा का स्मरण कर शोक कर रही हूँ। हमें और आपको छोड़कर श्रीकृष्ण चले गये, उनके वियोग से मेरे हृदय में शान्ति नहीं है। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ?

इस प्रकार दोनों आपस में वार्तालाप कर ही रहे थे कि राजा परीक्षित वहाँ जा पहुँचे—

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा।
परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम्।।

(भाग., १.१६.३६)

उस सरस्वती नदी के तट पर राजा परीक्षित ने कलि को देखा, जो डण्डे से गौ और वृषभ को मार रहा था। वृषभ मारे भय के थोड़ा-थोड़ा मूत्र त्याग करता हुआ काँप रहा था। उसके एक ही पैर था, क्योंकि कलियुग के आते ही उसके तीन पैर नष्ट हो गये थे। धर्म के चार पैर बताये गये हैं— ज्ञान, तप, यज्ञ और दान। कलियुग के आते-आते तीन पैर नष्ट हो गये हैं, केवल दानरूप पाद पर धर्म स्थित है। इसलिये कलियुग में दान को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म बतलाया गया है।

वह शूद्ररूपी कलि गौ को लातों से मार रहा था, वह रो रही थी। वह भूखी थी, खाने के लिये आहार चाहती थी। रथ पर बैठे हुए राजा परीक्षित ने यह बीभत्स दृश्य देखा, तो वे कड़क कर बोले— अरे दुष्ट! तू कौन है? इस प्रकार वृषभ और गौ को क्यों सता रहा है? साथ ही वृषभ और गौ से भी कहा— हे वृषभ! तुम डरो मत। हे माता! मेरे रहते तुम क्यों रोती हो? मैं इस दुष्ट को दण्ड दूँगा। तुम यह बताओ कि तुम्हारे तीन पैर किसने काटे? तुम्हें विरूप करने वाले ने मेरे पूर्वज पाण्डवों की धवल कीर्ति को कलङ्कित किया है। मेरे रहते निरपराध प्राणी को सताने वाला साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, मैं उसकी भी भुजा जड़ से उखाड़ दूँगा।

यह सुनकर वृषभरूपी धर्म ने कहा— हे पुरुषश्रेष्ठ! आप उन पाण्डवों के वंशधर हैं, जिनके विविध गुणों से रीझकर भगवान् ने दूत, सारथि आदि का काम तक किया था। इस प्रकार भयभीतों को अभय देना आपका उचित ही है; किन्तु जिसने मुझे क्लेश दिया है, उसे आप ही समझें। मैं इस विषय

में कुछ भी नहीं कह सकता; क्योंकि क्लेशदाता कौन है? यह विषय बड़ा ही जटिल है। इसमें विद्वानों का बड़ा मतभेद है—

केचिद् विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः।
दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम्।।

(भाग., १.१७.१९)

अद्वैतवादी विद्वान् कहते हैं— आत्मा के अज्ञान से विलसित यह सुख-दुःखरूप द्वैत मिथ्या है। अतः सुख-दुःख का कारण कोई नहीं है। तार्किक सुख-दुःख का कारण आत्मा को मानते हैं। ज्योतिषी ग्रह-आदि देवताओं को, मीमांसक कर्म को, नास्तिक स्वभाव को, सांख्यवादी स्वभाव शब्द से गुणपरिणाम को सुख-दुःख का कारण मानते हैं। अतः आप ही अपनी बुद्धि से क्लेशदाता का निर्णय कर लीजिये।

राजा परीक्षित ने विचार किया कि सुख-दुःख मिथ्या तो नहीं हो सकते; क्योंकि उनकी अनुभूति होती है। जीवात्मा भी कारण नहीं हो सकता; क्योंकि वह परतन्त्र है। ग्रह भी कारण नहीं हो सकते, क्योंकि वे जड़ हैं। स्वभाव भी कारण नहीं हो सकता; क्योंकि वह व्यभिचारदूषित है। अतः कर्मानुसार सुख-दुःख के कारण भगवान् ही हो सकते हैं।

तदनन्तर राजा परीक्षित ने कहा— हे धर्म! तुम ठीक कहते हो। तुम वृषभरूपधारी साक्षात् धर्म ही हो। इसलिये घातक को जानते हुए भी उसे बतलाना नहीं चाहते हो; क्योंकि अधर्म करने वाले को जिस नरक आदि की प्राप्ति होती है, उसकी प्राप्ति सूचना देने वाले को भी होती है—

यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत्।

(भाग., १.१७.२२)

यह विचार कर राजा ने अपनी बुद्धि से दुःख का कारण जान लिया और पृथिवीरूप गौ तथा वृषभरूप धर्म को आश्वासन देते हुए कलि को मारने के लिये तीक्ष्ण तलवार खींच ली। राजा परीक्षित को मारने के लिये आता देखकर कलि ने अपने सिर से मुकुट उतार कर फेंक दिया और भयभीत होकर उनके चरणों में जा गिरा। उसे चरणों में गिरा देखकर परीक्षित हँसते हुए बोले— हे कले! मैं पाण्डववंशी हूँ। मेरे समक्ष हाथ जोड़ने वाले

शरणागत को भय नहीं रहता। किन्तु तुम मेरे राज्य से निकल जाओ। तुम यहाँ नहीं रह सकते। तुम्हारे रहते राजाओं के शरीर में अधर्म के परिवार लोभ, अनृत, कलह, दम्भ आदि प्रवेश करेंगे। यह सुनकर हाथ जोड़ नतमस्तक होकर कलि ने कहा— हे महाराज! मैं जहाँ कहीं भी क्यों न रहूँ, वहीं आप मुझे खड्ग लिये हुए खड़े दिखायी देंगे। मैं कहाँ रहूँ, यह आप ही बतायें। कलि के ऐसी प्रार्थना करने पर राजा परीक्षित ने उसको रहने के लिये चार स्थान निर्दिष्ट किये— १. द्यूतस्थान, २. मदिरालय, ३. वेश्यालय, ४. वधस्थान (कसाईखाना), जिनमें वह अनृत, मद, काम और हिंसा के रूप में निवास करता है। पुन: उसके प्रार्थना करने पर उसे रहने के लिये एक स्थान 'सुवर्ण' और दे दिया। जिसमें इन चारों के साथ ही साथ वैर का भी निवास है (भाग., १.१६-१७)।

इसलिये अभ्युदय चाहने वाले पुरुषों को इन पाँचों का सेवन ममतापूर्वक नहीं करना चाहिये। बाद में राजा परीक्षित ने धर्म के शेष तीन पाद तप, शौच और दया को जोड़कर उसके चारों पैर पूर्ण कर दिये। पृथिवी को भी आश्वासन देकर सन्तुष्ट किया। अत: गाय और वृषभ को कभी मारना नहीं चाहिये, वे प्रणम्य हैं। पृथिवी और धर्म के प्रतिरूप हैं।

यही धर्म भगवान् आशुतोष का वाहन है। इसलिये वे वृषवाहन कहे जाते हैं। वैसे तो व्यावहारिक दृष्टि से देखें, तो शिव का परिवार ही विलक्षण है।

भगवान् भोलानाथ का जैसा अद्‌भुत परिवार है, वैसा शायद ही और किसी का हो। पिता यदि चतुर्मुख थे, तो आप स्वयं पञ्चमुख हो गये और पुत्र को छ: मुख का बना दिया। बनाते-बनाते दूसरा पुत्र बनाया, तो उसका सिर हाथी का रख दिया। सम्पूर्ण ऐश्वर्यों की स्वामिनी साक्षात् अन्नपूर्णा भवानी आपकी अर्द्धाङ्गिनी हैं और आप? बस कुछ न पूछिये। एकदम भस्माङ्गधारी श्मशानविहारी। बहुत हुआ तो बाघ या हाथी की छाल पहन ली, नहीं तो बर्फीले पहाड़ों पर एकदम नंग-धड़ंग ही घूम रहे हैं। शृङ्गार के लिये रखे साँप, बिच्छू और आदमी की खोपड़ी और नहीं हुआ, तो आधे शरीर में पार्वती को धारण कर अर्धनारीश्वर बन बैठे। अर्धनारीश्वर महादेव आधे अङ्ग की सवारी रखी है बूढ़ा बैल और आधे अङ्ग की चबाने के लिये

मुह बाया हुआ शेर। बैल और बाघ भी कहीं एक नाथ से नाथे जाते हैं? इसी तरह गणेश जी को दिया चूहा, खुद रख लिया साँप और स्वामी कार्तिकेय को दे दिया मोर। अब ये तीनों एक के ऊपर एक क्यों न सवारी करें? फिर मजा यह कि जरा सी खलबलाहट में भयङ्कर रूप से भौंकनेवाला कुत्ता अपने कोतवाल साहब श्रीभैरव जी को वश में कर दिया है और वह कुत्ता भी उसी तबेले में डाल दिया गया है, जहाँ बैल, बाघ, चूहा, साँप, मोर आदि रहते हैं। अब सुजन पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते होंगे कि उस बाड़े में शान्ति-स्थापन का कार्य कितना दुष्कर रहा करता होगा।

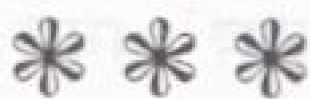
परिवार की, व्यक्तियों की तो बात ही छोड़ दीजिये। वहाँ तो यह शिकायत लगी ही रहती है कि कभी गणेश जी स्वामी कार्तिकेय के विरुद्ध फरियाद करते हुए कहते हैं कि— इन्होंने अपने हाथ से मेरे कान मरोड़ दिये, कभी स्वामी कार्तिकेय जी गणेश जी के खिलाफ यह दावा करते हैं कि इन्होंने अपनी सूँड से मेरी आँखे गिन डालीं। पूछने पर गणेश जी अपना सबल पक्ष उपस्थापित करते हुए कहते हैं कि ये पहले अपने हाथों से मेरे सूँड को नाप रहे थे। इतना होते हुए भी स्वयं भाँग के नशें में चूर घर-गृहस्थी के लालन-पालन का भार पार्वती पर डालकर औढरदारी बनकर जो मन में आया, वही किसी को दे डाला।

परन्तु रत्नगर्भा वसुन्धरा के सर्वोच्च आधारस्तम्भ की एकमात्र कन्या होने के कारण माता पार्वती उन साधनों को जानती हैं, जिनके द्वारा वे इस विचित्र परिवार के प्रत्येक सदस्य का पूर्ण सन्तोष प्रदान कर सकें। साथ ही उन्होंने सुयोग्य गृहस्वामिनी के समान यह चतुरता भी कर रखी है कि ऋद्धि और सिद्धि को अपनी पुत्रवधू बना छोड़ा है। बस, अब उनके सहारे इनकी अर्थव्यवस्था बहुत कुछ सुलझ गयी है। इतना होते हुए भी उन्होंने सबसे बड़े मार्के का काम यह किया है कि अपनी यह अद्भुत गृहस्थी हिमाच्छादित पर्वतमाला के सुदूरतम शिखर कैलास पर जमायी है, जहाँ आस-पास केवल बर्फ-ही-बर्फ दिखायी पड़ता है। माँग तो वहाँ होती है, जहाँ माँगने योग्य वस्तुएँ दीख सकती हों अथवा जहाँ तबीयत में किसी अभाव की गरमी हो। यहाँ तो शीतलतादायक हिमराशि के अतिरिक्त और कहीं कुछ हैं ही नहीं, इसलिये यह निश्चय है कि इतनी ठंढक में दबकर इस कुटुम्ब के व्यक्ति तथा

वाहनों के झगड़ा करने के हौसले भी ठंढे पड़ जायेंगे और वित्त से बाहर दान दे देने वाले इन औढरदानी जी के पास तक पहुँचने का दुस्साहस करने वाले भक्तों का उत्साह भी ठंढा पड़ जायेगा। इस चातुर्य का भी कोई ठिकाना है।

क्यों न हो, आखिर महामाया ही तो ठहरीं। इस लिये तो जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी ने कहा है— अनेक गुणविस्तृत सपर्णा (पत्तों सहित) लताओं का आश्रय भले ही कोई ले, परन्तु मेरे विचार से तो केवल उसी एक अपर्णा (पार्वती जी) की सेवा करनी चाहिये, जिससे घिर कर पुराना ठूँठ (स्थाणु-शिव) भी मोक्ष का फल देने लगता है—

सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरमिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम्।।



४. महालिङ्गोद्भव लीला

एक समय की बात है एक दिन ब्रह्मा और विष्णु स्नान के उपरान्त रेवा नदी के तट पर बैठे थे। उसी समय सब देवता, मुनि आदि एकत्रित हो गये। वहाँ एक उत्तम सभा लग गयी। उस समय सबने मिलकर ब्रह्मा और विष्णु से पूछा कि आप दोनों में कौन नाशरहित, ब्रह्म, निर्दोष, सर्वसृष्टि का स्वामी, निर्गुण, अलख, ईश्वरों का ईश्वर, सर्वश्रेष्ठ विश्वम्भर है? देवताओं के प्रश्न को सुनकर शिव की माया से मोहित ब्रह्मा ने कहा— हम परब्रह्म, तीनों लोक के स्वामी हैं। वेद भी हमारे नाम को सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं। ब्रह्मा के इस प्रकार के वचन को सुनकर विष्णु क्रोधित होकर बोले— हे ब्रह्मन्! तुम अज्ञानवश वेद-विरुद्ध बात मत कहो। तुम तो हमारी नाभिकमल से उत्पन्न हुये हो। तुम तो हमारे अधीन हो, मैं परब्रह्म हूँ। हमसे बड़ा संसार में कोई नहीं है। वेद और पुराण सब हमको ब्रह्म कहते हैं। तुम अपने नामों पर गर्व मत करो; क्योंकि अन्धे का नाम नयनसुख और कृपण का नाम उदार होता है।

इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु दोनों शिव की माया से परमतत्त्व को विस्मरण कर अपने को युक्तियों से परब्रह्म बतलाने लगे। अन्त में दोनों ने यह स्वीकार किया कि वेद जिसको सर्वोपरि कह दे, वही बड़ा समझा जायेगा। ब्रह्मा के स्मरण करने से वेद वहाँ आये। पूछने पर उन्होंने कहा— तीनों गुणों से भिन्न, जो प्रकाशवान् हैं, जिनके शरीर में करोड़ों ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं, जिनका योगीजन सदा ध्यान करते हैं, जो प्रलय करने में समर्थ हैं, वे सदाशिव हैं। इस प्रकार वेद के द्वारा शिव की बड़ी प्रशंसा सुन अज्ञानवश ब्रह्मा और विष्णु दोनों ने यह वचन कहा— शिव तो निर्गुण, विष के खाने वाले, जटाधारी, वृषभ पर सवार होने वाले, नग्न शरीर, योगी, सर्पों का भूषण धारण करने वाले, औढर, भूत तथा प्रेतों के साथी और अशुभ वस्त्र धारण करने वाले हैं। वे परब्रह्म कैसे हो सकते हैं?

यह कह कर ब्रह्मा और विष्णु दोनों ने हँसकर वेदों को चुप करा दिया। उन दोनों की यह दशा देख कर प्रणव ने कहा— तुम दोनों संसार को उत्पन्न

करने वाले और पालन करने वाले हो। तुम दोनों वेद के वचन को मत छोड़ो, शिव को परब्रह्म समझो। परन्तु प्रणव का वचन भी उनलोगों को अच्छा नहीं लगा। तब भगवान् शिव ने सोचा कि इन दोनों के अहङ्कार को दूर करना चाहिये। भगवान् शिव अपने भक्तों के क्लेश को दूर करने के लिये करोड़ों युक्तियुक्त उपाय करते हैं।

उस समय उन दोनों के सामने एक बहुत बड़ी दिव्य ज्वाला प्रकट हुई। जो पृथ्वी से आकाश तक व्याप्त थी। उसका आदि अन्त नहीं जाना जा सकता था। उस ज्वाला ने महान् लिङ्ग का रूप धारण कर लिया। वह लिङ्ग आठ अङ्गुल का था, जो चार अङ्गुल नीचे और चार अङ्गुल ऊपर था। तदनन्तर शिव के गण शिवलोक से आकर लिङ्ग की पूजा करने लगे। देवता और मुनीश्वरों ने भी उस लिङ्ग की पूजा की। यह देखकर विष्णु ने कहा कि हम दोनों के बीच में यह तीसरा कौन आ गया है। तब ब्रह्मा ने कहा— हे विष्णु! हमारा और आपका विवाद इसी पर निर्णीत हो जायेगा। हम दोनों में इस लिङ्ग के अन्तिम छोर को जो छू लेगा, वही परब्रह्म है। विष्णु जी इस शर्त को मान कर नीचे की छोर को छूने के लिये शूकर का रूप धारण कर नीचे की ओर चले। तदनन्तर ब्रह्मा भी हंस बनकर ऊपर की ओर उड़ चले। देवाधिदेव शंकर ने ऐसी लीला रची कि वह लिङ्ग अतललोक तक चला गया, जिससे वहाँ के लोग कृतकृत्य हो गये। वहाँ मय दानव के पुत्रों ने भगवान् शिव की स्तुति की। जब विष्णु वहाँ पहुँचे, तो वह लिङ्ग वितललोक में चला गया। इस प्रकार वह लिङ्ग बढ़ते-बढ़ते क्रमशः सुतल, तलातल, महातल, रसातल होते हुए पाताल में चला गया। जहाँ वासुकि नाग आदि ने उनकी पूजा की।

इसी प्रकार विष्णु जी चौदहों भुवन में गये, परन्तु लिङ्ग को न छू पाये। जब लिङ्ग शेषलोक में गया, तब शेष जी ने उनका बड़ी धूमधाम से पूजन किया। अन्त में वह लिङ्ग विष्णु जी को पीछे-पीछे घूमते देखकर गुप्त हो गया और विष्णु जी थककर लौट आये। अब विष्णु शिव को सबसे बड़ा समझने लगे और अपने किये पर बड़े लज्जित हुए।

इस तरह तो विष्णु का अहङ्कार दूर हुआ। अब ब्रह्मा की गति को सुनें। जब ब्रह्मा ने चाहा कि शिवलिङ्ग के ऊपर हाथ रखें, तो वह लिङ्ग तुरन्त

भुवर्लोक को चला गया। जहाँ गुह्यकादि ने भगवान् शिव के लिङ्ग की पूजा की। जब ब्रह्मा जी ने वहाँ पहुँच कर हाथ रखने की इच्छा की, तो वह लिङ्ग सूर्यलोक को चला गया। जहाँ सूर्य ने उनकी पूजा की। इतने में ब्रह्मा वहाँ जा पहुँचे, पर शिवलिङ्ग स्वर्गभवन में पहुँचा, जिसके प्रमाण का वर्णन वेद ने सूर्यलोक से ध्रुव तक किया है। उसके भीतर बहुत लोक हैं। पुनः शिव ब्रह्मा का पीछा करते समझ कर चन्द्रलोक चले गये, जहाँ चन्द्रमा ने उनकी महती पूजा की। इसी प्रकार वह लिङ्ग उडुलोक, शक्रलोक, भूमिलोक, बृहस्पतिलोक, सप्तर्षिलोक, महर्लोक, जनलोक, विष्णुलोक, स्कन्दलोक, शिवलोक, गोलोक आदि लोकों में गया, जहाँ उनकी बड़ी पूजा हुई।

इस प्रकार जिस लोक में ब्रह्मा पहुँचते थे, शीघ्र ही शिवलिङ्ग आगे के लोकों में चला जाता था। यह देख ब्रह्मा अति दुःखी हुए। तब केतकी पुष्प के पूछने पर ब्रह्मा ने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर केतकी पुष्प ने ब्रह्मा से कहा— हे ब्रह्मन्! हम आपकी सहायता करेंगे। अब आप लौट चलें। यह बात हम सबके सामने कह देंगे कि ब्रह्मा ने शिव की मूर्ति को छू लिया है। केतकी की यह बात सुनकर ब्रह्मा उसके साथ लौट चले। मार्ग में सुरभि गाय मिली। उसने ब्रह्मा से वृत्तान्त पूछा। तब ब्रह्मा ने उससे भी सब वृत्तान्त कह सुनाया। सुरभि ने भी ब्रह्मा से प्रतिज्ञा की कि मैं आपकी इच्छा पूर्ण कर दूँगी। यह कह कर वह भी ब्रह्मा के साथ चल पड़ी। तब दो साक्षी को पाकर ब्रह्मा अति अहङ्कार से दोनों को साथ लिये हुए विष्णु के समीप आये।

इसके बाद केतकी पुष्प और सुरभि के साथ विष्णु के समीप आकर ब्रह्मा ने उनसे पूछा— हे विष्णु! आपने क्या शिवलिङ्ग को छू लिया है? तदनन्तर विष्णु ने निषेध करते हुए कहा— हे ब्रह्मन्! मैं तो उनका छोर नहीं पा सका, आप अपना वृत्तान्त कहें। तब ब्रह्मा ने कहा— हे विष्णु! वास्तव में हमने लिङ्ग का स्पर्श किया है। यदि आपको मेरे वचनों पर विश्वास न हो, तो मेरे इन दोनों गवाहों से पूछ लें। तदुपरान्त केतकी पुष्प और सुरभि दोनों ने कहा— हे उपेन्द्र! हम पक्षपातरहित होकर कहते हैं कि ब्रह्माजी ने शिवलिङ्ग को छू लिया है। इन्द्र की प्रार्थना पर शिव ने हम दोनों को आपके सामने साक्षी देने के लिए भेजा है।

इस प्रकार केतकी पुष्प और सुरभि दोनों के झूठे वचन को सुनकर शिव अति क्रोधित हुए। तदनन्तर ऊँचे शब्दों से आकाशवाणी हुई। हमारे लिङ्ग को ब्रह्मा ने कदापि नहीं छुआ है। तुम दोनों धर्म के विरुद्ध पूर्णरूप से असत्य भाषण कर रहे हो। हे केतकि! इसलिए आज से तुम हमारे शिर पर नहीं चढ़ोगी। हे सुरभि! जिस मुख से तुमने यह असत्य भाषण किया है, वह तुम्हारा मुख अपवित्र हो गया और उसी मुख से कलियुग में तुम विष्ठा भक्षण करोगी।

इसके बाद ब्रह्मा को ज्ञान हुआ कि जिसने हमारे अहङ्कार को दूर कर दिया, वही सबसे श्रेष्ठ है। तदनन्तर ब्रह्मा ने शिव का एक अन्य लिङ्ग देखा। जिसमें नाना प्रकार के शिव के रूप दिखाई दिये। कहीं वे गणपति के साथ हैं, तो कहीं देवी पार्वती के साथ और कहीं सब देवता और मुनीश्वर शिव की पूजा कर रहे हैं। कहीं ब्रह्मा और विष्णु के द्वारा पूजा करते हुए भी देखकर उन दोनों की आँखें बन्द हो गयीं। कुछ क्षण के अनन्तर जब आँखें खुलीं, तो केवल शिव का एक सौम्य स्वरूप भासित हुआ। जब भगवान् शिव ने अपनी माया का विस्तार दूर किया, तो ब्रह्मा ने भी उनको अपना स्वामी स्वीकार किया, विष्णु तो पूर्व में ही मान चुके थे।

इसके बाद ब्रह्मा और विष्णु दोनों ने उनकी महती स्तुति की। तदनन्तर दोनों ने कहा— हे सर्वेश्वर! हमको अपना सेवक जानकर यहीं प्रकट होकर दर्शन दें। उन दोनों की इच्छा पूर्ण करने के लिए देवाधिदेव शंकर वहाँ प्रकट हुए। जिस स्वरूप से भगवान् शिव प्रकट हुए, वह स्वरूप वर्णनातीत है। भूतभावन पतितपावन शिव का दर्शन पाकर ब्रह्मा, विष्णु दोनों कृतार्थ हो गये। तदुपरान्त दोनों ने उनकी स्तुति करते हुए अपने अपराधों की क्षमा-याचना की। तदनन्तर सुरभि ने प्रार्थना करते हुए कहा— हे अवढरदानी! यद्यपि मैंने झूठ बोलकर बहुत बड़ा पाप किया है, परन्तु मेरी इच्छा है कि आप मेरे शिर पर हाथ रखकर मेरे पाप को दूर कर दें और मेरा दूसरा मनोरथ यह है कि मैं अपने दुग्ध की धारा से आपका अभिषेक करूँ।

इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु और सुरभि ने अपने परिवार और गणों को बुलाया और सबने मिलकर भगवान् शंकर की विधिवत् पूजा की। सुरभि ने अपने दुग्ध की धारा से भगवान् शंकर का अभिषेक किया। पुनः-पुनः शिव

की स्तुति की और सबने मिलकर शिव को सर्वश्रेष्ठ उद्घोषित किया। सबकी स्तुति सुनकर भगवान् शिव ने कहा— हे देवों! हमने केवल आप लोगों के गर्व को दूर करने के लिए ही लिङ्गरूप प्रकट किया था। आप लोगों के अहङ्कार को दूर कर अप्रमेय आनन्द प्रदान करना मेरा लक्ष्य था, वह पूर्ण हुआ। दूसरा लिङ्ग जो हमने प्रकट किया था, उसकी महिमा को सुनें।

इसके बाद भगवान् शंकर ने रेवा नदी के तट पर स्थित लिङ्ग की महिमा का बखान करते हुए कहा— हे देवों! इस लिङ्ग की पूजा से सभी प्रकार के रोग दूर हो जायेंगे। अहङ्कार के नाश करने के लिए इससे बड़ा कोई अन्य लिङ्ग नहीं है। जो व्यक्ति हमारे इस लिङ्ग की पूजा करेगा, उसके घर सम्पूर्ण प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि बनी रहेगी। उसको कभी अधर्म की बुद्धि नहीं उपजेगी। वह व्यक्ति जल में कमल के पत्ते के समान इस लोक में सुख भोग कर स्वर्ग लोक को प्राप्त करेगा। जो गोमुख से गोदुग्ध की धारा द्वारा मेरा अभिषेक करेगा, वह दुःख-दारिद्र्य से छुटकारा पाकर सम्पूर्ण सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त करेगा। इस प्रकार सबको वर प्रदान कर भगवान् सर्वेश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये। सभी लोग जय-जयंकार करते हुए और शिव का गुणगान करते हुए अपने-अपने धाम चले गये।

जो मनुष्य भगवान् शंकर की इस लिङ्गोद्भव लीला का गुणगान करेगा, पढ़ेगा या श्रवण करेगा, वह ऊपर उक्त सभी फलों को प्राप्त कर अतिप्रसन्नता के साथ मोक्ष को प्राप्त करेगा, इसमें किञ्चित् मात्र सन्देह का लेश नहीं है। जय शिवशंकर। (शिवपुराणभाषा, उत्तरार्ध, अ. ६-९)।

इस प्रकार शिव अविनाशी, परब्रह्म, निर्दोष, सर्वसृष्टि के स्वामी, निर्गुण, अलख, ईश्वरों के ईश्वर, सर्वश्रेष्ठ, विश्वम्भर और संहारकर्ता हैं, वे परब्रह्म, परतत्त्व, परमात्मा और परज्योति हैं। विष्णु और ब्रह्मा उनसे उत्पन्न हुए हैं। समस्त सृष्टि के आदि कारण सदाशिव ही हैं।

भगवान् शिव की सर्वज्ञता, व्यापकता अथवा ईश्वरता को सिद्ध करने के लिये लिङ्गपुराण के अन्तर्गत उनकी मनोहर कथायें हैं। विष्णु और ब्रह्मा शिव का आधिपत्य कितनी ही मनोरञ्जक कथाओं में सिद्ध किया गया है। शिव-महत्त्व का विशद वर्णन करने के लिए उनमें से कुछ ललित कथाओं के आवश्यक अंशों का सूक्ष्मोल्लेख अनिवार्यतः आवश्यक एवं वाञ्छनीय है।

एक बार ब्रह्मा जी के जिज्ञासा का समाधान करते हुए विष्णु ने कहा— हे ब्रह्मा जी! आप ऐसा न कहें। महादेव जी जगत् के हेतु हैं और सब बीज इनके हैं। ये बीजवान् हैं। पुराणपुरुष परमेश्वर इन्हीं को कहते हैं। यह जगत् इनका खिलौना है। बीजवान् ये हैं, आप बीज हैं और हम योनि हैं। विष्णु के उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि शिव ही पूर्ण-पुरुष हैं।

लिङ्गपुराण की कथा है कि एक बार विष्णु और ब्रह्मा में इस विषय पर कि परमेश्वर कौन है, विवाद चल पड़ा। दोनों अलग-अलग युक्तियों से अपने को ईश्वर सिद्ध कर रहे थे। ब्रह्मा और विष्णु में परस्पर कलह हो ही रहा था कि एक अति प्रकाशमान ज्योतिर्लिङ्ग उत्पन्न हुआ। उस लिङ्ग के प्रादुर्भाव को देखकर दोनों ने उसे अपनी कलह-निवृत्ति का साधन समझ यह निश्चय किया कि जो कोई इस लिङ्ग के अन्तिम भाग को स्पर्श करेगा, वही परमेश्वर है। वह लिङ्ग नीचे और ऊपर दोनों ओर था। ब्रह्मा जी तो हंस बनकर लिङ्ग का अग्रभाग ढूँढ़ने के लिये ऊपर उड़े और विष्णुजी ने अति विशाल एवं सुदृढ़ वराह बनकर लिङ्ग के नीचे की ओर प्रवेश किया। इसी भाँति दोनों हजारों वर्ष तक चलते रहे, परन्तु लिङ्ग का अन्त न पाया। तब दोनों अति व्याकुल हो लौट आये बार-बार उस परमेश्वर को प्रणाम कर उसकी माया से मोहित हो बिचार करने लगे कि यह क्या है, जिसका कहीं न अन्त है, न आदि। विचार करते-करते एक ओर प्लुत स्वर से 'ओ३म्-ओ३म्' यह स्वर सुनाई पड़ा। शब्द का अनुसन्धान करके लिङ्ग के दक्षिण की ओर देखा, तो ॐकारस्वरूप स्वयं शिव दीख पड़े। भगवान् विष्णु ने शिव की स्तुति की। स्तुति को सुनकर महादेव जी प्रसन्न हो कहने लगे— 'हम तुमसे प्रसन्न हैं, तुम भय छोड़कर हमारा दर्शन करो। तुम दोनों ही हमारे देह से उत्पन्न हुए हो। सब सृष्टि के उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा हमारे दक्षिण अङ्ग से और विष्णु वाम अङ्ग से उत्पन्न हुए हैं। हम दोनों से प्रसन्न हैं, वर माँगो।

विष्णु और ब्रह्मा ने भगवान् शिव की चरणों में दृढ़ भक्ति माँगी। इस तरह यह अनुमेय है कि तभी से भगवान् शिव के प्रतीकभूत लिङ्ग की पूजा प्रारम्भ हुई, जो उनका चिह्न है। इसमें अन्यथा कल्पना नहीं करनी चाहिये।



५. अर्धनारीश्वर लीला

सृष्टि के आदि में जब सृष्टिकर्ता ब्रह्मा द्वारा रची हुई सारी प्रजाएँ विस्तार को नहीं प्राप्त हुईं, तब ब्रह्मा उस दुःख से दुःखी हो चिन्ताकुल हो गये। उसी समय इस प्रकार आकाशवाणी हुई— 'ब्रह्मन्! अब तुम मैथुनी सृष्टि की रचना करो।' उस व्योमवाणी को सुनकर ब्रह्मा ने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करने का विचार किया, परन्तु इससे पहले नारियों का कुल ईशान से प्रकट ही नहीं हुआ था, इस लिए पद्मयोनि ब्रह्मा मैथुनी सृष्टि रचने में समर्थ न हो सके। तब वे इस प्रकार विचार कर कि शम्भु की कृपा के बिना मैथुनी प्रजा उत्पन्न नहीं हो सकती, अतः तप करने के लिए उद्यत हुए। उस समय ब्रह्मा पराशक्ति शिवासहित परमेश्वर शिव का प्रेमपूर्वक हृदय में ध्यान करके घोर तप करने लगे। तदनन्तर तपोऽनुष्ठान में लगे हुए ब्रह्मा के उस तीव्र तप से थोड़े ही समय में शिवजी प्रसन्न हो गये। तब वे कष्टहारी शंकर पूर्ण सच्चिदानन्द की कामदा मूर्ति में प्रविष्ट होकर विलक्षण रूप में ब्रह्मा के समक्ष प्रकट हो गये। उस समय उनका वाम अङ्ग नारीस्वरूप पार्वती का और दाहिना अङ्ग पुरुषरूप में शिव का था। उन देवाधिदेव शंकर को पराशक्ति शिवा के साथ आया हुआ देख ब्रह्मा ने दण्ड की भाँति भूमि पर लेटकर उन्हें प्रणाम किया और फिर वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। तब विश्वकर्ता देवाधिदेव महादेव महेश्वर परम प्रसन्न होकर ब्रह्मा से मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोले।

महेश्वर ने कहा— महाभाग वत्स! मेरे प्यारे पुत्र पितामह! मुझे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ पूर्णतया ज्ञात हो गया है। तुमने जो इस समय प्रजाओं की वृद्धि के लिए घोर तप किया है, तुम्हारे उस तप से मैं प्रसन्न हो गया हूँ और तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट प्रदान करना चाहता हूँ। इस प्रकार स्वभाव से ही मधुर तथा परम उदार वचन कहकर शिवजी ने अपने शरीर के अर्ध भाग से शिवादेवी को पृथक् कर दिया। तब शिव से पृथक् होकर प्रकट हुई उन परम शक्ति को देखकर ब्रह्मा विनम्र भाव से प्रणाम करके उनसे प्रार्थना करने लगे।

ब्रह्मा ने कहा— शिवे! सृष्टि के प्रारम्भ में तुम्हारे पति देवाधिदेव परमात्मा शम्भु ने मेरी सृष्टि की थी और मेरे द्वारा सारी प्रजाओं की रचना की थी। शिवे! तब मैंने देवता आदि समस्त प्रजाओं की मानसिक सृष्टि की; परन्तु बारंबार रचना करने पर भी उनकी वृद्धि नहीं हो रही है, अत: अब मैं स्त्री-पुरुष के समागम से उत्पन्न होने वाली सृष्टि का निर्माण करके अपनी सारी प्रजा की वृद्धि करना चाहता हूँ। किन्तु अभी तक तुमसे अक्षय नारी-कुल का प्राकट्य नहीं हुआ है। इस कारण नारी-कुल की सृष्टि करना मेरी शक्ति के परे है। चूँकि सम्पूर्ण शक्तियों का उद्गमस्थान तुम्हीं हो, इसलिए मैं तुम अखिलेश्वरी परमा शक्ति से प्रार्थना करता हूँ। शिवे! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम मुझे नारी-कुल की सृष्टि करने के लिए शक्ति प्रदान करो, क्योंकि शिवप्रिये! इसी को तुम चराचर जगत् की उत्पत्ति का कारण समझो।

वरदेश्वरि! मैं तुमसे एक और वर की याचना करता हूँ। जगन्मात:! कृपा करके उसे भी मुझे प्रदान करो। मैं तुम्हारे चरणों में नमस्कार करता हूँ। वह वर यह है— 'सर्वव्यापिनी जगज्जननि! तुम चराचर जगत् की वृद्धि के लिए अपने एक सर्वसमर्थ रूप से मेरे पुत्र दक्ष की पुत्री हो जाओ।' ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार याचना किये जाने पर परमेश्वरी देवी शिवा ने 'तथास्तु— ऐसा ही होगा' कहकर वह शक्ति ब्रह्मा को प्रदान कर दी। सुतरां जगन्मयी शिवशक्ति शिवादेवी ने अपनी भौंहों के मध्य भाग से अपने ही समान प्रभावशाली एक शक्ति की रचना की। उस शक्ति को देखकर देवश्रेष्ठ भगवान् शंकर जो लीलाकारी, कष्टहारी और कृपा के सागर हैं, हँसते हुए जगदम्बिका से बोले।

शिवजी ने कहा— 'देवि! परमेष्ठी ब्रह्मा ने तपस्या द्वारा तुम्हारी आराधना की है, अत: अब तुम उन पर प्रसन्न हो जाओ और उनका सारा मनोरथ पूर्ण करो।' तब शिवादेवी ने परमेश्वर शिव की उस आज्ञा को सिर झुकाकर ग्रहण किया और ब्रह्मा के कथनानुसार दक्ष की पुत्री होना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार शिवादेवी ब्रह्मा को अनुपम शक्ति प्रदान करके शम्भु के शरीर में प्रविष्ट हो गयीं। तत्पश्चात् भगवान् शंकर भी तुरन्त अन्तर्धान हो गये। तभी से इस लोक में स्त्री-भाग की कल्पना हुई और मैथुनी सृष्टि चली, इससे ब्रह्मा को महान् आनन्द प्राप्त हुआ।

इस प्रकार शिवजी के महान् अनुपम अर्धनारीनरार्ध रूप का वर्णन किया गया है। यह रूप ब्रह्मा का आराध्य है। इसलिए भगवान् भूतभावन के इस मङ्गलमय अर्धनारीश्वर रूप का ध्यान करने से सर्वविध मङ्गल की प्राप्ति होती है। मैं इस रूप को साष्टाङ्ग प्रणतिपरम्परा निवेदित करता है।

(शि.पु., शतरुद्रसंहिता, अ. १-२)।

भगवान् शिव के अनेक रूपों में उनका अर्धनारीश्वर रूप ही सम्भवत: सर्वोत्तम है। अवश्य ही पहले-पहल देखने में विचित्र एवं अस्वाभाविक सा प्रतीत होता है। परन्तु अधिक ध्यान पूर्वक देखने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो इसके अन्दर मानव-जाति का एक महान् आदर्श छिपा हुआ है। एलोरा के एक गुफा-मन्दिर में भगवान् शिव के इस अर्धनारीश्वर-रूप की एक बड़ी भव्य मूर्ति है। उसे देखने से यह लगता है कि इसके निर्माणकर्ता ने उस आध्यात्मिक भाव को भली-भाँति हृदयङ्गम किया था, जो इसके पीछे छिपा हुआ है। मूर्ति के अन्दर नर एवं नारी-रूप का अच्छा सम्मिश्रण हुआ है, उसके दोनों अङ्गों का इस सुन्दरता के साथ मेल हुआ है कि यह देखते ही बनता है।

सत्, चित् और आनन्द— ईश्वर के इन तीनों रूपों में आनन्दरूप जिसका दूसरा नाम साम्यावस्था अथवा अक्षुब्ध-भाव है, भगवान् शंकर का है। मनुष्य भी ईश्वर से ही उत्पन्न— उसी का अंश है, अत: उसके अन्दर भी ये तीनों रूप विद्यमान हैं। इनमें से स्थूल शरीर उसका सदंश है तथा बाह्य चेतना चिदंश है और जब ये दोनों मिलकर परमात्मा के स्वरूप की उपलब्धि कराते हैं, तब जाकर उसके आनन्दांश की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार मनुष्य के अन्दर भी सत् और चित् के पूर्ण अभिसंवाद से आनन्द की उत्पत्ति होती है।

दूसरी दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि ईश्वर का सत्स्वरूप उनका मातृस्वरूप है और चित्स्वरूप पितृस्वरूप है। उनका तीसरा आनन्दरूप वह स्वरूप है, जिसमें मातृभाव और पितृभाव दोनों का पूर्णरूपेण सामञ्जस्य हो जाता है अथवा यों कहें कि शिव और शक्ति दोनों मिलकर अर्धनारीश्वर रूप में हमारे सामने आते हैं। उसी में हमें सत् और चित्— इन दो रूपों के साथ-साथ उनके तीसरे आनन्दरूप के भी दर्शन होते हैं।

भगवान् शिव योगीश्वर कहे जाते हैं, परन्तु वास्तव में वे गृहस्थों के ईश्वर हैं, विवाहित दम्पति के उपास्य हैं। विवाहित स्त्रियाँ जो उन्हें पूजती हैं, इसमें अवश्य ही कुछ तत्त्व है। बात यह है कि शिवजी स्त्री और पुरुष की पूर्ण एकता की अभिव्यक्ति हैं। इसी कारण वे उन्हें पूजती हैं।

भगवान् शिव अपने पारिवारिक सम्बन्धों से हमें समत्व योग की शिक्षा देते हैं। बाह्य दृष्टि से देखने से लगता है कि शंकर का परिवार विषमता का जीता-जागता नमूना है। सबके अलग-अलग रास्ते हैं। किसी का किसी के साथ मेल नहीं। आप बैल पर चढ़ते हैं, तो भवानी सिंहवाहिनी हैं, दोनों का कैसा जोड़ मिला है? आप भुजङ्गभूषण हैं, तो स्वामी कार्तिकेय को मोर की सवारी पसन्द है और उधर लम्बोदर गणेश जी महाराज को चूहे पर चढ़ने में ही सुभीता सूझता है। आपने गङ्गा जी को सिर पर चढ़ा रखा है, जिससे पार्वती जी को दिन रात सौतियाडाह हुआ करता है। इस प्रकार आपकी गृहस्थी क्या है, मानो झंझट की पिटारी है, मानसिक शान्ति और पारिवारिक सुख के लिये कैसा सुन्दर साज जुटा है? परन्तु भगवान् शिव तो प्रेम और शान्ति के अथाह समुद्र एवं सच्चे ठहरे। उनके मङ्गलमय शासन में सभी प्राणी अपना स्वाभाविक वैर-भाव भुलाकर आपस में तथा संसार के अन्य सभी जीवों के साथ पूर्ण शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। स्वयं उनका तो किसी के साथ द्वेष है नहीं, वे तो आनन्दरूप ही हैं, जो कोई उनके सम्पर्क में आता है, वह भी आनन्द रूप बन जाता है। उनके चारों ओर आनन्द के ही परमाणु फैले रहते हैं। यही महेश का सबसे महान् गुण है और इसीलिये आप **'शिव'** (कल्याणरूप) एवं **'शंकर'** (आनन्ददाता) कहलाते हैं। सारे विरोधों का सामञ्जस्य कर उस शान्ति की उपलब्धि करनी चाहिये, जो बुद्धि से परे की वस्तु है, यही अमूल्य शिक्षा हमें शिव के चरित्र से मिलती है।

हम क्षुद्र जीवों को गृहस्थाश्रम में रहकर भी भगवान् शिव की इस शिक्षा को अमल में लाना चाहिए। हममें से प्रत्येक को चाहिये कि वह पार्वती जैसी योग्य पत्नी का वरण कर स्वामी कार्तिकेय और गणेश जैसी विरुद्ध स्वभाववाली सन्तति का प्रेमपूर्वक लालन-पालन करे। अपनी धर्मपत्नी के साथ पूर्ण एकात्मता का अनुभव कर उसकी आत्मा में आत्मा मिलाकर ही मनुष्य आनन्द रूप शिव की उपलब्धि कर सकता है। वास्तविक योग का

स्वरूप यही है; क्योंकि **'समत्वं योग उच्यते'** अर्थात् समता का नाम ही **'योग'** है। स्थूल जगत् की सारी विषमताओं से घिरे रहने पर भी अपनी चित्तवृत्ति को शान्त एवं स्थिर बनाये रखना ही योग का स्वरूप है। इसकी सिद्धि संसार में रहकर ही हो सकती है। किसी जङ्गल में अथवा हिमालय की चोटी पर रहकर कोई भी समता का व्यवहार कर सकता है, परन्तु अपने दैनिक जीवन में, नाना प्रकार की झंझटों का सामना करते हुए भी जो अक्षुब्ध रह सकता है, वहीं शिव का सच्चा भक्त है।

यही सच्ची समता, जो सत् और चित् के पूर्ण संयोग से उत्पन्न होती है, अर्धनारीश्वर के विग्रह में अभिव्यक्त हुई है। इसमें पुरुष प्रकृति के संयोग द्वारा माया (द्वन्द्वमय जगत्) के आवरण को भेदकर आनन्दरूप पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। तब सारे विरोध मिट जाते हैं और मनुष्य उस स्थिति में पहुँच जाता है, जहाँ न पुरुष है, न प्रकृति, न स्त्री है, न पुरुष केवल एक अद्वितीय वस्तु— **'एकमेवाद्वितीयम्'** ही शेष रह जाता है। वही अनन्त आनन्द की मूर्ति अर्धनारीश्वर शिव हैं।

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पलकपालत्रिशूलहस्तम्।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम्।।

भगवान् शंकर का शरीर नीलमणि और प्रवाल के समान सुन्दर (नीललोहित) है, तीन नेत्र हैं, चारों हाथों में पाश, लाल कमल, कपाल और शूल हैं, आधे अङ्ग में अम्बिका जी और आधे में महादेव जी हैं। दोनों अलग-अलग शृङ्गारों से सज्जित हैं, ललाट पर अर्धचन्द्र है और मस्तक पर मुकुट सुशोभित है, ऐसे स्वरूप को नमस्कार है। पुनश्च—

मन्दारमालाङ्कुलितालकायै
कपालमालाङ्कितशेखराय ।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय
नमः शिवायै च नमः शिवाय।।



६. ब्रह्मशिरच्छेद लीला

एक समय की बात है एक दिन सभी देवता और मुनीश्वर एकत्रित होकर विचार करने लगे कि परब्रह्म कौन है? इस प्रश्न के निर्णय के लिये सब लोग ब्रह्मा के पास गये। वहाँ उन लोगों ने कहा— सब देवों में परब्रह्म कौन है? जो अनादि, अनन्त, अविनाशी, सर्वसृष्टि में श्रेष्ठ, निर्गुण सगुण स्वरूप हैं, जिनकी समानता कोई नहीं कर सकता है, जिसको वेदान्ती सच्चिदानन्द कह कर स्वीकार करते हैं, जिनके भय से शेषनाग पृथिवी को अपने शिर पर धारण करते हैं, जिनकी आज्ञा से सूर्य प्रतिदिन संसार में सर्वत्र प्रकाश फैलाते हैं, जिनके निर्देश पर चन्द्रमा तथा नक्षत्र अपनी-अपनी कक्षा में विचरण करते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ देवता कौन हैं?

देवताओं के इस प्रकार के प्रश्न को सुनकर ब्रह्मा ने कहा— हे देवों! एवं मुनीश्वरों! ऐसे देवता को तुमलोग पूछते हो, तो ऐसा मैं ही हूँ, क्योंकि ब्रह्म और स्वयम्भू आदि हमारे नामों से यह सूचित है। शिव की माया से मोहित होकर ब्रह्मा के ऐसे वचन को सुनकर विष्णु अति अप्रसन्न हुए और उन्होंने अपने को श्रेष्ठ बताते हुए कहा— हे ब्रह्मा! क्या कोई मनुष्य अन्धा होकर नयनसुख के नाम से प्रसिद्ध नहीं होता? कुबेर का नाम पाकर क्या भीख माँगते नहीं देखा जाता? इस प्रकार दोनों में विवाद बढ़ गया। निर्णय के लिए ब्रह्मा ने वेदों से पूछा, तो वेदों ने कहा— हे ब्रह्मन्! परब्रह्म तो केवल सदाशिव हैं, क्योंकि वे तीनों गुणों से परे हैं। उनके अङ्गों से ही तुमदोनों की भी उत्पत्ति हुई है। यह सुनकर ब्रह्मा और विष्णु दोनों वेद पर अति कुपित हुए। पुन: प्रणव ने भी आकर कहा— हे ब्रह्मा और विष्णु! तुम दोनों वेद के वचन को सत्य समझो। परमशिव का कोई रूप नहीं है। परन्तु उनकी लीला के कारण उनके असंख्य रूप हैं। वे ही अपने भक्त के निमित्त प्रकट होकर असंख्य चरित्र करते हैं। वे ही परमशिव हर होकर कैलास में वास करते हैं और शक्तिसहित नाना प्रकार की लीला करते हैं। तुम दोनों संसारी जीवों के

समान सत्य मार्ग का त्यागकर संशय में पड़े हो। वे कैलासवासी शिव अपनी इच्छा के अनुसार कभी शरीर धारण करते हैं। वे कभी योगी के रूप में नग्न शरीर भस्म धारण कर ध्यान में बैठ जाते हैं, तो कभी भोगी हो जाते हैं, उस समय चक्रवर्ती राजा की तरह सभी देवता उनकी आज्ञा को शिर से धारण करते हैं। सभी देवता उस सभा में आकर शिव और शिवरानी दोनों को प्रसन्न करने के लिए उनका गुणगान करते हैं। उस समय लक्ष्मी गीत गाती हैं। हे विष्णु! तुम मृदङ्ग बजाते हो, ब्रह्मा ताल देते हैं और सरस्वती सावधानीपूर्वक वीणा बजाती हैं। इन्द्र आदि सभी देवता शिव का भजन गाते हैं। इस प्रकार प्रणव ने दोनों को समझाने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु ब्रह्मा और विष्णु को उनकी बात अच्छी नहीं लगी; क्योंकि शिव की माया से वे पूर्ण रूप से मोहित थे।

इसके बाद ब्रह्मा और विष्णु पर अनुग्रह करने के लिए देवाधिदेव शिव ने विचार किया। उस समय दोनों के देखते ही देखते उनके सामने एक ज्वाला प्रकट हुई। जिसके प्रकाश से सम्पूर्ण पृथिवी और आकाश प्रकाशित हो गया। उसी समय उस ज्वाला के मध्य से एक मनुष्य प्रकट हुआ। उसे देखकर ब्रह्मा ने अपना पाँचवाँ मुख प्रकट कर कहा— यह कौन है? जो हम दोनों के मध्य में प्रकट हुआ है। वह मनुष्य पञ्चमुख, नीललोहित अङ्ग, भाल में चन्द्रमा, हाथ में त्रिशूल और भूषणों की जगह सर्प पहने हुए था। उसे देखकर ब्रह्मा ने कहा— तुम तो वही हो, जो हमारे भ्रूमध्य से उत्पन्न हुए थे, हमने तुमको रोते देखकर तुम्हारा नाम **'रुद्र'** रखा था।

ब्रह्मा के इस प्रकार के वचन को सुनकर रुद्र, अर्थात् सदाशिव अति कुपित हुए। उस समय उन्होंने एक मनुष्य को उत्पन्न किया। जो भक्तों को प्रसन्न करने वाला और शत्रुओं को दुःख देने वाला था। वह काल के समान प्रकट हुआ, इसलिए **'कालराज'** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो विश्व के भरण की शक्ति रखता था, इसलिए उसका नाम **'भैरव'** पड़ा। उससे काल ने भी भय खाया, इससे **'कालभैरव'** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वे दुःखों के समूह को दूर करने के कारण **'आमर्दक'** तथा भक्तों के पाप को दूर करने एवं भक्तों को मुक्त करने के कारण **'पापभक्षक'** नाम से विख्यात हुए। इस प्रकार उनके अन्य भी नाम प्रसिद्ध हुए। वे पापियों को दण्ड देने के लिए दण्ड धारण करते हैं, इसलिए उनका नाम **'दण्डपाणि'** हुआ।

इसके बाद भगवान् रुद्र ने उससे कहा— हे दण्डपाणि! प्रजा को उत्पन्न करने वाले इस ब्रह्मा ने हमारी निन्दा की है, इसलिए इसको दण्ड दो, जिससे संसारी जीव शिक्षा ग्रहण करें। तुमको हमने अपनी काशीपुरी का कोतवाल नियुक्त किया है।

इस प्रकार भगवान् शंकर के वचन को सुनकर भैरव ने ब्रह्मा के पाँचवें शिर को काट डाला, जिससे उन्होंने शिव की निन्दा की थी। ब्रह्मा के शिर को काटने से भैरव को ब्रह्महत्या का पाप लगा। उसको दूर करने का उपाय बताकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। भैरव ने भी ब्रह्मा का शिर हाथ में लेकर तीनों लोकों की परिक्रमा की, इसलिये वे **'कपालपाणि'** कहे जाते हैं। किन्तु स्त्री का रूप धारण की हुई ब्रह्महत्या उनके पीछे लगी रही। भैरव सभी देवलोकों में घूमते हुए विष्णुलोक में गये, तो भगवान् विष्णु ने कहा— हे भैरव! तुमको ब्रह्महत्या नहीं लग सकती। तुम शिव के समान हो, अपितु शिवस्वरूप ही हो। तुम्हारे कण्ठ में ब्रह्मा के शिरों की माला विराजमान है। तुम्हारे स्मरण से अन्यों की ब्रह्महत्या दूर हो जाती है, तो तुमको ब्रह्महत्या क्यों लगेगी। जब तुम प्रलय कर सम्पूर्ण सृष्टि का नाश कर देते हो, तब तो तुमको कोई पाप नहीं लगता, तो केवल ब्रह्मा का एक शिर काटने से अपना ऐसा स्वरूप बनाकर घूम रहे हो, उचित नहीं है। इसके बाद विष्णु ने स्त्री रूप धारण की हुई ब्रह्महत्या को बुलाकर बहुत समझाया।

इसके बाद भैरव आगे चले। जब वे मुक्तिपुरी काशी में आये, तब वह ब्रह्महत्या आप ही लुप्त हो गयी। इस काशी की महिमा का वर्णन कोई नहीं कर सकता। भैरव की जो ब्रह्महत्या तीनों लोकों की परिक्रमा करने पर भी दूर नहीं हुई, वह काशी में पहुँचते ही भाग गयी। काशी में कपालमोचन तीर्थ सबसे अधिक फल देने वाला है, जिसके स्मरण करने से बड़ा से बड़ा पाप नष्ट हो जाता है। कपालमोचन तीर्थ में तर्पण करने से ब्रह्महत्या तुरन्त नष्ट हो जाती है। इसके समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं है। यहाँ भैरव सदाशिव विराजमान हैं। जिनकी सेवा से सब दु:ख दूर हो जाते हैं। कालभैरव का प्राकट्य अगहन मास (मार्गशीर्ष मास) के कृष्णपक्ष अष्टमी को दोपहर में हुआ था। इस दिन निर्जल रहकर जो व्रत करता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। इसका नाम **'कालाष्टमीव्रत'** या **'भैरवव्रत'** प्रसिद्ध है, जिसके करने से सब

पाप दूर हो जाते हैं। जो मनुष्य यह भैरव का व्रत काशी में भैरव के पास जाकर करता है, उसके सब पाप दूर हो जाते हैं। उस दिन जो कोई भैरव की पूजा करता है, उसका एक वर्ष का सम्पूर्ण विघ्न नष्ट हो जाता है। जो सप्तमी, चतुर्दशी, रविवार और भौमवार को कालभैरव का दर्शन करता है, उसके सभी पाप दूर हो जाते हैं और मुक्ति प्राप्त करता है। जो मनुष्य भैरव की आठ परिक्रमा करता है, उसके तीनों प्रकार के पाप दूर हो जाते हैं। जो मनुष्य मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की अष्टमी को यह व्रत करता है और भैरवव्रत की कथा सुनता है या सुनाता है, वह ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार भगवान् शंकर की ब्रह्मशिरच्छेदलीला ब्रह्मा के गर्व को दूर करने के लिये सम्पन्न हुई है।

पूर्ण शुद्ध तथा असीम चिद्घन परमशिव का स्वभाव आनन्दमय है। वह सदैव स्पन्दमान होता हुआ स्व-स्वभाव से ही क्रीडनशील होता है, अत: प्रतिबिम्बात्मक सर्जन-संहार आदि की ऐसी लीलाएँ परमशिव के असीम चिदानन्द में चलती रहती हैं। इन लीलाओं का इस प्रकार चलते रहना ही परमेश्वर की परमेश्वरता या परशिव की परशिवता है। आत्मस्वरूप संसार को अपने से भिन्नरूप में और अभेद को भी भेदरूप में परिवर्तित करने वाली माया भी उस परमेश्वर की ही एक शक्ति है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में परमेश्वर शिव की शक्ति को माया कहा गया है।

बन्धन और मोक्ष भी उसी की लीलाएँ हैं। सब कुछ वही परमशिव है। शैव साधक विश्व की प्रत्येक वस्तु को शिवरूप में अनुभव करते हैं। परमेश्वर शिव ही स्वयं को नट के समान बद्ध जीवों के रूप में प्रकट करता हुआ बन्धनलीला का स्वयं अभिनय मात्र करता है। वह योग, ज्ञान और भक्ति के समन्वित-साधन पथ पर अग्रसर होता हुआ मुक्तिलीला का अनुभव करता है। बन्धन का आभास परमशिव की निग्रह-लीला है और मोक्ष की प्राप्ति उसकी अनुग्रह-लीला का परिणाम है। परमशिव अपने प्रसाद से प्राणियों के कल्याण के लिये नाना लीलाएँ करते हैं। उनकी आदिशक्ति लीलामयी है। उसी लीलात्मिका शक्ति के सहयोग से परमशिव विश्व-रङ्गमञ्च पर लीला करते हैं, अत एव वे **'नटराज'** कहे जाते हैं।



७. भिक्षाटन लीला

प्राचीन काल में ब्रह्मा माया से मोहित होकर समझ बैठे कि मैं ही परब्रह्म हूँ। मुझसे भिन्न दूसरा कोई यहाँ नहीं है। **'अहमेव परंब्रह्म मत्तोऽन्यो नहि विद्यते'** इस प्रकार के अथर्ववेद के वाक्यों को बोलते हुए ब्रह्मा को अहङ्कार से ग्रस्त देखकर भगवान् शिव क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अपने नखों से ब्रह्मा का सिर काट डाला। ब्रह्मा के उस सिर के कट जाने से तीव्र गति से रुधिर बहने लगा, तो उस समय ब्रह्मा के शिर का कपालपात्र बनाकर फिर उसमें सारे खून को भर लिया। इसके बाद भगवान् शिव ने अपने ललाट में स्थित अग्निरूपी नेत्र से कपाल में स्थित उस रक्त को सुखा डाला। इस कपाल को धारण करने के कारण वे **'कपाली'** कहे जाते हैं।

ब्रह्मा का वध करने के कारण भगवान् शिव पर ब्रह्महत्या का आक्रमण हुआ, वे उसके ताप से जलने लगे। ब्रह्महत्या से उत्पन्न हुए ताप की शान्ति के लिये, अर्थात् ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति के लिये भगवान् शिव भिक्षाटन करने लगे। यही उनकी भिक्षाटन लीला का मूल रहस्य है। (सूक्ष्मागम, क्रियापाद, २.२०-२३)।

विदर्भदेश में सत्यरथ नाम से प्रसिद्ध एक राजा थे, जो धर्म में तत्पर, सत्यशील और बड़े-बड़े शिवभक्तों से प्रेम करने वाले थे। धर्मपूर्वक पृथिवी का पालन करते हुए उनका बहुत-सा समय सुखपूर्वक बीत गया। तदनन्तर किसी समय शाल्वदेश के राजा ने उस राजा की राजधानी पर आक्रमण करके उसे चारों ओर से घेर लिया। बलोन्मत्त शाल्वदेशीय क्षत्रियों के साथ, जिनके पास बहुत बड़ी सेना थी, राजा सत्यरथ का बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। शत्रुओं के साथ दारुण युद्ध करके उनकी बड़ी भारी सेना नष्ट हो गयी। फिर दैवयोग से राजा भी शाल्वों के हाथ से मारे गये। उस नरेश के मारे जाने पर मरने से बचे हुए सैनिक मन्त्रियों सहित भय से विह्वल हो भाग खड़े हुए। उस समय विदर्भराज सत्यरथ की रानी शत्रुओं से घिरी होने पर भी कोई प्रयत्न

करके रात के समय अपने नगर से बाहर निकल गयी। वे गर्भवती थीं, अत: शोक से सन्तप्त हो भगवान् शंकर के चरणारविन्दों का चिन्तन करती हुईं वे धीरे-धीरे पूर्व दिशा की ओर बहुत दूर चली गयीं। सबेरा होने पर रानी ने भगवान् शंकर की दया से एक निर्मल सरोवर देखा। उस समय तक वे बहुत दूर का रास्ता तय कर चुकी थीं। सरोवर के तट पर आकर वे सुकुमारी रानी एक छायादार वृक्ष के नीचे बैठ गयीं।

भाग्य से उसी निर्जन स्थान में वृक्ष के नीचे ही रानी ने उत्तम गुणों से युक्त शुभ मुहूर्त में एक दिव्य बालक को जन्म दिया, जो सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न था। दैववश उस बालक की जननी महारानी को बड़े जोर की प्यास लगी। तब वे पानी पीने के लिये उस सरोवर में उतरीं। इनते में ही एक बड़े भारी ग्राह ने आकर रानी को अपना ग्रास बना लिया। वह बालक पैदा होते ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गया और भूख-प्यास से पीड़ित हो उस तालाब के किनारे जोर-जोर से रोने लगा। इतने में ही उस पर कृपा कर भगवान् महेश्वर वहाँ आकर मनुष्यवेश में उस शिशु की रक्षा करने लगे।

इसके बाद भगवान् शंकर की प्रेरणा से एक विधवा ब्राह्मणी वहाँ आ गयी। घर-घर भीख माँग कर वह अपना जीवन निर्वाह करती थी। अपने एक वर्ष के बालक को गोद में लिये हुए उस तालाब के तट पर पहुँची थी। उसने एक अनाथ शिशु को वहाँ क्रन्दन करते देखा। निर्जन वन में उस बालक को देख कर ब्राह्मणी को बड़ा विस्मय हुआ और मन-ही-मन विचार करने लगी— अहो! यह बड़े आश्चर्य की बात है कि यह नवजात शिशु, जिसकी नाल भी अभी तक नहीं कटी है, पृथिवी पर पड़ा हुआ है। इसकी माँ भी नहीं है। पिता आदि दूसरे कोई सहायक भी यहाँ नहीं दिखायी देते। क्या कारण हो गया? न जाने यह किसका पुत्र है? इसे जानने वाला यहाँ कोई नहीं है, जिससे इसके जन्म के विषय में पूछा जाय। इसे देखकर मेरे हृदय में करुणा उत्पन्न हो गयी है। मैं इस बालक का अपने औरस पुत्र की भाँति पालन-पोषण करना चाहती हूँ। परन्तु इसके कुल और जन्म आदि का ज्ञान न होने के कारण इसे छूने का साहस नहीं होता।

ब्राह्मणी जब इस प्रकार विचार कर रही थी, उस समय भक्तवत्सल भगवान् शिव ने बड़ी कृपा की। बड़ी-बड़ी लीलायें करने वाले महेश्वर एक

संन्यासी का रूप धारण करके सहसा वहाँ आ पहुँचे, जहाँ वह ब्राह्मणी सन्देह में पड़ी हुई थी और यथार्थ बात को जानना चाहती थी। श्रेष्ठ भिक्षु का रूप धारण करके आये हुए करुणानिधान शिव ने हँसकर कहा— 'ब्राह्मणी! अपने चित्त में सन्देह और खेद को स्थान न दो। यह बालक परम पवित्र है। तुम इसे अपना ही पुत्र समझो और प्रेमपूर्वक इसका पालन करो।

ब्राह्मणी बोली— प्रभो! आप मेरे भाग्य से ही यहाँ पधारे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मैं आपकी आज्ञा से इस बालक का अपने पुत्र की भाँति पालन-पोषण करूँगी; तथापि मैं विशेषरूप से यह जानना चाहती हूँ कि वास्तव में यह कौन है, किसका पुत्र है और आप कौन हैं? जो इस समय यहाँ पधारे हैं। भिक्षुवर! मेरे मन में बार-बार यह बात आती है कि आप करुणासिन्धु शिव ही हैं और यह बालक पूर्वजन्म में आपका भक्त रहा है। किसी कर्मदोष से यह इस दुरवस्था में पड़ गया है। इसे भोग कर यह पुन: आपकी कृपा से परम कल्याण का भागी होगा। मैं भी आपकी माया से ही मोहित हो मार्ग भूलकर यहाँ आ गयी हूँ। आपने ही इसके पालन के लिये मुझे यहाँ भेजा है।

भिक्षुवर शिव ने कहा— ब्राह्मणी! सुनो, यह बालक शिवभक्त विदर्भराज सत्यरथ का पुत्र है। सत्यरथ को शाल्वदेशीय क्षत्रियों ने युद्ध में मार डाला है। उनकी पत्नी अत्यन्त व्यग्र हो रात में शीघ्रतापूर्वक अपने महल से बाहर भाग आयीं। उन्होंने यहाँ आकर इस बालक को जन्म दिया। सबेरा होने पर वे प्यास से पीड़ित हो सरोवर में उतरीं। उसी समय दैववश एक ग्राह ने आकर उन्हें अपना आहार बना लिया।

ब्राह्मणी ने पूछा— भिक्षुदेव! क्या कारण है कि इसके पिता राजा सत्यरथ श्रेष्ठ भोगों के उपभोग के समय बीच में ही शाल्वदेशीय शत्रुओं द्वारा मार डाले गये। किस कारण से इस शिशु की माता को ग्राह ने खा लिया? और यह शिशु जो जन्म से ही अनाथ और बन्धुहीन हो गया, इसका क्या कारण है? मेरा अपना पुत्र भी अत्यन्त दरिद्र एवं भिक्षुक क्यों हुआ तथा मेरे इन दोनों पुत्रों को भविष्य में कैसे सुख प्राप्त होगा?

भिक्षुवर्य शिव ने कहा— इस राजकुमार के पिता विदर्भराज पूर्वजन्म में पाण्ड्यदेश के श्रेष्ठ राजा थे। वे सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता थे और सारी पृथ्वी

का धर्मपूर्वक पालन करते थे। एक दिन प्रदोषकाल में राजा भगवान् शंकर का पूजन कर रहे थे और बड़ी भक्ति से त्रिलोकीनाथ महादेव जी की आराधना में संलग्न थे। उसी समय नगर में सब ओर बड़ा भारी कोलाहल मचा। उस उत्कट शब्द को सुनकर राजा ने बीच में ही भगवान् शिव की पूजा छोड़ दी और नगर में क्षोभ फैलने की आशंका से राजभवन से बाहर निकल गये। इसी समय राजा का महाबली मन्त्री शत्रु को पकड़कर उनके समीप ले आया। वह शत्रु पाण्ड्यराज का ही सामन्त था। उसे देखकर राजा ने क्रोधपूर्वक उसका मस्तक कटवा दिया। शिवपूजा छोड़कर नियम को समाप्त किये बिना ही राजा ने रात में भोजन भी कर लिया। इसी प्रकार राजकुमार भी प्रदोषकाल में शिवजी की पूजा किये बिना ही भोजन करके सो गया। शिवजी की पूजा में विघ्न होने के कारण शत्रुओं ने उसको सुख-भोग के बीच में ही मार डाला। पूर्व जन्म में जो उसका पुत्र था, वही इस जन्म में भी हुआ है। शिवजी की पूजा का उल्लङ्घन करने के कारण यह दरिद्रता को प्राप्त हुआ है। इसकी माता ने पूर्व जन्म में छल से अपनी सौत को मार डाला था। उस महान् पाप के कारण ही वह इस जन्म में ग्राह के द्वारा मारी गयी। ब्राह्मणी! यह तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्म में उत्तम ब्राह्मण था। इसने सारी आयु केवल दान लेने में बितायी है, यज्ञ आदि सत्कर्म नहीं किये हैं। इसीलिये यह दरिद्रता को प्राप्त हुआ है। उस दोष का निवारण करने के लिये अब तुम भगवान् शंकर की शरण में जाओ। ये दोनों बालक यज्ञोपवीत-संस्कार के उपरान्त भगवान् शिव की आराधना करें। भगवान् शिव इनका कल्याण करेंगे।

इस प्रकार ब्राह्मणी को उपदेश देकर भिक्षु (श्रेष्ठ संन्यासी) का शरीर धारण करने वाले भक्तवत्सल शिव ने उसे अपने उत्तम स्वरूप का दर्शन कराया। उन्हें साक्षात् शिव जानकर ब्राह्मणपत्नी ने प्रणाम किया और प्रेम से गद्गद वाणी द्वारा उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। उनके चले जाने पर ब्राह्मणी उस बालक को लेकर अपने पुत्र के साथ घर को चली गयी। एकचक्रा नाम के सुन्दर ग्राम में उसने घर बना रखा था। वह उत्तम अन्न से अपने बेटे और राजकुमार का पालन-पोषण करने लगी। यथासमय ब्राह्मणों ने उन दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया। वे दोनों शिव की पूजा में तत्पर रहते हुए घर पर ही बड़े हुए। शाण्डिल्य मुनि के

उपदेश से नियमपरायण हो वे दोनों शुभ व्रत रखकर प्रदोष काल में शङ्कर जी की पूजा करते थे। एक दिन द्विजकुमार राजकुमार को साथ लिये बिना ही नदी में स्नान करने के लिये गया। वहाँ उसे निधि से भरा हुआ एक सुन्दर कलश मिल गया। इस प्रकार भगवान् शंकर की पूजा करते हुए उन दोनों कुमारों का उसी घर में एक वर्ष व्यतीत हो गया।

इसके बाद एक दिन राजकुमार उस ब्राह्मण कुमार के साथ वन में गया। वहाँ अकस्मात् एक गन्धर्वकन्या आ गयी। उसके पिता ने उस कन्या को राजकुमार के लिए दे दिया। गन्धर्वकन्या से विवाह करके राजकुमार निष्कण्टक राज्य भोगने लगा। जिस ब्राह्मणपत्नी ने पहले अपने पुत्र की भाँति उसका पालन-पोषण किया था, वही उस समय राजामाता हुई और वह ब्राह्मण-कुमार उसका भाई हुआ। राजा का नाम धर्मगुप्त था। इस प्रकार देवेश्वर शिव की आराधना करके राजा धर्मगुप्त अपनी उस रानी के साथ विदर्भदेश में राजोचित सुख का उपभोग करने लगा।

इस प्रकार भगवान् शिव के भिक्षुवर्य अवतार का वर्णन किया गया है। जिन्होंने राजा धर्मगुप्त को बाल्यकाल में सुख प्रदान किया था। यह पवित्र आख्यान पापहारी, परमपावन, चारों पुरुषार्थों का साधक तथा सम्पूर्ण अभीष्ट को देने वाला है। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर इस आख्यान को सुनता या सुनाता है, वह इस लोक में सम्पूर्ण भोगों का उपभोग करके अन्त में भगवान् शिव के धाम को जाता है (शतरुद्रसंहिता, अ., ३१)।

भोलेभण्डारी भगवान् शंकर इतने दयालु हैं कि अपने भक्त के कल्याण की रक्षा के लिये अभक्त के सम्मुख भी भिखारी का वेश धारण करके नाचने-गाने लगते हैं। शिवलीलार्णव में एक कथा आयी है कि एक समय दक्षिण में मीनाक्षीपुर के राजा के दरबार में सोमदत्त नामक एक निपुण गायक था, जिसे राजा बड़े सम्मान तथा विपुल वैभव से रखते थे। इससे अन्य गायकों की ईर्ष्या होती थी। किसी अन्य प्रदेश का एक प्रसिद्ध गायक इस उद्देश्य से मीनाक्षीपुर आया कि सोमदत्त को प्रतियोगिता में पराजित कर स्वयं राजदरबारी बन जायँ, अतः राजा से मिला। राजा ने अगले दिन का समय प्रतियोगितः के लिये निश्चित किया और घोषणा की कि योग्यता में विजयी गायक को राजदरबारी' पद और दूसरे को दण्ड दिया जायेगा। आगन्तुक

गायक की कला की निपुणता की अधिक प्रसिद्धि थी। अतः सोमदत्त ने भगवान् चन्द्रमौलीश्वर के मन्दिर में जाकर प्रार्थना की कि 'हे प्रभो! मेरी लाज और मेरा जीवन आप ही के हाथ में है, दया कर इस विपत्ति से दास को बचाइये।'

अगले दिन प्रातः ही भगवान् शंकर फटे पुराने कपड़ों में एक भिखारी का रूप धारण कर आगन्तुक गायक के शिबिर में पहुँचे और 'नारायण हरि' कहा। गायक ने भिखारी के पास सारङ्गी देखकर पूछा— 'क्या तुम कुछ गाना बजाना जानते हो?' भिखारी का 'हाँ' में उत्तर पाने पर उसने कहा— 'अच्छा कुछ सुनाओ।' भिखारी बने भगवान् शिव ने ऐसा दिव्य गान सुनाया और अनुपम वाद्य बजाया, जैसा उसने कभी सुना नहीं था। अतएव मन्त्रमुग्ध-भाव से उसने भिखारी से पूछा— 'तुम कौन हो?' शंकर जी बोले— 'मैं राजदरबारी सोमदत्त गायक का शिष्य हूँ।' यह सुनकर गायक चकित हो गया। उसने अपने मन में सोचा कि जिसका शिष्य इतना निपुण है, उसका गुरु स्वयं कैसा होगा? अतः सोमदत्त को परास्त करना असम्भव समझ कर वह समय से पूर्व ही तुरन्त अपने देश को भाग गया। इस प्रकार सोमदत्त की रक्षा भगवान् शंकर ने भिखारी वेश में की।

ऐसे दयालु कृपालु भगवान् शिव की उपासना कितनी सरल है—

मूर्तिर्मृदा बिल्वदलेन पूजा
अयत्नसाध्यं वदनाब्जवाद्यम्।
फलं च यद्यद् मनसोऽभिलाषोः
स्वरूपविश्वेश्वर एव देवः।।

अर्थात् मिट्टी से ही मूर्ति बन जाती है, बेल के पत्ते से ही पूजा हो जाती है तथा बिना मेहनत के ही मुँह बजा देने से बाजे का काम हो जाता है। फिर इस पूजा से जो-जो मन की अभिलाषाएँ होती हैं, सब पूरी हो जाती हैं। ऐसे स्वरूप वाले देव की पूजा कर विश्वेश्वरत्व को प्राप्त करना परम सहज है।



८. दक्षिणामूर्ति लीला

भगवान् शिव सत्स्वरूप, परमपुरुष, हिरण्यबाहु, ईश्वर, अम्बिकापति, ईशान, पिनाकपाणि तथा वृषभवाहन आदि नामों से जाने जाते हैं। वे हृदय के भीतर कमल के मध्यभाग में केश के अग्रभाग की भाँति सूक्ष्मरूप से चिन्तन करने योग्य हैं। वे सुवर्णमय नीलकण्ठ देव सदा विचरते रहते हैं। उन्हें सौम्य, घोर, मिश्र, अक्षर, अमृत और अव्यय कहा गया है। वे पुरुषविशेष परमेश्वर भगवान् शिव काल के भी काल हैं। परमेश्वर शिव की स्वाभाविक शक्ति विद्या है, जो सबसे विलक्षण है। भगवान् शिव ने जिस वेदोक्त ज्ञान को संक्षिप्त करके कहा है, वही शैव ज्ञान है। यह दिव्य ज्ञान गुरु की कृपा से प्राप्त होता है, जो अनायास ही मोक्ष को देने वाला है।

जगत्पति, जगद्गुरु, त्रिपुरारि (अर्थात् काम, क्रोध एवं अहङ्काररूपी तीन नगरों को ध्वंस करने वाले) योगेश्वर, शूलपाणि, दिगम्बर, दक्षिणामूर्ति इत्यादि नामों से पुकारे जाते हैं। उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार इन चार कुमारों को गुरु दक्षिणामूर्ति के रूप में ज्ञान का रहस्य सिखाया था। उन्होंने उपमन्यु को भी दिव्य ज्ञान प्रदान किया था।

प्राचीन काल की बात है। यशस्वी, वेदज्ञाता परम शिवभक्त ऋषि व्याघ्रपाद इस नश्वर देह को त्याग शिवलोक को चले गये थे। उनके पुत्र उपमन्यु और धौम्य अभी बालक थे। वे एक दिन किसी मुनि के आश्रम पर चले गये। मुनि ने उनको दूध पिलाया। वे घर लौट आये और माता से दूध माँगने लगे। घर में दूध नहीं था। ऋषिपत्नी ने चावल का आटा पानी में मिलाकर बालकों को दे दिया, पर उन्होंने तो दूध चख लिया था, कहा— 'यह तो दूध नहीं है।' माता ने कहा— 'वत्स! हम नदियों के किनारे पर्वतों की गुफाओं में एवं तीर्थों पर तप करने वाले मनुष्य हैं, हमारे यहाँ दूध कहाँ रखा है? हमारे आश्रयदाता तो भगवान् शिव हैं। उनको प्रसन्न करो, वे प्रसन्न होकर तुमलोगों को दूध-भात देंगे। तुम श्रद्धापूर्वक उन्हीं की शरण में जाओ।'

माता का वचन सुनकर बालक उपमन्यु ने हाथ जोड़ कर पूछा— 'माँ! भगवान् शिव कौन हैं? वे कहाँ रहते हैं? उनका दर्शन कैसे होगा? उनका रूप कैसा है?'

बालक के सरल वचनों को सुनकर माता की आँखें आँसुओं से भर आयीं। पुत्र का मस्तक सूँघ बड़े प्रेम से वह बोली— 'बेटा! शिव कहाँ नहीं हैं? सारा विश्व शिवमय है। वे सब प्राणियों के हृदय में वास करते हैं, भक्तों पर दया करके कभी-कभी उन्हें दर्शन दे दिया करते हैं। तत्त्वज्ञान के बिना उनको पाना बहुत ही कठिन है। लोग उनके अनेक रूप बतलाते हैं, पर उनके यथार्थ चरित्र को कोई नहीं जानता। वे जिस पर कृपा करके अपना रूप जनाते हैं, वही जान सकता है। वे निराकार रूप से सर्वत्र विराजमान हैं और साकार रूप से नित्य महाकैलास में रहते हैं। उनका श्वेत वर्ण है, उनके मस्तक पर चन्द्रमा विराजित है, वे सर्प का यज्ञोपवीत पहने हुए हैं। मन को हरने वाले भगवान् शिव यज्ञ की वेदि में, यज्ञस्तम्भ में एवं यज्ञाग्नि में विशेषरूप से निवास करते हैं। वे निष्कल माया के ईश्वर, आदि, अन्त और जन्मरहित हैं। उन परमात्मरूप महेश्वर का ज्ञान केवल भक्ति से हो सकता है। तुम उनके भक्त बनो, उनमें मन लगाओ, उनमें निष्ठा रखो, उनकी शरण में जाओ, उनका ही भजन करो, ऐसा करने से तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।'

माता के इस उपदेश से उपमन्यु की भगवान् शिव में अविचल भक्ति हो गयी। वह तपस्या में लग गया। एक हजार दिव्य वर्षों तक उसने दाहिने अँगूठे के अग्र-भाग पर खड़े रहकर भगवान् शिव को सन्तुष्ट किया। भगवान् शिव ने उसके अनन्य भाव की परीक्षा के लिये इन्द्र के रूप में प्रकट होकर कहा— 'वत्स! मैं प्रसन्न हूँ, जो इच्छा हो, वर माँगो।'

उपमन्यु ने कहा— 'देवराज! मैं आपसे कुछ भी नहीं चाहता। मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये, मैं तो भगवान् शंकर का दास होना चाहता हूँ। वे जब तक प्रसन्न न होंगे, तब तक मैं तप से विरत नहीं होऊँगा। तीनों भुवनों के सार, सबके आदि पुरुष, अद्वितीय, मृत्युरहित रुद्र को प्रसन्न किये बिना किसी को शान्ति नहीं मिल सकती। मेरे दोषों के कारण यदि मेरा फिर जन्म हो, तो उसमें भी भगवान् शिव पर ही मेरी अक्षय भक्ति बनी रहे।'

इन्द्र ने कहा— तुम्हारा कथन तो ठीक है, परन्तु उस शिव की सत्ता में तुम्हारे पास क्या प्रमाण है। इन्द्र का वचन सुनकर उपमन्यु ने कहा— 'वे अव्यक्त, आदि और बीजरूप हैं। यह सारा दृश्य जगत् जिसमें लीन होता है, उसी तत्त्व का नाम शिव है, इस बात को कोई नकार नहीं सकता। वह माया से परे, परमज्योतिस्वरूप हैं। हे देवराज! भले ही आप खड़े रहें या चले जाँय, मैं तो केवल उस महेश्वर से ही वर प्राप्त करूँगा, दूसरे किसी से नहीं।' यह कहकर उपमन्यु व्याकुल होकर सोचने लगा कि भगवान् शंकर अभी तक क्यों प्रसन्न नहीं हुए?

इतने में उपमन्यु ने देखा कि ऐरावत हाथी ने चन्द्रमा के समान श्वेत कान्तिवाले बैल का रूप धारण कर लिया। उस समय भगवान् शिव माता पार्वती के साथ उस पर विराजमान थे। वे पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे। उनके शान्तिमय शीतल प्रखर तेज से दिशायें प्रकाशित हो रही थीं। वे अनेक प्रकार के आभूषण पहने हुए थे। उनके उज्ज्वल सफेद वस्त्र थे, श्वेत पुष्पों की सुन्दर माला गले में थी। वे श्वेत चन्दन मस्तक पर लगाये हुए थे। श्वेत ही ध्वजा थी और श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। धवल चन्द्र युक्त मुकुट था। सुन्दर शरीर पर सुवर्ण कमलों से गुँथी हुई और रत्नों से जड़ी हुई माला शोभायमान हो रही थी। ऐसे देवमुनिवन्दित भगवान् शंकर का दर्शन कर उपमन्यु प्रार्थना करने लगा— 'हे देवाधिदेव! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हाथ में वज्र लिये पीले और रक्तवर्णवाले हे देवदेव! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे महेशरूप! हे महादेव!! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। इस पर भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर कहा— 'बेटा उपमन्यु! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। मैंने परीक्षा कर देख लिया कि तुम मेरे दृढ़ भक्त हो। बोलो, तुम क्या चाहते हो? याद रखो, तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।

भगवान् शंकर के कृपापूर्ण वचनों को सुनकर उपमन्यु के आनन्द की सीमा नहीं रही, उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। वह गद्‌गद स्वर से कहने लगा— प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया। देवता भी जिनको प्रत्यक्ष नहीं देख पाते, वे देवदेव आज मेरे सामने विराजमान हैं। इससे अधिक और क्या चाहिये? इस पर भी यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं, तो यही दीजिये कि आपमें मेरी अविचल भक्ति सदा बनी रहे।

उपमन्यु का वचन सुनकर भगवान् शंकर ने कहा— 'उपमन्यु! तुम जरामरणरहित, यशस्वी, तेजस्वी, दिव्यज्ञानयुक्त हो गये। तुम्हारे सारे दुःख दूर हो गये। तुम सर्वत्र सुन्दर अग्निसदृश तेजस्वी हो गये। तुम एक कल्प पर्यन्त अपने भाइयों के साथ दूध-भात खाते रहोगे। बाद में तुम मेरे समीप पहुँच जाओगे। मुझमें तुम्हारी अचल भक्ति होगी। मेरा स्मरण करने के साथ ही मैं तुझे दर्शन दूँगा।

इस प्रकार वरदान देकर भगवान् शिव अदृश्य हो गये। यही उपमन्यु ऋषि भगवान् श्रीकृष्ण के दीक्षागुरु थे। उन्होंने श्रीकृष्ण को शैवज्ञान का रहस्य बतलाया था। जिसका विस्तृत वर्णन शिवपुराण की वायवीय संहिता में उपलब्ध होता है। ऐसे अवढरदानी शिव को मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ (शि.पु., वाय.सं., अ. ३४-३५)।

सूक्ष्मागम के क्रियापाद द्वितीय पटल में दक्षिणामूर्ति लीला का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वीतराग भगवान् शिव ने योगियों का उपकार करने के लिये दक्षिणामूर्ति का स्वरूप धारण कर वटवृक्ष के नीचे अपना स्थान बनाया था। उनके हाथ में पुस्तक और जपमाला शोभयमान थी और उनकी दृष्टि केवल पुस्तक और अक्षमाला पर ही टिकी हुई थी। शिव का यह दक्षिणामूर्ति स्वरूप सबको ज्ञान का उपदेश करने के कारण सभी मुनियों के भी गुरु के रूप में मान्य हो गया है (सू. क्रि., द्वि.प., श्लो. ५८-५९)।

इसी प्रकार दक्षिणामूर्ति भगवान् के स्वरूप का वर्णन करते हुए शब्दार्थचिन्तामणि में कहा गया है—

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तूच्छिन्नसंशयाः।।

(श.चि., पृ. ११४६)

अर्थात् यह आश्चर्य है कि वटवृक्ष के मूल पर बैठे हुए गुरु तो युवा हैं, लेकिन उनके शिष्य वृद्ध हैं। इस पर भी गुरु का मौन व्याख्यान हो रहा है, लेकिन शिष्य संशयरहित हो गये।

पूर्वकाल की बात है सनत्कुमार अज्ञानवश अपने को सब योगियों का शिरोमणि मानने लगे थे। इसीलिये दुर्विनीत हो गये थे। यही कारण है कि उन्होंने किसी समय परमेश्वर शिव को सामने देखकर भी उनके लिये उचित

अभ्युत्थान आदि सत्कार नहीं किया। वे अपने स्थान पर निश्चल बैठे रहे। उनके इस अपराध से कुपित हो नन्दी ने उन्हें बहुत बड़ा ऊँट बनने का शाप दे दिया। तब उनके लिये ब्रह्मा को बड़ा शोक हुआ और उन्होंने दीर्घकाल तक महादेव और महादेवी की उपासना करके नन्दी से भी बड़ी अनुनय-विनय की। इस प्रकार प्रयत्न करके किसी तरह ऊँट की योनि से छुटकारा दिलाया और उन्हें पूर्ववत् सनत्कुमार-रूप की प्राप्ति करायी। उस समय महादेव जी ने मुस्कराते हुए अपने गणाध्यक्ष नन्दी से कहा— 'अनघ! सनत्कुमार मुनि ने मेरी अवहेलना करके अपना वैसा अहङ्कार प्रकट किया था, अत: तुम उनको मेरे यथार्थ स्वरूप का उपदेश दो। ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र मूढ़ की भाँति मेरा स्मरण कर रहा है, अत: मैंने ही उसको तुम्हें शिष्य के रूप में दिया है, तुमसे उपदेश पाकर वह मेरे ज्ञान का प्रवर्तक होगा और वही तुम्हारा धर्माध्यक्ष के पद पर अभिषेक करेगा।'

भगवान् महादेव के ऐसा कहने पर समस्त भूतगणों के अध्यक्ष नन्दी ने प्रात:काल मस्तक झुका कर स्वामी की वह आज्ञा शिरोधार्य की। उधर सनत्कुमार भी ब्रह्मा की आज्ञा से इस गणराज नन्दी को प्रसन्न करने के लिये मेरु पर दुष्कर तपस्या कर रहे थे। गणाध्यक्ष नन्दी के समागम से पहले ही ऋषियों को सनत्कुमार से मिलने की आज्ञा ब्रह्मा ने दी, क्योंकि उन पर कृपा करने के लिये नन्दी शीघ्र ही वहाँ जायेंगे।

विश्वयोनि ब्रह्मा के इस प्रकार शीघ्र आदेश देकर भेजने पर वे मुनि मेरु पर्वत के दक्षिणवर्ती कुमार शिखर पर गये। वहाँ मेरु पर्वत पर सागर के समान एक विशाल सरोवर है। जिसका नाम स्कन्द-सर है। उसका जल अमृत के समान स्वादिष्ट, शीतल, स्वच्छ, अगाध और हल्का है। वह सरोवर सब ओर से स्फटिकमणि के शिलाखण्डों द्वारा संघटित है। उस सरोवर के उत्तर तट पर एक कल्पवृक्ष के नीचे हीरे की शिला से बनी हुई वेदि पर कोमल मृगचर्म बिछाकर सदा बालरूपधारी सनत्कुमार जी बैठे थे। वे अपनी अविचल समाधि से उसी समय उपरत हुए थे। उस समय बहुत से ऋषि-मुनि उनकी सेवा में बैठे थे और योगीश्वर भी उनकी पूजा करते थे। नैमिषारण्य के मुनियों ने वहाँ सनत्कुमार जी का दर्शन किया। उनके चरणों में मस्तक झुकाया और उनके आस-पास बैठ गये। सनत्कुमार जी के पूछने पर उन

ऋषियों ने उनसे ज्यों ही आगमन का कारण बताना आरम्भ किया, त्यों ही आकाश में दुन्दुभियों का तुमुल नाद सुनायी दिया। उसी समय सूर्य के समान तेजस्वी एक विमान दृष्टिगोचर हुआ, जो असंख्य गणेश्वरों द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ था। वहाँ मृदङ्ग, ढोल और वीणा की ध्वनि गूँज रही थी। उस विमान में विचित्र रत्नजडित चाँदोला तना था और मोतियों की लड़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। बहुत से मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, चारण और किन्नर नाचते, गाते और बाजे बजाते हुए उस विमान को सब ओर से घेर कर चल रहे थे, उसमें वृषभचिह्न से युक्त और मूँगे के दण्ड से विभूषित ध्वजा-पताका फहरा रही थी, जो उसके गोपुर की शोभा बढ़ाती थी। उस विमान के मध्य भाग में दो चँवरों के बीच चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मणिमय दण्डवाले शुद्ध छत्र के नीचे दिव्य सिंहासन पर शिलादपुत्र नन्दी देवी सुयशा के साथ बैठे थे। वे अपनी कान्ति से, शरीर से तथा तीनों नेत्रों से बड़ी शोभा पा रहे थे।

भगवान् शंकर को आवश्यक कार्यों की सूचना देने वाले वे नन्दी मानों जगत्स्रष्टा शिव के अलङ्घनीय आदेश का मूर्तिमान् स्वरूप होकर वहाँ आये थे, अथवा उनके रूप में मानों साक्षात् शम्भु का सम्पूर्ण अनुग्रह ही साकाररूप धारण कर वहाँ सबके सामने उपस्थित हुआ था। शोभाशाली श्रेष्ठ त्रिशूल ही उनका आयुध है। वे विश्वेश्वर गणों के अध्यक्ष हैं और दूसरे विश्वनाथ की भाँति शक्तिशाली हैं। उनमें विश्वस्रष्टा विधाताओं का भी निग्रह और अनुग्रह करने की शक्ति है। उनकी चार भुजाएँ हैं। अङ्ग-अङ्ग से उदारता सूचित होती है, वे चन्द्रलेखा से विभूषित हैं। कण्ठ में नाग और मस्तक पर चन्द्रमा उनके अलङ्कार हैं। वे साकार ऐश्वर्य और सक्रिय सामर्थ्य के स्वरूप से जान पड़ते हैं।

उन्हें देखकर ऋषियों सहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। वे दोनों हाथ जोड़कर उठे और उन्हें आत्म-समर्पण सा करते हुए खड़े हो गये। इतने में ही वह विमान धरती पर आ गया, सनत्कुमार ने देव नन्दी को साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनकी स्तुति की और मुनियों का परिचय देते हुए कहा— 'ये छः कुलों में उत्पन्न ऋषि हैं, जो नैमिषारण्य में दीर्घकाल से सत्र का अनुष्ठान करते थे। ब्रह्मा जी के आदेश से आपका दर्शन करने के

लिये ये लोग पहले से ही यहाँ आये हुए हैं।' ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार का यह कथन सुनकर नन्दी ने दृष्टिपात मात्र से उन सबके पाशों को तत्काल काट डाला और ईश्वरीय शैवधर्म एवं ज्ञानयोग का उपदेश देकर वे फिर महादेव जी के पास चले गये (शि.पु., वाय.सं., अ. ४०-४१)।

यह शैवधर्म एवं ज्ञानयोग का उपदेश शिवपार्वती-संवाद एवं उपमन्यु श्रीकृष्णसंवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। एक समय देवी पार्वती ने भगवान् शिव से पूछा— 'महादेव! जो आत्मतत्त्व आदि के साधन में नहीं लगे हैं तथा जिनका अन्तःकरण पवित्र एवं वशीभूत नहीं है, ऐसे मन्दमति मर्त्यलोकवासी जीवात्माओं के वश में आप किस उपाय से हो सकते हैं?

महादेव जी बोले— देवि! यदि साधक के मन में श्रद्धा-भक्ति न हो, तो पूजनकर्म, तपस्या, जप, आसन आदि ज्ञान तथा अन्य साधनों से भी मैं उसके वशीभूत नहीं होता हूँ। यदि मनुष्यों की मुझमें श्रद्धा हो, तो जिस किसी भी हेतु से मैं उसके वश में हो जाता हूँ। फिर तो वह मेरा दर्शन, स्पर्श, पूजन एवं मेरे साथ सम्भाषण भी कर सकता है। अतः जो मुझे वश में करना चाहे, उसे पहले मेरे प्रति श्रद्धा करनी चाहिये। श्रद्धा ही स्वधर्म का हेतु है और वही इस लोक में वर्णाश्रमी-धर्म के पालन में लगा रहता है, उसी की मुझमें श्रद्धा होती है, दूसरे की नहीं। वर्णाश्रमी पुरुषों के सम्पूर्ण धर्म वेदों से सिद्ध हैं। पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने मेरी ही आज्ञा से उनका वर्णन किया था। ब्रह्मा जी का बतलाया हुआ वह धर्म अधिक धन के द्वारा साध्य है तथा अनेक प्रकार के क्रियाकलाप से युक्त होता है। उससे मिलने वाला अधिकांश फल अक्षय नहीं है तथा उस धर्म के अनुष्ठान में अनेक प्रकार के क्लेश और आयास उठाने पड़ते हैं। उस महान् धर्म से परम दुर्लभ श्रद्धा को पाकर जो वर्णाश्रमी मनुष्य अनन्य भाव से मेरी शरण में आ जाते हैं, उन्हें सुखद मार्ग से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं।

वर्णाश्रम-सम्बन्धी आचार की सृष्टि मैंने ही बारंबार की है। उसमें भक्तिभाव रखकर जो मेरे हो गये हैं, उन्हीं वर्णाश्रमियों का मेरी उपासना में अधिकार है, दूसरों का नहीं, यह मेरी निश्चित आज्ञा है। मेरी आज्ञा के अनुसार धर्ममार्ग से चलने वाले वर्णाश्रमी पुरुष मेरी शरण में आकर मेरे कृपाप्रसाद से मल और माया आदि पाशों से मुक्त हो जाते हैं तथा मेरे

पुनरावृत्तिरहित धाम में पहुँच कर मेरा उत्तम साधर्म्य प्राप्त करके परमानन्द में निमग्न हो जाते हैं। इसलिये मेरे बतलाये हुए वर्णाश्रमधर्म को पाकर अथवा न पाकर भी जो मेरी शरण ले मेरा भक्त बन जाता है, वह स्वयं ही अपनी आत्मा का उद्धार कर लेता है। यह कोटि-कोटि गुना अधिक अलभ्यलाभ है। अत: मेरे मुख से प्रतिपादित वर्णाश्रम-धर्म का पालन अवश्य करना चाहिये।

जो मोक्षमार्ग से विलग होकर दूसरी किसी वस्तु के लिये श्रम करता है, उसके लिये वही सबसे बड़ी हानि है, वही बड़ी भारी भूल है, वही मोह है और वही अन्धता एवं मूकता है। यथा—

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सान्धमूकता।
यदन्यत्र श्रमं कुर्यान्मोक्षमार्गबहिष्कृतः।।

(शि.पु., वा.सं., उ.खं., १०-२९)

देवेश्वरि! मोक्ष जो सनातनधर्म है, वह चार चरणों से युक्त बताया गया है। उन चरणों के नाम हैं— ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग। पशु, पाश और पति का ज्ञान ही **ज्ञान** कहलाता है। गुरु के अधीन जो विधिपूर्वक षडध्व-शोधन का कार्य होता है, उसे **क्रिया** कहते हैं। मेरे द्वारा विहित वर्णाश्रमप्रयुक्त जो मेरे पूजन आदि धर्म हैं, उनके आचरण का नाम **चर्या** है। मेरे बतलाये हुए मार्ग से ही मुझमें सुस्थिरभाव से चित्त लगाने वाले साधक के द्वारा जो अन्त:करण की अन्य वृत्तियों का निरोध किया जाता है, उसी को **योग** कहते हैं। देवि! चित्त को निर्मल एवं प्रसन्न बनाना अश्वमेध यज्ञ के समूह से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि वह मुक्ति देने वाला है। विषयभोग की इच्छा रखने वाले लोगों के लिये यह 'मन:प्रसाद' दुर्लभ है। जिसने यम और नियम के द्वारा इन्द्रियसमुदाय पर विजय प्राप्त कर लिया है, उस विरक्त पुरुष के लिये ही योग को सुलभ बतलाया गया है। योग पूर्व पापों को हर लेने वाला है। वैराग्य से ज्ञान होता है और ज्ञान से योग। योगज पुरुष पतित हो, तो भी मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

सब प्राणियों पर दया करनी चाहिये। सदा अहिंसा धर्म का पालन सबके लिये उचित है। ज्ञान का संग्रह भी आवश्यक है। सत्य बोलना, चोरी से दूर रहना, ईश्वर और परलोक पर विश्वास रखना, मुझमें श्रद्धा करना, इन्द्रियों को संयम में रखना, वेद-शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-

कराना, मेरा चिन्तन करना, ईश्वर के प्रति अनुराग रखना और सदा ज्ञानशील होना ब्राह्मण के लिये नितान्त आवश्यक है। जो ब्राह्मण ज्ञानयोग की सिद्धि के लिये सदा इस प्रकार उपुर्यक्त धर्मों का पालन करता है, वह शीघ्र ही विज्ञान पाकर योग को भी सिद्ध कर लेता है। प्रिये! ज्ञानी पुरुष ज्ञानाग्नि के द्वारा इस कर्ममय शरीर को क्षणभर में दग्ध करके मेरे प्रसाद से योग का ज्ञाता होकर कर्मबन्धन से छुटकारा पा जाता है। पुण्य-पापमय जो कर्म है, उसे मोक्ष का प्रतिबन्धक बतलाया गया है। इसलिये योगी पुरुष योग के द्वारा पुण्यापुण्य का परित्याग कर दे। फल की कामना से प्रेरित होकर कर्म करने से ही मनुष्य बन्धन में पड़ता है, केवल कर्म करने मात्र से नहीं। अत: कर्म के फल का त्याग कर देना चाहिये।

प्रिये! पहले कर्ममय यज्ञ द्वारा बाहर मेरी पूजा करके फिर ज्ञानयोग में तत्पर होकर साधक योग का अभ्यास करे। कर्मयज्ञ से मेरे यथार्थ स्वरूप का बोध प्राप्त हो जाने पर जीव योगयुक्त हो मेरे यजन से विरत हो जाते हैं। जो मेरा भक्त नित्ययुक्त एवं एकाग्रचित्त हो ज्ञानयोग में तत्पर रहता है, वह मुनियों में श्रेष्ठ एवं योगी होकर मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो वर्णाश्रमी पुरुष मन से विरक्त नहीं हैं, वे मेरा आश्रय ले ज्ञान, चर्या और क्रिया— इन तीन में ही प्रवृत्त होने के अधिकारी हैं, उन्हीं के अनुष्ठान की योग्यता रखते हैं। मेरा पूजन दो प्रकार का है— बाह्य और आभ्यन्तर। इसी तरह मन, वाणी और शरीर— इन त्रिविध साधनों के भेद से मेरा भजन तीन प्रकार का माना गया है। तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान— ये मेरे भजन के पाँच स्वरूप हैं। अत: साधुपुरुष उसे पाँच प्रकार का भी कहते हैं। मूर्ति आदि में जो मेरा पूजन होता है, जिसे दूसरे लोग जान लेते हैं, वह **'बाह्य'** पूजन या भजन कहा गया है तथा वही भजन-पूजन जब मन के द्वारा होने से केवल अपने ही अनुभव का विषय होता है, तब **'आभ्यन्तर'** कहलाता है।

मुझमें लगा हुआ चित्त ही **'मन'** कहलाता है। सामान्यत: मन मात्र को यहाँ मन नहीं कहा गया है। इसी तरह जो वाणी मेरे नाम के जप और कीर्तन में लगी हुई है, वही **'वाणी'** कहलाने योग्य है, दूसरी नहीं तथा जो मेरे शास्त्र में बतलाये हुए त्रिपुण्ड्र आदि चित्रों से अङ्कित है और निरन्तर मेरी सेवा-पूजा में लगा हुआ है, वही शरीर **'शरीर'** है, दूसरा नहीं। मेरी पूजा

को ही 'कर्म' जानना चाहिये। बाहर जो यज्ञ आदि किये जाते हैं, उन्हें 'कर्म' नहीं कहा गया है। मेरे लिये शरीर को सुखाना ही तप है, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि का अनुष्ठान नहीं। पञ्चाक्षर-मन्त्र की आवृत्ति, प्रणव का अभ्यास तथा रुद्राध्याय आदि का बारंबार पाठ ही यहाँ **'जप'** कहा गया है, वेदाध्ययन आदि नहीं। मेरे स्वरूप का चिन्तन-स्मरण ही **'ध्यान'** है, आत्मा आदि के लिये की हुई समाधि नहीं। मेरे आगमों के अर्थ को भली-भाँति जानना ही **'ज्ञान'** है, दूसरी किसी वस्तु के अर्थ को समझना नहीं।

देवि! पूर्ववासनावश बाह्य अथवा आभ्यन्तर जिस पूजन में मन का अनुराग हो, उसी में दृढ़ निष्ठा रखनी चाहिये। बाह्य पूजन से आभ्यन्तर पूजन सौ गुना अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें दोषों का मिश्रण नहीं होता। तथा प्रत्यक्ष दीखने वाले दोषों की सम्भावना भी वहाँ नहीं रहती। भीतर की शुद्धि को ही शुद्धि समझनी चाहिये, बाहरी शुद्धि को शुद्धि नहीं कहते हैं। जो आन्तरिक शुद्धि से रहित हैं, वे बाहर से शुद्ध होने पर भी अशुद्ध ही हैं। देवि! बाह्य और आभ्यन्तर दोनों ही प्रकार का भजन भाव (अनुराग) पूर्वक ही होना चाहिये, बिना भाव के नहीं। भावरहित भजन तो एकमात्र विप्रलम्भ (छलना) का ही कारण होता है। मैं तो सदा ही कृतकृत्य एवं पवित्र हूँ, मनुष्य मेरा क्या करेंगे? उनके द्वारा किये गये बाह्य अथवा आभ्यन्तर पूजन में उनका जो भाव है, उसी को मैं ग्रहण करता हूँ। देवि! क्रिया का एकमात्र आत्मा भाव ही है। वही मेरा सनातन धर्म है।

मन, वाणी और कर्म द्वारा कहीं भी किञ्चिन्मात्र फल की इच्छा न रखकर ही क्रिया करनी चाहिये। देवेश्वरि! फल का उद्देश्य रखने से मेरा आश्रय लघु हो जाता है; क्योंकि फलार्थी को यदि फल न मिला, तो वह मुझे छोड़ सकता है। सती साध्वी देवि! फलार्थी होने पर भी जिस साधक का चित्त मुझ में ही प्रतिष्ठित है, उसे उसके भाव के अनुसार फल मैं अवश्य देता हूँ। जिनका मन फल की इच्छा न रखकर ही मुझमें लगा हो, परन्तु पीछे वे फल चाहने लगे हों, वे भक्त भी मुझे प्रिय हैं। जो पूर्वसंस्कार वश ही फलाफल की चिन्ता न करके विवश हो मेरी शरण लेते हैं, वे भक्त मुझे अधिक प्रिय हैं। परमेश्वरि! उन भक्तों के लिये मेरी प्राप्ति से बढ़कर दूसरा कोई वास्तविक लाभ नहीं है तथा मेरे लिये भी वैसे भक्तों की प्राप्ति से

बढ़कर और कोई लाभ नहीं है। मुझमें समर्पित हुआ उनका भाव मेरे अनुग्रह से उनको मानो बलपूर्वक परम निर्वाणरूप फल प्रदान करता है।

जिन्होंने अपने चित्त को मुझे समर्पित कर दिया है, अत एव जो मेरे अनन्य भक्त हैं, वे महात्मा पुरुष ही मेरे धर्म के अधिकारी हैं। उनके आठ लक्षण बतलाये गये हैं। मेरे भक्तजनों के प्रति स्नेह, मेरी पूजा का अनुमोदन, स्वयं की भी मेरे पूजन में प्रवृत्ति, मेरे लिये ही शारीरिक चेष्टाओं का होना, मेरी कथा सुनने में भक्तिभाव, कथा सुनते समय स्वर, नेत्र और अङ्गों में विकार का होना, बारंबार मेरी स्तुति और सदा मेरे आश्रित रहकर ही जीवन-निर्वाह करना— ये आठ प्रकार के चिह्न यदि किसी निम्न वर्ण के व्यक्ति में भी हों, तो वह विप्रशिरोमणि श्रीमान् मुनि है। वह संन्यासी है और वही पंडित है। जो मेरा भक्त नहीं है, वह चारों वेदों का विद्वान् हो, तो भी मुझे प्रिय नहीं है। परन्तु जो मेरा भक्त है, वह चाण्डाल हो, तो भी प्रिय है। उसे उपहार देना चाहिये तथा वह मेरे समान ही पूजनीय है। जो भक्ति-भाव से मुझे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल समर्पित करता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरी दृष्टि से भी कभी ओझल नहीं होता—

न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचोऽपि यः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्।।
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

(शि.पु., वा.सं., उ.खं., १०.७१-७२)

इसके बाद भगवान् महादेव ने वर्णाश्रम-धर्म तथा नारी-धर्म का वर्णन कर शिव के भजन, चिन्तन एवं ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन किया। इस प्रकार परमात्मा श्रीकण्ठनाथ शिव ने तीनों लोकों के हित के लिये ज्ञान के सारभूत अर्थ का संग्रह प्रकट किया है। सम्पूर्ण वेदशास्त्र, इतिहास, पुराण और विद्याएँ इस विज्ञानसंग्रह की ही विस्तृत व्याख्याएँ हैं। ज्ञान, ज्ञेय, अनुष्ठेय, अधिकार, साधन और साध्य— इन छः अर्थों का ही संक्षिप्त संग्रह बतलाया गया है। जो शिव और शिवसम्बन्धी ज्ञानामृत से तृप्त हैं और उनकी भक्ति से सम्पन्न हैं, उनके लिये बाहर-भीतर कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है। इसलिये क्रमशः बाह्य और आभ्यन्तर कर्म को त्यागकर ज्ञान से ज्ञेय का

साक्षात्कार करके फिर उस साधनभूत ज्ञान को त्याग दे। यदि चित्त शिव में एकाग्र नहीं है, तो कर्म करने से भी क्या लाभ? और यदि चित्त एकाग्र है, तो कर्म करने की भी क्या आवश्यकता है? अत: बाहर और भीतर के कर्म करके या न करके जिस किसी भी उपाय से भगवान् शिव में चित्त लगाना चाहिये। जिनका चित्त भगवान् शिव में लगा है और जिनकी बुद्धि सुस्थिर है, ऐसे सत्पुरुषों को इहलोक और परलोक में भी सर्वत्र परमानन्द की प्राप्ति होती है। **'ॐ नमः शिवाय'** इस मन्त्र के अनुष्ठान से सब सिद्धियाँ सुलभ होती हैं, अत: परावर विभूति (उत्तम-मध्यम ऐश्वर्य) की प्राप्ति के लिये इस मन्त्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

पञ्चाक्षर मन्त्र के माहात्म्य का विस्तारपूर्वक वर्णन तो सौ करोड़ वर्षों में भी नहीं किया जा सकता, अत: संक्षेप में इसकी महिमा सुनें। वेद तथा शैवागम में यह षडक्षर (प्रणवसहित पञ्चाक्षर) मन्त्र समस्त शिवभक्तों के सम्पूर्ण अर्थ का साधक कहा गया है। इस मन्त्र में अक्षर तो थोड़े ही हैं, परन्तु यह महान् अर्थ से सम्पन्न है। यह वेद का सारतत्त्व है। मोक्ष देने वाला है, शिव की आज्ञा से सिद्ध है, सन्देह-शून्य है तथा शिवस्वरूप वाक्य है। यह नाना प्रकार की सिद्धियों से युक्त दिव्य, लोगों के मन को प्रसन्न एवं निर्मल करने वाला, सुनिश्चित अर्थवाला (अथवा निश्चय ही मनोरथ को पूर्ण करने वाला) तथा परमेश्वर का गम्भीर वचन है। इस मन्त्र का मुख से सुखपूर्वक उच्चारण होता है। सर्वज्ञ शिव ने सम्पूर्ण देहधारियों के सारे मनोरथों की सिद्धि के लिये इस **'ॐ नमः शिवाय'** मन्त्र का प्रतिपादन किया है। यह आदि षडक्षर मन्त्र सम्पूर्ण विद्याओं (मन्त्रों) का बीज (मूल) है। जैसे वट के बीज में महान् वृक्ष छिपा हुआ है, उसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म होने पर भी इस मन्त्र को महान् अर्थ से परिपूर्ण समझना चाहिये।

'ॐ' इस एकाक्षर-मन्त्र में तीनों गुणों से अतीत, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, द्युतिमान्, सर्वव्यापी प्रभु शिव प्रतिष्ठित हैं। ईशान आदि जो सूक्ष्म एकाक्षररूप ब्रह्म हैं, वे सब **'नमः शिवाय'** इस मन्त्र में क्रमशः स्थित हैं। सूक्ष्म षडक्षर मन्त्र में पञ्चब्रह्मरूपधारी साक्षात् भगवान् शिव स्वभावतः वाच्य-वाचक भाव से विराजमान हैं। अप्रमेय होने के कारण शिव वाच्य हैं और मन्त्र उनका वाचक माना गया है। शिव और मन्त्र का यह वाच्य-वाचक भाव

अनादि काल से चला आ रहा है। जैसे यह घोर संसार-सागर अनादि काल से प्रवृत्त है, उसी प्रकार संसार से छुड़ाने वाले भगवान् शिव भी अनादि काल से ही नित्य विराजमान हैं। जैसे औषध रोगों का स्वभावत: शत्रु है, उसी प्रकार भगवान् शिव संसार-दोषों के स्वाभाविक शत्रु माने गये हैं। यदि ये भगवान् विश्वनाथ न होते, तो यह जगत् अन्धकारमय हो जाता; क्योंकि प्रकृति जड़ है और जीवात्मा अज्ञानी। अत: उन्हें प्रकाश देने वाले परमात्मा ही हैं। प्रकृति से लेकर परमाणु-पर्यन्त जो कुछ भी जड़रूप तत्त्व हैं, वे किसी बुद्धिमान् (चेतन) कारण के बिना स्वयं **'कर्ता'** नहीं देखे गये हैं। जीवों के लिये धर्म करने और अधर्म से बचने का उपदेश दिया जाता है। उनके बन्धन और मोक्ष भी देखे जाते हैं। अत: विचार करने से सर्वज्ञ परमात्मा शिव के बिना प्राणियों के आदि सर्ग की सिद्धि नहीं होती। जैसे रोगी वैद्य के बिना सुख से रहित होकर क्लेश उठाते हैं, उसी प्रकार सर्वज्ञ शिव का आश्रय न लेने से संसारी जीव नाना प्रकार के क्लेश भोगते हैं।

अत: यह सिद्ध हुआ कि जीवों का संसार-सागर से उद्धार करने वाले स्वामी अनादि सर्वज्ञ परिपूर्ण सदाशिव विद्यमान हैं। वे प्रभु आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं। स्वभाव से ही निर्मल हैं तथा सर्वज्ञ एवं परिपूर्ण हैं। उन्हें शिव नाम से जानना चाहिये। शिवागम में उनके स्वरूप का विशद रूप से वर्णन है। यह पञ्चाक्षर मन्त्र उनका अभिधान (वाचक) है और वे शिव अभिधेय (वाच्य) हैं। अभिधान और अभिधेय (वाचक और वाच्य) रूप होने के कारण परम शिवस्वरूप यह मन्त्र **'सिद्ध'** माना गया है। **'ॐ नमः शिवाय'** यह जो षडक्षर शिववाक्य है, इतना ही शिवज्ञान है और इतना ही परमपद है। यह शिव का विधिवाक्य है, अर्थवाद नहीं। यह उन्हीं शिव का स्वरूप है, जो सर्वज्ञ, परिपूर्ण और स्वभावत: निर्मल हैं।

जो समस्त लोकों पर अनुग्रह करने वाले हैं, वे भगवान् शिव झूठी बात कैसे कह सकते हैं? जो सर्वज्ञ हैं, वे तो मन्त्र में जितना फल मिल सकता है, उतना पूरा का पूरा बतलायेंगे। परन्तु जो राग और अज्ञान आदि दोषों से ग्रस्त हैं, वे ही झूठी बात कह सकते हैं। वे राग और अज्ञान आदि दोष ईश्वर में नहीं हैं, अत: ईश्वर कैसे झूठ बोल सकता है? जिनका सम्पूर्ण दोषों से कभी परिचय हीं नहीं हुआ, उन सर्वज्ञ शिव ने जिस निर्मल वाक्य— पञ्चाक्षर मन्त्र का प्रणयन किया है, वह प्रमाणभूत ही है, इसमें संशय नहीं है।

इसलिये विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह ईश्वर के वचनों पर श्रद्धा करे। यथार्थ पुण्य-पाप के विषय में ईश्वर के वचनों पर श्रद्धा न करने वाला पुरुष नरक में जाता है। शान्त स्वभाव वाले श्रेष्ठ मुनियों ने स्वर्ग और मोक्ष की सिद्धि के लिये जो सुन्दर बात कही है, उसे सुभाषित समझना चाहिये। जो वाक्य राग, द्वेष, असत्य, काम, क्रोध और तृष्णा का अनुसरण करने वाला हो, वह नरक का हेतु होने के कारण दुर्भाषित कहलाता है—

रागद्वेषानृतक्रोधकामतृष्णानुसारि यत्।
वाक्यं निरयहेतुत्वात् तद् दुर्भाषितमुच्यते।।

(शि.पु., वा.सं., उ.खं., १२.२७)

अविद्या एवं राग से युक्त वाक्य जन्म-मरणरूप संसार-क्लेश की प्राप्ति में कारण होता है, अतः वह कोमल, ललित अथवा संस्कृत (संस्कारयुक्त) हो, तो भी उससे क्या लाभ? जिसे सुनकर कल्याण की प्राप्ति हो तथा जिससे राग आदि दोषों का नाश हो जाय, वह वाक्य सुन्दर शब्दांवली से युक्त न हो, तो भी शोभन तथा समझने योग्य है। मन्त्रों की संरचना बहुत होने पर भी विमल षडक्षर-मन्त्र का निर्माण सर्वज्ञ शिव ने किया है, उसके समान कहीं कोई दूसरा मन्त्र नहीं है।

षडक्षर-मन्त्र में छहों अङ्गों सहित सम्पूर्ण वेद और शास्त्र विद्यमान हैं; अतः उसके समान दूसरा कोई मन्त्र कहीं नहीं है। सात करोड़ महामन्त्रों और अनेकानेक उपमन्त्रों से यह षडक्षर-मन्त्र उसी प्रकार भिन्न है, जैसे वृत्ति से सूत्र। जितने शिवज्ञान हैं और जो विद्यास्थान हैं, वे सब षडक्षर-मन्त्ररूपी सूत्र के संक्षिप्त भाष्य हैं। जिसके हृदय में **'ॐ नमः शिवाय'** यह षडक्षर मन्त्र प्रतिष्ठित है, उसे दूसरे बहुसंख्यक मन्त्रों और अनेक विस्तृत शास्त्रों से क्या प्रयोजन है? जिसने **'ॐ नमः शिवाय'** इस मन्त्र का जप दृढ़तापूर्वक अपना लिया है, उसने सम्पूर्ण शास्त्र पढ़ लिया और समस्त शुभ कृत्यों का अनुष्ठान पूरा कर लिया। आदि में **'नमः'** पद युक्त **'शिवाय'**— ये तीन अक्षर जिसकी जिह्वा के अग्रभाग में विद्यमान हैं, उसका जीवन सफल हो गया। पञ्चाक्षर मन्त्र के जप में लगा हुआ पुरुष यदि पण्डित, मूर्ख, अन्त्यज अथवा अधम भी हो, तो वह पापपञ्जर से मुक्त हो जाता है—

नमस्कारादिसंयुक्तं शिवायेत्यक्षरत्रयम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम्।।

अन्त्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।
पञ्चाक्षरजपे निष्ठो मुच्यते पापपञ्जरात्।।

(शि.पु., वा.सं., उ.खं., १२.३६-३७)

इस प्रकार देवी पार्वती के पूछने पर परमेश भगवान् शूली ने सम्पूर्ण मर्त्य प्राणियों के कल्याण के लिये विशेषरूप से सनक, सनन्दन आदि द्विजों के लिये इस परम गुह्य शिवज्ञान का उपदेश किया था।

श्री शिव का एक बृहत् परम कल्याणकारी कार्य इस विश्व में जगद्गुरु के रूप में नाना प्रकार की विद्या, योग, ज्ञान, भक्ति आदि का प्रचार करना है, जो बिना उनकी कृपा के यथार्थ रूप में प्राप्त नहीं हो सकता। श्री शिव केवल जगद्गुरु ही नहीं हैं, किन्तु अपने कार्य-कलाप, आहार-विहार और संयम-नियम आदि के द्वारा जीवन्मुक्त के लिये आदर्श हैं। लिङ्गपुराण के अध्याय ७ और शिवपुराण की वायवीयसंहिता पूर्व-भाग के अध्याय २२ में शिव के योगाचार्य होने का और उनके शिष्य-प्रशिष्यों का विशद वर्णन है। शिवपुराण का कथन है— प्रतियुग के आरम्भ में श्रीशिव योगाचार्य के रूप में अवतीर्ण होकर शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते हैं। चार बड़े ऋषियों ने इस (योगशास्त्र) का संक्षेप में वर्णन किया। उनके नाम रुरु, दधीचि, अगस्त्य और महायशा उपमन्यु हैं। ये पशुपति के उपासक और पाशुपत संहिता के प्रवर्तक हैं। इनके वंश में सैकड़ों हजारों गुरु उत्पन्न हुए। शिवपुराण की वायवीय संहिता के उत्तर-भाग के ९वें अध्याय में इन योगाचार्यों और उनके शिष्य-प्रशिष्यों का सविस्तर वर्णन है और उनके नाम भी वहाँ दिये गये हैं। प्रथम २८ योगाचार्य हुए। इन अट्ठाईस के चार-चार शिष्य हुए, जिनकी संख्या २८×४=११२ हुई। इनमें सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, कुथुमि, मित्रक आदि का भी नाम है। लिखा है कि संसार की मङ्गल-कामना ही इनका व्रत है। इस अध्याय के अन्त का निम्न श्लोक बड़े महत्त्व का है, वह इस प्रकार है—

सदेशिकानिमान् मत्वा नित्यं यः शिवमर्चयेत्।
स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा।।

(शि.पु., वा.सं., उ.मा., ९.१२)

अर्थात् जो इनको अपना सद्गुरु मानकर शिव की उपासना और ध्यान करता है, वह अनायास शिव की साक्षात् प्राप्ति करता है, इसमें कोई सन्देह

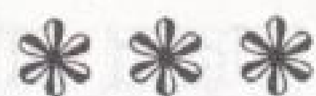
नहीं। ऊपर के वाक्यों से यह सिद्ध है कि ये सद्‌गुरु इस समय भी वर्तमान रहकर योग्य साधकों को अदृश्य अथवा दृश्य-भाव से सहायता कर इष्टोन्मुख और शिवोन्मुख करते हैं। साधक इनमें से किसी एक का अपने सद्‌गुरु के रूप में वरण करके साधना कर अवश्य इष्टलाभ करता है। इन सद्‌गुरुओं में से किसी एक को सद्‌गुरु के रूप में वरण किये बिना कोई अपने इष्ट की उपासना में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। भाव यह है कि जगद्‌गुरु श्रीशिव की इच्छानुसार उनके पुत्र की भाँति ये योगाचार्य और उनके शिष्य-प्रशिष्यगण ज्ञान, योग, भक्ति आदि के प्रचार में सदा प्रवृत्त रहते हैं और योग्य साधकों को अदृश्यभाव से सहायता करते हैं। हमलोगों में जब कभी सद्‌वृत्ति, सद्विचार, सद्‌ज्ञान का अनुसन्धान आदि सद्‌भाव और सद्‌गुण प्राप्त होते हैं अथवा भविष्य में क्रमशः होंगे, वे सब उन्हीं सद्‌गुरुओं की कृपा का फल है। अत एव इसकी असीम कृपा पर दृढ़ विश्वास रखकर तथा इनके प्रत्यक्ष न होने पर भी इनको सद्‌गुरु मानकर इनमें भक्ति और श्रद्धा करनी चाहिये एवं इनका स्मरण भी करना चाहिये। ऐसा करने पर वे विशेष सहायता कर सकेंगे और यदि साधक पर शिव की कृपा हुई, तो प्रत्यक्ष भाव से अन्त में उपदेश भी करेंगे। भगवान् शिव के दक्षिणामूर्तिस्वरूप का यही रहस्य है।

मायावरम् में कावेरी नदी के उत्तर में दक्षिणामूर्ति शिव का प्रसिद्ध मन्दिर है। चिदम्बरम् से मायावरम् तेईस मील दूर है। यह नगर देवनदी कावेरी के तट पर बसा हुआ है। यहाँ भगवान् शंकर आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। मन्दिर विशाल और स्थापत्यकला का बड़ा सुन्दर प्रतीक है। कहा जाता है कि नन्दीश्वर को यहीं पर भगवान् शंकर ने ज्ञानोपदेश किया था। इसी कारण भगवान् शिव यहाँ आचार्यरूप में प्रतिष्ठित हैं।

अन्त में दक्षिणामूर्ति स्वरूप का ध्यान करते हुए हम इस लीला कथा को विराम देते हैं—

प्रोद्यच्छास्त्रमहावटद्रुमतटे योगासनस्थं प्रभुं
प्रत्यक्तत्त्वबुभुत्सुभिः प्रतिदिशं प्रोद्वीक्ष्यमाणाननम्।
मुद्रां तर्कमयीं दधानममलं कर्पूरगौरं शिवं
हृद्यन्तः कलये स्फुरन्तमनिशं श्रीदक्षिणामूर्तिकम्।।

(श. चि., पृ. ११४६)



९. कङ्कालधारण लीला

एकार्णव के जल में पृथ्वी के विलीन हो जाने पर विद्याशक्ति से सम्पन्न भगवान् विष्णु योगनिद्रा का आश्रय लेकर शेषनाग पर शयन कर रहे थे। प्रभु की नाभि से सहस्रदल कमल प्रकट हुआ। उस कमल पर सम्पूर्ण लोकों के पितामह, लोकस्रष्टा सिन्दूरारुण भगवान् हिरण्यगर्भ प्रकट हुए। परम तेजस्वी ब्रह्मा ने दृष्टिपात किया, तो चतुर्दिक् जल-ही-जल दिखायी दिया। जिस पद्मपत्र पर लोकस्रष्टा ब्रह्मा बैठे थे, उस पर क्षीरोदधिशायी श्रीनारायण की प्रेरणा से पहल से ही रजोगुण और तमोगुण की प्रतीक जल की दो बूँदें पड़ी थीं। उनमें से एक बूँद पर आदि अन्त से रहित श्रीभगवान् की दृष्टि पड़ी, तो वह तमोमय **'मधु'** नामक दैत्य के रूप में परिणत हो गयी। वह दैत्य मधु के रंग का अत्यन्त सुन्दर था। जल की दूसरी बूँद भगवान् की इच्छा के अनुसार दूसरे अत्यन्त शक्तिशाली एवं पराक्रमी दैत्य के रूप में व्यक्त हुई। उसका नाम **'कैटभ'** पड़ा। दोनों ही दैत्य अत्यन्त वीर और बलवान् थे।

वे दैत्यद्वय कमलनाल के सहारे वहाँ पहुँच गये, जहाँ अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मा बैठे हुए थे। लोक-पितामह सृष्टि-रचना में प्रवृत्त थे और उनके समीप ही अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण किये हुए चारों वेद थे। उन महाबली एवं महाकाय दैत्यों की दृष्टि ज्यों ही वेदों पर पड़ी, त्यों ही उन्होंने वेदों का हरण कर लिया। श्रुतियों को लेकर वे पूर्वोत्तर महासागर में प्रविष्ट होकर रसातल में पहुँच गये।

वेद ही मेरे नेत्र हैं, वेद ही मेरी अद्भुत शक्ति हैं, वेद ही मेरे परम आश्रय एवं मेरे उपास्य देव हैं। श्रुतियों को अपने समीप न देखकर विधाता अत्यन्त दुःखी होकर मन-ही-मन विलाप करने लगे। वेदों के नष्ट हो जाने से आज मुझ पर भयानक विपत्ति आ पड़ी है। इस समय कौन मेरा दुःख दूर करेगा? वेदों का उद्धार कौन करेगा? फिर उन्होंने सर्वान्तर्यामी और सर्वसमर्थ आदिदेव से प्रार्थना करते हुए कहा— हे प्रभो! आपका पुत्र मैं शुद्ध सत्त्वमय शरीर से उत्पन्न हुआ हूँ। आप ईश्वर, स्वभाव, स्वयम्भू एवं पुरुषोत्तम

हैं। आपने मुझे वेदरूपी नेत्र से युक्त बनाया है। आपकी ही कृपा से मैं कालातीत हूँ— मुझ पर काल का वश नहीं चलता। मेरे नेत्र रूप वे वेद दानवों द्वारा हर लिये गये हैं। अत: मैं अन्धा-सा हो गया हूँ। प्रभो! निद्रा का त्यागकर जागिये और मुझे मेरे नेत्र वापस कीजिये, क्योंकि मैं आपका प्रिय भक्त हूँ और आप मेरे प्रियतम स्वामी हैं।

हिरण्यगर्भ की यह श्रद्धा-भक्तिपूर्ण करुण स्तुति सुनकर देवदेवेश श्रीनारायण तत्क्षण अपनी निद्रा को त्यागकर जग गये। श्रुतियों का उद्धार करने के लिये वे सर्वात्मा परम प्रभु अत्यन्त सुन्दर एवं कान्तिमान् हयग्रीव के रूप में प्रकट हुए, (स्तुतिवाक्य के अनुसार मत्स्यरूप में प्रकट हुए)। प्रभु की गर्दन और मुखाकृति घोड़े के समान थी। उनका वह परमपवित्र मुखारविन्द वेदों का आश्रय था। तारकखचित स्वर्ग उनका मस्तक था और अंशुमाली की रश्मियों के तुल्य उनके बाल चमक रहे थे। आकाश-पाताल उनके कान, पृथिवी ललाट, गङ्गा और सरस्वती उनके नितम्ब तथा दो सागर उनके भ्रू थे। सूर्य और चन्द्र उनके नेत्र, सन्ध्या नासिका, ओङ्कार संस्कार (आभूषण) और विद्युत् जिह्वा थी। पितर उनके दशन, ब्रह्मलोक ओष्ठ तथा कालरात्रि उनकी ग्रीवा थी।

इस प्रकार अत्यन्त अद्भुत, परम तेजस्वी, अनन्त शक्तिशाली, अतुल पराक्रमी एवं अनुपम बुद्धि-वैभव-सम्पन्न आदि अन्त से रहित भगवान् ने श्री हयग्रीव का रूप धारण कर महासमुद्र में प्रवेश किया और वे रसातल में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सामवेद का सस्वर गान आरम्भ किया। भगवान् की लोकोपकारिणी मधुर ध्वनि रसातल में सर्वत्र फैल गयी। मधु और कैटभ दोनों दैत्यों ने भी जब सामगान का वह चित्ताकर्षक स्वर सुना, तो वेदों को कालपाश में बाँधकर रसातल में फेंक दिया और वे उस मङ्गलकारिणी मधुर ध्वनि की ओर दौड़ पड़े। भगवान् हयग्रीव ने अच्छा अवसर देखा। उन्होंने शीघ्र वेदों को रसातल से निकाल कर ब्रह्मा को दे दिया और महासागर के पूर्वोत्तर भाग में वेदों के आश्रय अपने हयग्रीवरूप की स्थापना कर पुन: पूर्वरूप धारण कर लिया। भगवान् हयग्रीव वहीं रहने लगे।

जब मधु और कैटभ ने देखा कि जहाँ से मधुर ध्वनि आ रही थी, वहाँ तो कुछ भी नहीं है, तब वे पुन: बड़े वेग से रसातल में पहुँचे। वहाँ वेदों को

न पाकर वे अत्यन्त आश्चर्यचकित एवं क्रुद्ध हुए। शत्रु को ढूँढ़ने के लिये वे दोनों दैत्य तत्काल अत्यन्त शीघ्रता से रसातल से ऊपर पहुँचे, तो वहाँ उन्होंने देखा कि महासागर की विशाल लहरों पर चन्द्रमा के तुल्य गौर वर्ण के सुन्दरतम भगवान् श्रीनारायण शेषनाग की शय्या पर अनिरुद्ध-विग्रह में शयन कर रहे हैं।

निश्चय ही इसी ने रसातल से वेदों को चुराया है। दैत्यों ने अट्टहास करते हुए कहा। पर यह है कौन? किसका पुत्र है? यहाँ कैसे आया? और यहाँ सर्पशय्या पर क्यों शयन कर रहा है? मधु-कैटभ ने अत्यन्त कुपित होकर भगवान् श्रीनारायण को जगाया। त्रैलोक्यसुन्दर विष्णु ने नेत्र खोलकर चारों ओर देखा, तो समझ लिया कि ये दैत्य युद्ध करने के लिये कटिबद्ध हैं।

भगवान् उठे और उनका मधु और कैटभ दोनों महान् दैत्यों से भयानक संग्राम छिड़ गया। श्रीविष्णु का उन अत्यन्त पराक्रमी दैत्यों से पाँच सहस्र वर्षों तक केवल बाहुयुद्ध चलता रहा। वे अपनी महान् शक्ति के मद से उन्मत्त तथा श्रीभगवान् की महामाया से मोह में पड़े हुए थे। उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। तब हँसते हुए श्रीहरि ने कहा— 'अबतक मैं कितने ही दैत्यों से युद्ध कर चुका हूँ, किन्तु तुम्हारी तरह शूर-वीर मुझे कोई नहीं मिला। मैं तुमदोनों के युद्ध-कौशल से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुमलोग कोई इच्छित वर माँग लो।'

श्रीभगवान् की वाणी सुनकर अहङ्कार के साथ दैत्यों ने कहा— 'विष्णो! हम तुमसे याचना क्या करें? तुम हमें क्या दोगे? हम तुम्हारी वीरता से अत्यन्त सन्तुष्ट हैं। तुम हमलोगों से कोई वर माँग लो? श्रीभगवान् ने कहा— 'यदि तुम दोनों मुझ पर प्रसन्न हो, तो अब मेरे हाथों से मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है। इस समय दूसरे किसी वर से क्या लेना है?

'हम तो ठगे गये' यह मान कर भगवान् विष्णु की वाणी सुन चकित होकर दैत्यों ने देखा, सर्वत्र जल-ही-जल है। तब उन्होंने श्रीभगवान् से कहा— 'जनार्दन! तुम देवताओं के स्वामी हो। तुम मिथ्या भाषण नहीं करते। पहले तुमने ही हमें वर देने के लिये कहा था। इसलिये तुम भी हमारा अभिलषित वर दे दो। जहाँ पृथ्वी जल में डूबी हुई न हो— जहाँ सूखा स्थान हो, वहाँ हमारा वध करो।'

'महाभाग! जलशून्य स्थान पर ही मैं तुम्हें मार रहा हूँ।' श्रीभगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया और अपनी विशाल जाँघों को जल पर फैला कर मधु-कैटभ को जल पर ही स्थल दिखला दिया और हँसते हुए उन्होंने दैत्यों से कहा— 'इस स्थान पर जल नहीं है, तुमलोग अपना मस्तक रख दो। आज से मैं भी सत्यवादी रहूँगा और तुम भी।'

कुछ देर तक मधु और कैटभ दोनों महादैत्य भगवान् की वाणी की सत्यता पर विचार करते रहे। फिर उन्होंने भगवान् की दोनों सटी हुई विशाल एवं विचित्र जाँघों पर चकित होकर अपना मस्तक रख दिया और श्री भगवान् ने तत्काल अपने तीक्ष्ण चक्र से उन्हें काट डाला। दैत्यों का प्राणान्त हो गया और उनके चार हजार कोस वाले विशाल शरीर के रक्त से सागर का सारा जल लाल हो गया।

इस प्रकार वेदों से सम्मानित और श्रीभगवान् नारायण से सुरक्षित होकर लोकस्रष्टा ब्रह्मा सृष्टि-कार्य में जुट गये (कल्याण पुराणकथाङ्क, पृ. ३१६-३२७)।

इस प्रकार मत्स्य का अवतार लेकर भगवान् विष्णु ने मधु एवं कैटभ नामक दैत्यों का संहार कर वेद की रक्षा की। वह मत्स्य समुद्र में चला गया। वहाँ के जीव-जन्तु उस भयङ्कर मत्स्य को देखकर भयभीत हो गये। समुद्र छोड़-छोड़ कर भागने लगे। उससे सर्वत्र हाहाकार मच गया। ब्रह्मा आदि देवताओं ने भगवान् शंकर से गुहार मचायी। वह मत्स्य समुद्र में बहुत उत्पात मचा रहा है। भगवान् शंकर ने सोचा कि इस मत्स्य के द्वारा समुद्र में उत्पात मचाने से पृथिवी पर बड़ा भारी संकट आने वाला है। चूँकि भगवान् शंकर आशुतोष और अवढरदानी हैं। उन्होंने किञ्चिन्मात्र भी विलम्ब नहीं किया और समुद्र में पहुँच कर क्षणभर में उस मत्स्य की जीवन-लीला समाप्त कर दी। इसके बाद उसके कङ्काल को अपने हाथों में उठा लिया और अपना आभूषण बना लिया। तबसे भगवान् शिव **कङ्कालधारी** कहलाने लगे। भगवान् पशुपति की यह लीला क्रियासार में वर्णित है। ऐसी लीला करने वाले भगवान् आशुतोष हमें सर्वत्र विजयशाली बनावें।

विश्व-कल्याण तथा लोकसंग्रह के लिये परमशिव की निग्रह-अनुग्रहलीला होती रहती है। परमशिव की वह लीला निग्रह दृष्टि से नियन्त्रणपरक है और अनुग्रहदृष्टि से मोक्षपरक। संसार-भाव में व्यवस्था एवं

मर्यादारक्षण के लिये संयमन तथा प्राणियों के परमपुरुषार्थ— मोक्ष के लिये प्रसाद— कृपा की अपेक्षा होती है। सृष्टिकर्ता शिव नियन्त्रण और प्रसाद दोनों भावों से अपनी संवित् शक्ति के साथ निग्रह और अनुग्रह लीला करते हैं।

भगवान् शिव की निग्रह-लीला मत्स्य-वराह-वामन-नृसिंह आदि अवतारों को नियन्त्रित कर पूर्ण होती है। नृसिंहावतार के प्रशमन के लिये भगवान् शिव ने शरभ अवतार ग्रहण किया था। वराह को नियन्त्रित कर उनके दाँतों को आभूषण के रूप में धारण किया था, इसलिये उनका एक नाम दंष्ट्री भी है। लिङ्गपुराण में प्रसङ्ग आता है कि धरा (पृथिवी) का उद्धार करने के लिये भगवान् विष्णु ने वराह का रूपधारण किया था। हिरण्याक्ष का वध कर उन्होंने पृथिवी को स्थापित कर देवताओं को प्रसन्न किया। देवताओं के स्वर्ग चले जाने पर वह वराह रूपधारी भगवान् क्षीरसागर में चले गये, परन्तु उस वराह के दाँतों के भार से पृथिवी पुनः चञ्चल हो गयी, तब वह जगदीश्वर शिव के पास गयी। उन्होंने वराह के दाँतों का आभूषण बनाने के लिये ग्रहण कर लिया। उन्होंने अपनी छाती पर उसे धारण कर लिया। तब से भगवान् शिव **दंष्ट्री** कहलाये।

अथ देवे गते त्यक्त्वा वराहे क्षीरसागरम्।
वराहरूपमनघं चचाल च धरा पुनः।।

तस्य द्रंष्ट्राभराक्रान्ता देवदेवस्य धीमतः।
यदृच्छया भयं पश्यन् जगाम जगदीश्वरः।।

दंष्ट्रां जग्राह दृष्ट्वा तां भूषणार्थमथात्मनः।
दधार च महादेवः कूर्चान्ते वै महोरसि।।

देवाश्च तुष्टुवुः सेन्द्रा देवदेवस्य वैभवम्।
धरा प्रतिष्ठिता ह्येवं देवदेवेन लीलया।।

भूतानां सम्प्लवे चापि विष्णोश्चैव कलेवरम्।
ब्रह्मणश्च तथान्येषां देवानामपि लीलया।।

विभुरङ्गविभागेन भूषितो न यदि प्रभुः।
कथं विमुक्तिर्विप्राणां तस्माद् दंष्ट्री महेश्वरः।।

(लि.पु., पूर्वभाग, ९४-२६-३२)

सूक्ष्मागम के अनुसार त्रिविक्रम वामन को जीतकर भगवान् शंकर ने उनके कङ्काल को धारण कर लिया। त्रिविक्रम भगवान् वामन की कथा कुछ इस प्रकार है—

समुद्रमन्थन से प्राप्त अमृत का पान कर जब देवता अमर होकर बलवान् हो गये, तब पुनः देवासुर संग्राम हुआ। भगवान् शिव की अनुकम्पा से देवता असुरों पर युद्ध में विजयी हुए। पराजित असुर मृत एवं आहतों को लेकर अस्ताचल चले गये। असुरेश्वर बलि इन्द्र के वज्र से मृत हो गये थे। आचार्य शुक्र ने अपनी संजीवनी विद्या से बलि तथा दूसरे असुरों को भी जीवित एवं स्वस्थ कर दिया। बलि ने आचार्य की कृपा से जीवन प्राप्त किया था। वे सच्चे हृदय से आचार्य की सेवा में लग गये। शुक्राचार्य प्रसन्न हुए। उन्होंने यज्ञ कराया। अग्नि से दिया रथ, अक्षय त्राण तथा अमोघ कवच आदि प्रकट हुए।

आसुरी सेना अमरावती पर चढ़ दौड़ी। इन्द्र ने देखते ही समझ लिया कि इस बार देवता इस सेना का सामना नहीं कर सकेंगे। बलि ब्रह्मतेज से पोषित थे। देवगुरु के आदेश से देवता स्वर्ग छोड़कर भाग गये। अमर-धाम असुर-राजधानी बना। शुक्राचार्य ने बलि का इन्द्रत्व स्थिर करने के लिए अश्वमेध-यज्ञ कराना प्रारम्भ किया। सौ अश्वमेध करके बलि नियम-सम्मत इन्द्र बन जायेंगे, फिर उन्हें कौन हटा सकता है?

देवमाता अदिति अत्यन्त दुःखी रहती थीं। अपने पति महर्षि कश्यप से उन्होंने प्रार्थना की— 'स्वामी! मेरे पुत्र मारे-मारे फिरते हैं।' महर्षि तो एक ही उपाय जानते हैं— भगवान् की शरण, उन सर्वात्मा की आराधना। अदिति ने फाल्गुन के शुक्ल पक्ष में बारह दिन पयोव्रत करके भगवान् की आराधना की। प्रभु प्रकट हुए। अदिति को वरदान मिला। उन्हीं के गर्भ से भगवान् प्रकट हुए। शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज पुरुष अदिति के गर्भ से जब प्रकट हुए, तत्काल वामन ब्रह्मचारी बन गये। महर्षि कश्यप ने ऋषियों के साथ उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया। भगवान् वामन पिता से आज्ञा लेकर बलि के यहाँ चले।

नर्मदा के उत्तर-तट पर असुरेन्द्र बलि अश्वमेध-यज्ञ में दीक्षित थे। यह उनका अन्तिम सौवाँ अश्वमेध था। छत्र, पलाश, दण्ड तथा कमण्डलु लिये,

जटाधारी अग्नि के समान तेजस्वी वामन ब्रह्मचारी वहाँ पधारे। बलि, शुक्राचार्य, ऋषिगण— सभी उस तेज से अभिभूत अपनी अग्नियों के साथ उठ खड़े हुए। बलि ने उनके चरण धोये, पूजन किया और प्रार्थना की कि जो भी इच्छा हो, वे माँग लें।

बलि के कुल की शूरता, उदारता की प्रशंसा करते हुए वामन ने कहा— 'हे असुरेन्द्र! मुझे अपने पैरों से तीन पद भूमि चाहिये।' बलि ने बहुत आग्रह किया कि और कुछ माँगा जाय, पर जो माँगना था, वामन ने वही माँगा।

आचार्य शुक्र ने सावधान करते हुए बलि से कहा— ये साक्षात् विष्णु हैं। इनके छल में आने से सर्वस्व चला जायेगा। तदनन्तर बलि ने कहा— 'ये कोई हों, प्रह्लाद का पौत्र देने को कहकर अस्वीकर नहीं करेगा'; क्योंकि आप जानते हैं कि शरीर नश्वर है और लक्ष्मी चञ्चला है। एक न एक दिन इन दोनों का नाश होना ही है। इसलिये ऐसे अवसर पर इनका सदुपयोग हो जाना मेरे विचार से अनुचित नहीं है। शिबि, दधीचि प्रभृति महापुरुषों ने अपने प्राण देकर दूसरों का हित साधा है। मैं इस नश्वर धन के लोभ में इस छोटे से ब्राह्मण को विमुख कर दूँ, यह मुझसे न हो सकेगा; क्योंकि ऐसा करने से मेरे कुल में दाग लग जायेगी। गुरुदेव! आप क्षमा करें। मैं आपकी सब बातें मानने को तैयार हूँ, किन्तु इस समय मैं झूठ नहीं बोल सकता। जो मैं निश्चय कर चुका हूँ, उसे होने दीजिये।

महर्षे! युद्ध में शरीर त्यागने वाले पुरुष बहुत मिल जायेंगे, किन्तु उत्तम पात्र मिलने पर श्रद्धा से दान देने वाले पुरुष संसार में दुर्लभ हैं—

सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः।
न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ते धनत्यजः।।

(भाग., ८.२०)

इसलिये इस सुन्दर अवसर पर चूकना ठीक नहीं। धन कीर्ति से बढ़कर नहीं है, संसार में जिसकी कीर्ति है, वह पुरुष मरने पर भी जीवित रहता है—

कीर्तिर्यस्य स जीवति।

अत एव मैं इस ब्राह्मण-बालक को इच्छानुसार पृथिवी अवश्य दूँगा। बलि के ऐसा कहने पर गुरु शुक्राचार्य ने कुपित होकर उसे शाप देते हुए कहा— रे दुष्ट! तुम अपने को बड़ा पण्डित मानते हो। मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन कर लम्बी-लम्बी बातें बघारते हो। जाओ, तुम शीघ्र ही राजश्री से भ्रष्ट हो जाओ। बलि ने इस शाप को भी गुरु का अनुग्रह ही माना, पर अपने सङ्कल्प से वह विचलित नहीं हुआ और पृथिवी दान देने के लिये उद्यत हो गया। उसी समय उसकी पत्नी विन्ध्यावलि जल से पूर्ण सुवर्ण का कलश लेकर आई और बलि ने पहले विधिपूर्वक भगवान् वामन का पूजन किया। तत्पश्चात् सङ्कल्प के लिये जलभरा कमण्डलु उठाया। यह देखकर शुक्राचार्य अपने शिष्य की रक्षा के लिये कमण्डलु की टोटी में योग-द्वारा घुस गये और उन्होंने टोटी का छिद्र ही बन्द कर दिया, जिससे जल न निकल सका। तब वामन के सङ्केत पर बलि ने कुश से उसे खोद दिया। इस आघात से शुक्राचार्य का एक नेत्र फूट गया और वे वहाँ से निकल भागे। तब से वे **'एकाक्ष'** कहलाये। यह प्रसङ्ग बृहन्नारदीयपुराण में आया है।

बलि ने वामन के चरण धोकर उन्हें तीन पैर पृथिवी प्रदान की और उनका परम पवित्र चरणोदक अपने मस्तक पर धारण किया। इस अवसर पर स्वर्ग से देवगण बलि के कार्य की प्रशंसा करते हुए पुष्पवृष्टि करने लगे, आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं एवं गन्धर्व और किन्नर गान करने लगे। सभी लोग एक स्वर से बोल उठे कि बलि ने बड़ा ही दुष्कर कर्म किया। शत्रु को जानते हुए भी इसने तीनों लोक दे दिये। तदनन्तर सबके देखते-देखते वामन जी का रूप बढ़ने लगा और वह धीरे-धीरे विराट् रूप में परिणत हो गया। यह देखकर सब लोग आश्चर्य से चकित रह गये। इस विराट् रूप में सातों लोक, नदी, पर्वत, द्वीप, समुद्र, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, तारा, इन्द्र आदि देवता, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, ऋषि, महर्षि, चर, अचर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड था। यह देखकर सब असुर थर्राते हुए किंकर्तव्यविमूढ हो गये। सुनन्द, नन्दादि भगवान् के पार्षद इस विराट् स्वरूप में भगवान् की स्तुति कर रहे थे। उस समय विराट् भगवान् की शोभा उद्भुत थी। उन्होंने एक पैर से पृथिवी और दूसरे पैर से ऊपर के सब लोग बलि के देखते-देखते नाप लिये। बाहुओं से दिशाएँ एवं शरीर से सम्पूर्ण आकाश भी नाप लिया। तीसरे पैर के लिये कोई स्थान शेष न बचा।

न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि।

यह देखकर बलि आश्चर्य-चकित हो उठा। इस स्थिति को देख अत्यन्त विकल राक्षसों ने उपद्रव प्रारम्भ कर दिया, पर विष्णु के सैनिकों ने उन्हें खदेड़ दिया। भगवान् की इच्छा से गरुड ने महाराज बलि को वरुण पाश में बाँध लिया। भगवान् ने बलि से कहा कि वचन पूरा न होने से तुम्हें नरक में जाना पड़ेगा। बलि इससे विचलित नहीं हुए और बोले— महाराज! तीसरा पग मेरे सिर पर रखें—

पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्।

(भा., ८.२२.२)

मैं अपने वचन को झूठा नहीं होने दूँगा। उस समय राजा बलि बड़ी ही प्रशंसा योग्य वचन बोलते हैं—

बिभेमि नाहं निरयात् पदच्युतो
न पाशबन्धाद् व्यसनाद् दुरत्ययात्।
नैवार्थकृच्छ्राद् भवतो विनिग्रहा-
दसाधुवादाद् भृशमुद्विजे यथा।।

(भा., ८.२२.३)

अर्थात् मैं नरक में जाने से नहीं डरता। अपने पद से हटने से नहीं डरता, वरुणपाश के बन्धन से भी नहीं डरता, असह्य कष्ट से भी नहीं डरता, परन्तु मैं अपने असाधुवाद यानी अपयश से डरता हूँ। इसलिये आप अपने चरण को मेरे मस्तक पर रख लें। बलि ने मस्तक झुकाया। वामन ने वहाँ चरण रखा।

तदनन्तर वामन ने कहा— 'हे बलि! तुम अगले मन्वन्तर में इन्द्र बनोगे। तब तक तुम सुतललोक में निवास करो। मैं नित्य तुम्हारे द्वार पर गदापाणि-समन्वित उपस्थित रहूँगा।' दयामय द्रवित हुए। प्रह्लाद भी उस समय वहाँ उपस्थित हो गये थे। उनके साथ बलि सब असुरों को लेकर स्वर्गाधिक ऐश्वर्य सम्पन्न सुतललोक में पधारे। शुक्राचार्य ने भगवान् के आदेश से यज्ञ पूरा किया।

महेन्द्र को स्वर्ग प्राप्त हुआ। इस प्रकार भगवान् ने वामन बनकर इन्द्र की रक्षा की, तब से वे इन्द्र के रक्षक होकर **'उपेन्द्र'** नाम से अमरावती में

अधिष्ठित हुए। बलि के द्वार पर गदापाणि प्रभु द्वारपाल तो बन ही चुके थे। त्रेता में दिग्विजय के लिये रावण ने सुतल में प्रवेश की धृष्टता की। बेचारा रावण असुरेश्वर बलि का दर्शन तक न कर सका। बलि के द्वारपाल ने पैर के अँगूठे से उसे फेंक दिया। वह पृथिवी पर सौ योजन दूर लङ्का में आकर गिरा।

इस प्रकार अत्यन्त अद्भुत त्रिविक्रम वामन का रूप धारण कर विष्णु महान् दैत्य बलि को जीत कर अहङ्कार ग्रस्त हो गये। उस समय ये सूर्य और चन्द्र की गति को भी रोककर बढ़ते चले गये। जिससे संसार में त्राहि-त्राहि मच गया। तब उनको जीत कर, अर्थात् उनका वध कर महादेव भगवान् शंकर ने उनके कङ्काल को धारण कर लिया। तभी से परमेश्वर शिव **कङ्कालधारी** के नाम से प्रसिद्ध हो गये। जैसा कि सूक्ष्मागम के उत्तर भाग में कहा गया है—

पुरा त्रैविक्रमं रूपं स्वीकृत्य परमाद्भुतम्।
जित्वा बलिं महादैत्यमतिदृप्तोऽभवद्धरिः।।
निरुन्धन् ववृधे सोऽयं सूर्यचन्द्रगतिं तथा।
विजित्य तं महादेवः कङ्कालं तस्य सन्दधे।।
तस्मात् कङ्कालधारीति विश्रुतः परमेश्वरः।।

(सू.आ., उ.भा., क्रि.पा., २.४२-४३)

सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में भगवान् शिव देवाधिदेव रूप में पूज्य हैं। वे महादेव हैं; क्योंकि उनके अन्तः और बाह्य दोनों पक्ष शुद्ध-सत्त्व-प्रधान हैं। वे शंकर हैं— **शं कल्याणं करोतीति शङ्करः।** वे आशुतोष हैं, भक्तजनों पर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव अनायास ही आराधक की शुद्ध भावना को देखकर उसे अभिलषित वर दे देते हैं। भक्त के शुद्ध भाव का आभास पाते ही वे प्रकट होकर उसकी मनःकामना पूरी करते हैं। इसीलिये वे औढरदानी भी कहे जाते हैं। विष्णु आदि अन्य देवों की अपेक्षा शिव सुर-असुर, दानव-मानव सबके निर्विवाद आराध्य हैं। शिव के आशुतोषत्व, महादेवत्व और सर्वकल्याणकारकत्व ही उनकी सर्वप्रियता के हेतु हैं। ऐसे सर्वप्रिय, भक्तवत्सल, सर्वसुलभ शिव की मङ्गलमयी मूर्ति सर्वथा नमनीय, वन्दनीय एवं पूजनीय है। भगवान् शिव की निग्रह-अनुग्रह लीला सर्वदा चलती रहती है। भगवान् आशुतोष की यह कङ्कालधारण लीला विष्णु के

निग्रह के लिये हुई है। इसका पौराणिक प्रसङ्ग अनुसन्धेय है। अन्त में शैवी लीला को नमन करता हूँ—

स्रष्टाराऽपि प्रजानां प्रबलभवभयाद् यं नमस्यन्ति देवा
यश्चित्ते सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसां ध्यानमुक्तात्मनां च।
लोकानामादिदेवः स जयतु भगवाञ्छ्रीमहाकालनामा
बिभ्राणः सोमलेखामहिवलययुतं व्यक्तलिङ्गं कपालम्।।

अर्थात् प्रजा की सृष्टि करने वाले प्रजापति देव भी प्रबल संसारभय से मुक्त होने के लिये जिन्हें नमस्कार करते हैं, जो सावधान चित्तवाले ध्यानपरायण महात्माओं के हृदय-मन्दिर में सुखपूर्वक विराजमान होते हैं और चन्द्रमा की कला, सर्पों के कङ्कण तथा व्यक्त चिह्न वाले कपाल को धारण करते हैं, सम्पूर्ण लोकों के आदिदेव उन भगवान् महाकाल की जय हो।



१०. विषधारण लीला

आशुतोष भगवान् शंकर के बहुत नाम हैं, उनमें एक भी निरर्थक नहीं, सब सार्थक हैं। प्रत्येक नाम में नाम के गुण, प्रयोजन और तथ्य भरे हैं। यदि उनका अर्थ सोचा जाय या उनके प्रचार होने का मूल देखा जाय, तो अधिकांश नामों से भ्रम-निवृत्ति, मोह-नाश और सौभाग्यादि का लाभ हो सकता है। वे शिव, पशुपति, मृत्युञ्जय, कृत्तिवासा, शितिकण्ठ, खण्डपरशु, गङ्गाधर, चन्द्रशेखर, चन्द्रचूड आदि नामों से जाने जाते हैं। इनके प्रत्येक नामों में रहस्य भरा पड़ा है। वे चन्द्रमा को अपने ललाट में धारण किये हैं, इसलिये वे चन्द्रशेखर कहे जाते हैं। विष को ही अपने गले (कण्ठ) में धारण कर लिये, जिससे उनका कण्ठ नीला पड़ गया, इसलिये वे शितिकण्ठ कहलाये। यहाँ भगवान् शिव की विषधारण की लीला का वर्णन किया जा रहा है। कथा कुछ इस प्रकार है—

देवासुर संग्राम में बढ़ती हुई दैत्य शक्ति को देखकर देवगण भगवान् आशुतोष के शरण में गये। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर उनके हृदय की बात जान कर भगवान् शिव मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोले। समस्त देवताओं तथा जगत् के एकमात्र स्वामी भगवान् अकेले ही सब कार्य करने में समर्थ थे, फिर भी लीलाओं के द्वारा विहार करने को इच्छा से देवताओं को सम्बोधित कर के इस प्रकार कहने लगे— हे देवगण! इस समय असुरों पर काल की कृपा है। इसलिये जब तक तुम्हारे अभ्युदय और उन्नति का समय नहीं आता, तब तक तुमलोग दैत्य और दानवों से सन्धि कर लो। हे देवगण! कोई बड़ा कार्य करना हो, तो शत्रुओं से भी मेल-मिलाप कर लेना चाहिये। यह बात अवश्य है कि काम बन जाने पर उनके साथ साँप और चूहे वाला बर्ताव कर सकते हैं। तुमलोग बिना विलम्ब के अमृत निकालने का प्रयत्न करो। उसे पी लेने पर मरने वाला प्राणी भी अमर हो जाता है। पहले क्षीरसागर में सब प्रकार के घास, तिनके, लतायें और औषधियाँ डाल दो।

फिर तुमलोग मन्दराचल की मथानी और वासुकि नाग की नेती बनाकर मेरी सहायता से समुद्र का मन्थन करो। अब आलस्य और प्रमाद का समय नहीं है। देवताओं! विश्वास रखो— दैत्यों को तो मिलेगा केवल श्रम और क्लेश, परन्तु फल तुम्हीं लोगों को मिलेगा। हे देवगण! असुरलोग तुम से जो-जो चाहें, सब स्वीकार कर लो। शान्ति से सब काम बन जाते हैं, क्रोध करने से कुछ नहीं होता। पहले समुद्र से कालकूट विष निकलेगा, उससे डरना नहीं। साथ ही किसी भी वस्तु के लिये कभी भी लोभ न करना। पहले तो किसी वस्तु की कामना ही नहीं करनी चाहिये। परन्तु यदि कामना हो और वह पूरी न हो, तो क्रोध तो करना ही नहीं चाहिये।

देवताओं को यह आदेश देकर पुरुषोत्तम भगवान् उनके बीच में ही अन्तर्धान हो गये। वे सर्वशक्तिमान् एवं परम स्वतन्त्र जो ठहरे। उनकी लीला का रहस्य कौन समझे? उनके चले जाने के बाद इन्द्रादि देवता राजा बलि के पास गये। देवताओं को बिना अस्त्र-शस्त्र के सामने आते हुए देख कर दैत्यसेनापतियों के मन में बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने देवताओं को पकड़ लेना चाहा। परन्तु दैत्यराज बलि सन्धि और विरोध के अवसर को जानने वाले एवं पवित्र कीर्ति से सम्पन्न होने के कारण दैत्यों को वैसा करने से रोक दिया। बलि तीनों लोकों को जीत कर समस्त सम्पत्तियों से सेवित एवं असुर सेनापतियों से सुरक्षित होकर अपने राजसिंहासन पर बैठे हुए थे। उनके समीप जाकर बुद्धिमान् इन्द्र ने बड़ी मधुर वाणी से समझाते हुए राजा बलि से वे सब बातें कहीं, जिनकी शिक्षा स्वयं भगवान् ने उन्हें दी थी। वह बात राजा बलि को जँच गयी। वहाँ बैठे हुए दूसरे सेनापति शम्बर, अरिष्टनेमि और त्रिपुरनिवासी असुरों को भी यह बात अच्छी लगी, तब देवता और असुरों ने आपस में सन्धि-समझौता करके मित्रता कर ली। वे सब मिलकर अमृत-प्राप्ति के लिये पूर्ण उद्योग करने लगे। इसके बाद उन्होंने अपनी शक्ति से मन्दराचल को उखाड़ लिया और ललकारते तथा गरजते हुए उसे समुद्रतट की ओर ले चले। उनकी भुजायें परिघ के समान थीं, शरीर में शक्ति थी और अपने-अपने बल का घमण्ड तो था ही, परन्तु एक तो वह मन्दरपर्वत ही बहुत भारी था और दूसरे उसे ले जाना भी बहुत दूर था। इससे इन्द्र, बलि आदि सब-के-सब हार गये। जब वे किसी प्रकार भी मन्दराचल को आगे न ले जा सके, तब विवश होकर उन्होंने उसे रास्ते में ही पटक दिया। वह सोने

का पर्वत मन्दराचल बड़ा भारी था। गिरते समय उसने बहुत से देवता और दानवों को चकनाचूर कर डाला।

उन देवताओं और असुरों के हाथ, कमर और कन्धे टूट ही गये थे, मन भी टूट गया। उनका उत्साह भंग हुआ देख भगवान् आशुतोष वहाँ प्रकट होकर अपनी अमृतमयी दृष्टि से इस प्रकार जीवित कर दिया, मानों उनके शरीर में बिलकुल चोट ही न लगी हो। इसके बाद उन्होंने खेल-ही-खेल में एक हाथ से उस पर्वत को उठाकर समुद्र के तट पर पहुँचा दिया।

तदनन्तर देवता और असुरों ने नागराज वासुकि को यह वचन देकर कि समुद्रमन्थन से प्राप्त होने वाले अमृत में तुम्हारा भी भाग रहेगा, उन्हें भी सम्मिलित कर लिया। इसके बाद उन लोगों ने वासुकि नाग को नेती के समान मन्दराचल में लपेट कर भली-भाँति उद्यत हो बड़े उत्साह और आनन्द से अमृत के लिये समुद्रमन्थन प्रारम्भ किया। उस समय पहले पहल भगवान् विष्णु वासुकि के मुख की ओर लग गये, इसलिये देवता भी उधर ही आ जुटे। परन्तु विष्णु की यह चेष्टा दैत्यसेनापतियों को पसन्द न आयी।

उन्होंने कहा कि 'पूँछ तो साँप का अशुभ अङ्ग है, हम उसे नहीं पकड़ेंगे। हमने वेद-शास्त्रों का विधिपूर्वक अध्ययन किया है, ऊँचे वंश में हमारा जन्म हुआ है और वीरता के बड़े-बड़े काम हमने किये हैं। हम देवताओं से किस बात में कम हैं।' यह कहकर वे लोग चुपचाप एक ओर खड़े हो गये। उनकी यह मनोवृत्ति देखकर विष्णु ने मुसकरा कर वासुकि का मुँह छोड़ दिया और देवताओं के साथ उन्होंने पूँछ पकड़ लिया। इस प्रकार अपना-अपना स्थान निश्चित कर देवता और असुर अमृत-प्राप्ति के लिये पूरी तैयारी से समुद्रमन्थन करने लगे।

जब समुद्रमन्थन होने लगा, तब बड़े-बड़े बलवान् देवता और असुरों के पकड़े रहने पर भी अपने भार की अधिकता और नीचे कोई आधार न होने के कारण मन्दराचल समुद्र में डूबने लगा। इस प्रकार अत्यन्त बलशाली देवों के द्वारा अपना सब किया-कराया मिट्टी में मिलते देख उनका मन टूट गया। सबके मुँह पर उदासी छा गयी। उस समय भगवान् ने देखा कि यह तो विघ्नराज की करतूत है। इसलिये उन्होंने उसके निवारण का उपाय सोचकर अत्यन्त विशाल एवं विचित्र कच्छप का रूप धारण कर समुद्र के जल में

प्रवेश करके मन्दराचल को ऊपर उठा लिया। भगवान् की शक्ति अनन्त है। वे सत्यसङ्कल्प हैं। उनके लिये यह कौन सी बड़ी बात थी। अब भगवान् की पीठ का आधार पाकर मन्दराचल घूमने लगा। अनन्त शक्तिशाली आदि कच्छप भगवान् को उस पर्वत का चक्कर लगाना ऐसा जान पड़ता था, मानों कोई उनकी पीठ खुजला रहा हो।

समुद्र-मन्थन को सम्पन्न करने के लिये भगवान् शिव ने असुरों में उनकी शक्ति और बल को बढ़ाते हुए असुररूप में प्रवेश किया। वैसे ही उन्होंने देवताओं को उत्साहित करते हुए उनमें देवरूप से और वासुकिनाग में निद्रा के रूप में प्रवेश किया, जिससे किसी को कष्ट न हो— सबके भीतर विविध रूपों में प्रवेश करके सब ओर से सबको शक्ति सम्पन्न बना दिया। अब सब लोग अपने बल के मद से उन्मत्त होकर मन्दराचल के द्वारा बड़े वेग से समुद्र-मन्थन करने लगे। उस समय समुद्र और उसमें रहने वाले मगर, मत्स्य आदि जीव क्षुब्ध हो गये। नागराज वासुकि के हजारों कठोर नेत्र, मुख और श्वासों से विष की आग निकलने लगी। उनके धुवें से पौलोम, कालेय, बलि, इल्बल आदि असुर निस्तेज हो गये। उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे, मानों दावानल से झुलसे हुए साखू के पेड़ खड़े हों। देवता भी उससे न बच सके। वासुकि की श्वास की लपटों से उनका भी तेज फीका पड़ गया। वस्त्र, माला, कवच एवं मुख धूमिल पड़ गये। उनकी यह दशा देखकर भगवान् की प्रेरणा से बादल देवताओं के ऊपर वर्षा करने लगे एवं वायु समुद्र की तरङ्गों का स्पर्श करके शीतलता और सुगन्धि का सञ्चार करले लगे।

इस प्रकार देवता और असुरों के समुद्र-मन्थन करने पर भी जब अमृत न निकला, तब स्वयं अजित भगवान् समुद्र-मन्थन करने लगे। तब समुद्र में खलबली मच गयी। मत्स्य, मगर, साँप और कछुवे भयभीत होकर ऊपर आ गये और इधर-उधर भागने लगे। तिमि-तिमिङ्गिल आदि मत्स्य, समुद्री हाथी और ग्राह व्याकुल हो गये। उसी समय पहले-पहल हालाहल नाम का अत्यन्त उग्र विष निकला। वह अत्यन्त उग्र विष दिशा और विदिशा में, ऊपर-नीचे सर्वत्र उड़ने और फैलने लगा। इस असह्य विष से बचने का कोई उपाय नहीं दिख रहा था। भयभीत होकर सम्पूर्ण प्रजा और प्रजापति किसी के द्वारा त्राण न मिलने पर भगवान् सदाशिव की शरण में गये। भगवान्

शंकर सती के साथ कैलास पर्वत पर विराजमान थे। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनकी सेवा कर रहे थे। वे वहाँ तीनों लोकों के अभ्युदय और मोक्ष के लिये तपस्या कर रहे थे। प्रजापतियों ने उनका दर्शन करके उनकी स्तुति करते हुए उन्हें प्रणाम किया।

देवताओं के आराध्य देव हे महादेव! आप समस्त प्राणियों के आत्मा और उनके जीवनदाता हैं। हमलोग आपकी शरण में आये हैं। त्रिलोकी को भस्म करने वाले इस उग्र विष से आप हमारी रक्षा कीजिये। सारे जगत् को बाँधने और मुक्त करने में एकमात्र आप ही समर्थ हैं। इसलिये विवेकी पुरुष आपकी ही आराधना करते हैं; क्योंकि आप शरणागत की पीड़ा नष्ट करने वाले एवं जगद्गुरु हैं। हे प्रभो! आपके अनन्त स्वरूप का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करने में सहसा ब्रह्मा, विष्णु आदि समर्थ नहीं होते। हम लोग तो केवल आपके लीलाविहारी रूप को देख रहे हैं। आपके परम स्वरूप को हम नहीं जान सकते। हे महेश्वर! यद्यपि आपकी लीलायें अव्यक्त और अनन्त हैं, फिर भी संसार का कल्याण करने के लिये आप व्यक्त रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

इस प्रकार प्रजा का यह संकट देख कर समस्त प्राणियों के अकारण बन्धु देवाधिदेव भगवान् शंकर के हृदय में कृपावश व्यथा हुई। उन्होंने अपनी प्रिया सती से यह बात कही।

शिव ने कहा— हे देवि! यह बड़े खेद की बात है। देखो तो सही समुद्र-मन्थन से निकले हुए कालकूट विष के कारण प्रजा पर कितना बड़ा दु:ख आ पड़ा है। ये बेचारे किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करना चाहते हैं। इस समय मेरा यह कर्तव्य है कि मैं इन्हें निर्भय कर दूँ। जिनके पास शक्तिसामर्थ्य है, उनके जीवन की सफलता इसी में है कि वे दीन-दु:खियों की रक्षा करें। सज्जन पुरुष अपने क्षणभङ्गुर प्राणों की बलि देकर भी दूसरे प्राणियों के प्राण की रक्षा करते हैं। कल्याणि! अपने ही मोह की माया में फँस कर संसार के प्राणी मोहित हो रहे हैं और एक दूसरे से वैर की गाँठ बाँधें बैठे हैं। उनके ऊपर जो कृपा करता है, उस पर सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं और जब भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, तब चराचर जगत् के साथ मैं भी प्रसन्न हो जाता हूँ। इस लिये अभी-अभी मैं इस विष को भक्षण करता हूँ, जिससे मेरी प्रजा का कल्याण हो जायेगा।

इस प्रकार विश्व के जीवनदाता भगवान् शंकर सती देवी से प्रस्ताव करके उस विष को पीने के लिये तैयार हो गये। देवी तो उनका प्रभाव जानती ही थीं, उन्होंने हृदय से इस बात का अनुमोदन कर दिया। भगवान् शंकर बड़े कृपालु हैं। उन्हीं की शक्ति से समस्त प्राणी जीवित रहते हैं। उन्होंने उस तीक्ष्ण हलाहल विष को अपनी हथेली पर उठाया और भक्षण कर गये। वह विष जल का पाप—मल था। उसने शंकर जी पर भी अपना प्रभाव प्रकट कर दिया। उससे उनका कण्ठ नीला पड़ गया, परन्तु वह तो प्रजा का कल्याण करने वाले भगवान् शंकर के लिये भूषण रूप हो गया। परोपकारी सज्जन प्राय: प्रजा का दु:ख टालने के लिये स्वयं दु:ख झेला ही करते हैं। परन्तु यह दु:ख नहीं है, यह तो सबके हृदय में विराजमान भगवान् की परम आराधना है।

देवाधिदेव भगवान् शंकर सबकी कामना पूर्ण करने वाले हैं। उनका यह कल्याणकारी अद्भुत कर्म सुनकर सम्पूर्ण प्रजा, दक्षकन्या सती, ब्रह्मा जी और स्वयं विष्णु भगवान् भी उनकी जय-जयकार करने लगे। जिस समय भगवान् शिव विषपान कर रहे थे, उस समय उनके हाथ से थोड़ा सा विष टपक पड़ा था। उसे बिच्छू, साँप तथा अन्य विषैले जीवों ने एवं विषैली औषधियों ने ग्रहण कर लिया।

इस प्रकार भगवान् शिव ने समुद्र-मन्थन से समुद्भूत कालकूट विष को अपने कण्ठ में धारण कर सम्पूर्ण जगत् को कालकवलित होने से बचा लिया। तभी से भगवान् शंकर शितिकण्ठ, नीलकण्ठ, विषपायी आदि नामों से विख्यात हुए। वे भगवान् हम सबकी रक्षा करें (श्रीमद्भागवत, ८.६-७ अ.)।

देवों और दानवों ने जब अमृत पाने की इच्छा से समुद्र-मन्थन किया था, तो मन्थन में सर्वप्रथम सर्वाधिक विषैला कालकूट विष निकला। यह कालकूट सबसे विध्वंसकारी विष है। ऐसा विष जिसके तनिक स्पर्शमात्र से प्राण नष्ट हो जाते हैं। संसार के समस्त जीव, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग तक क्षणभर में मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं।

इस कालकूट की भयङ्करता से प्राणिमात्र जीवन धारण करने के लिये चिन्तित हो उठा। यदि जीवों में कालकूट ने अपना विषैला प्रभाव दिखाया, तो ब्रह्माजी की यह सृष्टि कैसे बचेगी? प्राणी तो क्या देवता तथा दानवों में

से कोई भी प्राणी— चाहे वह जलचर हो, नभचर हो या थलचर ही क्यों न हो, साँस लेने वाला कोई भी जीव विष के प्रभाव से न बचेगा। यहाँ तक कि शस्यश्यामला धरा की उर्वरक शक्ति भी सदा के लिये विनष्ट हो जायेगी। विष को जहाँ रखिये, वहीं अपना दूषित प्रभाव दिखाता है। जिस पात्र में रखा जाय, वह उसकी ज्वाला से जल-भुनकर गल जाता है। विष को सावधानी से रखना, दूसरों को हानि न हो, वे बचे रहें, यह अत्यन्त आवश्यक है।

कालकूट की ज्वाला से विश्व के प्राणी झुलसने लगे। सृष्टि की रक्षा के लिये देव-दानव सभी चिन्तित हो उठे। कोई ऐसा उपाय किया जाय कि हलाहल फिर से कहीं दबा पड़ा रहे। संसार में प्रकट न हो। कालकूट का किसी गहन गह्वर में छिपा रहना ही हितकर है। अन्यथा उससे हानि-ही-हानि है। कहाँ रखा जाय, इस विष को? देव और दानव दोनों में देर तक मन्त्रणा होती रही। ऐसा कौन स्थान है, जहाँ विष का असर न हो? केवल भगवान् शिव ही इस विषम परिस्थिति से रक्षा कर सकते हैं। रक्षा की भावना से जो भी शंकर की शरण में जाता है, शम्भु के शान्तिमय, मुक्त, क्षमाशील और कल्याणमय रूप का स्मरण करके सहायता की आर्त पुकार करता है, वह सुरक्षा अवश्य पाता है।

शिव का अर्थ ही मङ्गलमय, कुशल-क्षेम और मुक्तिप्रदायक है। जो प्राणों पर शासन करते हैं, वे शिवात्मा कहलाते हैं। जो वायु को वश में रखते हैं, वे सदाशिव शुद्धात्मा कहलाते हैं। जो जीवन को वश में रखते हैं, वे परम शिव कहलाते हैं।

देवताओं और दानवों ने भगवान् शंकर की विनती की— **'शिवस्य तु वशे कालो न कालस्य वशे शिवः।'** हे शिव! काल आपके अधीन है, आपका काल से मुक्त चिदानन्द हैं। जिसे मृत्यु को जीतना हो, उसे हे भगवन्! आपमें स्थित होना चाहिये। आपका मन्त्र ही मृत्युञ्जय है। हे शंकर! आप त्र्यम्बक अर्थात् तीन नेत्रों वाले हैं। सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् आपके तीन नेत्र हैं। आप कर्म, भक्ति और ज्ञान को धारण करते हैं। भगवन्! भूः, भुवः और स्वः— भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक सर्वत्र आप ही परिव्याप्त हैं। जीवन, मृत्यु और मुक्ति— तीनों ही आपके नेत्र हैं। आप बालचन्द्र, गङ्गा

और शक्ति— तीनों को धारण करते हैं। अत: कालकूट की दाहक ज्वाला से प्राणिमात्र की रक्षा कीजिये। यदि आपने रक्षा न की, तो यह विष तीनों लोकों को भस्म करने के लिये बढ़ रहा है।

उस विषम स्थिति में सबके हाथ विनति से शिव के आगे जुड़े हुए थे। सबने एकाग्र होकर बड़ी श्रद्धापूर्वक भगवान् शिव का ध्यान किया। शिव का ध्यान सदा ही कल्याणकारी होता है—

नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात! गच्छति।

(गीता, ६.४०)

'हे तात! कल्याणकारी कर्म करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती।' भक्तों की आर्त पुकार सुनकर भगवान् शिव प्रकट हुए। उन्होंने दुष्ट कालकूट की प्राणिमात्र को जलाने वाली ज्वालाएँ देखीं। वे सृष्टि का अन्त आते देखकर अचानक चिन्तत हो उठे।

सोचने लगे 'यदि सृष्टि में मानव-समुदाय में कहीं भी यह विष-कलह-क्लेशरूप विष, मतभेद, राग-द्वेष, वाद-विवाद, संघर्ष, दोष-दुर्गुण आदि रहे, तो प्राणिमात्र अशान्त होकर जलने लगेगा। इसे सुरक्षित रखने को ऐसी जगह होनी चाहिये कि यह किसी को नुकसान न पहुँचा सके। सभी जीव सुरक्षित रहें।

ऐसा निरापद सुरक्षित स्थान मेरा, स्वयं मेरा ही कण्ठ-प्रदेश है। यदि हालाहल पेट में चला गया, तो अनिष्ट निश्चित है, बाहर रह गया, तो भी सारी सृष्टि भस्म हो जायेगी। फिर 'यह कहाँ रहे?' उन्होंने एक ही आचमन में लोक-संहारी विष को अपने गले में धारण कर लिया। तभी से विष के प्रभाव से उनका कण्ठ नीले रंग का हो गया, वे **नीलकण्ठ** कहलाने लगे और देवों के भी देव महादेव हो गये।

हमारे जीवन में नित्य नये-नये विष विकार-राग-द्वेष, कलह, झगड़े होते रहते हैं, किन्तु शिवभक्त उनसे अशान्त नहीं होते। विवेकपूर्ण निर्णय लेते हैं और शिव की पराशक्ति से उनके परम धाम को प्राप्त करते हैं।

भगवान् श्री नीलकण्ठ दस हजार बाल सूर्य के समान तेजस्वी हैं, सिर पर जटाजूट, ललाट पर अर्धचन्द्र और मस्तक पर साँपों का मुकुट धारण

किये हैं, चारों हाथों में जपमाला, शूल, नर-कपाल और खट्वाङ्ग-मुद्रा है। तीन नेत्र हैं, पाँच मुख हैं, अति सुन्दर विग्रह है, बाघाम्बर पहने हुए हैं और सुन्दर पद्म पर विराजित हैं। इन श्रीनीलकण्ठदेव का भजन करना चाहिये—

बालार्कायुततेजसा धृतजटाजूटेन्दुखण्डोज्ज्वलं
नागेन्द्रैः कृतभूषणं जपवटीं शूलं कपालं करैः।
खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविलसत्पञ्चाननं सुन्दरं
व्याघ्रत्वक्परिधानमब्जनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजे।।

श्रीनीलकण्ठ भगवान् शिव की भक्तवत्सलता एवं दूरदर्शिता धन्य है। ऐसे दयालु स्वामी को छोड़कर हे पापी मन! तू कहाँ भटकता फिरता है?

अशनं गरलं फणी कलापो
वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः।
मम दास्यसि किं किमस्ति शम्भो
तव पादाम्बुजभक्तिमेव देहि।।

(श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यविरचिता शिवानन्दलहरी)

हे शम्भो! मैं आपसे क्या माँगू? आपके पास देने लायक है ही क्या, जिसे आप मुझे देंगे? खाते तो हैं, आप जहर, अधिक हुआ तो मुट्ठी भर भाँग भकोस ली अथवा आक-धतूरा चबा लिया, जिसके खाने से अव्वल तो बचे ही नहीं और यदि किसी तरह बच जाय, तो पागल हुए बिना कदापि न रहे। फिर भला आपसे कोई खाने की चीज तो क्या माँगे? मनुष्य ही क्या, प्रत्येक प्राणी को प्रथम आवश्यकता होती है भोजन की, पेट भर जाने पर और बातों की सूझती है। सो वह आवश्यकता तो आपसे किसी को पूरी होने को नहीं।

भोजन के बाद दूसरा नंबर आता है, वस्त्र का। उसके लिये तो आप दिगम्बर प्रसिद्ध ही हैं, कुछ कहने सुनने की आवश्यकता ही नहीं है। कभी कोई भूला-भटका आफत का मारा आपसे मिलने आ गया, तो भले ही शर्म के मारे चमड़े का टुकड़ा लँगोटी की जगह लपेट लिया, नहीं तो वहीं नंग-धड़ंग घूमते रहते हैं। इस तरह कपड़े की मुराद पुरी हुई।

बदन ढँका हुआ होने पर गहने आदि से उसे सजाने की चिन्ता होती है। सो गहने आपने साँपों के धारण कर रखे हैं, जिन्हें धारण करने की, तो

बात ही कौन कहे, दर्शन होते ही होश-हवास कूच कर जाते हैं और किसी तरह उनसे प्राण बचाने की चिन्ता होती है। ऐसी दशा में कोई अभागा ही होगा, जो आपसे गहनों का सवाल करेगा।

अब रही सवारी की माँग; क्योंकि घर में खाने पहनने को भरपूर होता है और पास में दो पैसे की इज्जत हो जाती है, तब मनुष्य को पाँव-पियादे चलने में शर्म आने लगती है और यह खयाल होने लगता है कि चार आदमी हमें पैदल चलते देखकर क्या कहेंगे। उस समय मनुष्य को सवारी की जरूरत होती है। सो सवारी आपकी साँढ़ है, जिसके पास जाने में ही भय मालूम होता है कि कहीं वह सींग न भोंक दे। सारांश यह है कि आपके पास सांसारिक वस्तु कोई भी ऐसी नहीं है, जो आप किसी को दे सकें। इसलिये आपसे मैं केवल एक वस्तु माँगता हूँ, जिसे देने में आपको कभी आना-कानी हो ही नहीं सकती और जिसका आपके पास अटूट भण्डार है। वह है आपके चरणारविन्द की अनन्य एवं अनपायिनी भक्ति। आशा है मेरे इस छोटे से सवाल को आप अवश्य पूरा करेंगे और अपनी देन से मुझे वञ्चित नहीं रखेंगे?

मम दास्यसि किं किमस्ति शम्भो
तव पादाम्बुजभक्तिमेव देहि।।



११. चन्द्रधारण लीला

जब देवता असुरों की शक्ति से पराजित होने लगे, तब सभी देवता भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे। देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् उनके सामने प्रकट हुए। भगवान् देवताओं का अभिप्राय जानकर कुछ अद्भुत लीला करने की इच्छा से गम्भीर वाणी में बोले— हे देवगण! जब तक आपकी वृद्धि का समय न आये, तब तक आप सब दैत्यों से सन्धि कर लें, यही नीति है—

अरयोऽपि हि सन्धेया सति कार्यार्थगौरवे।
अहिमूषकवद् देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः।।

हे देवगण! कार्य की कठिन स्थिति आने पर शत्रुओं से भी सर्प और मूषक के समान सन्धि कर लेनी चाहिए। दैवयोग से एक मदारी की उस पेटी में एक चूहा बन्द हो गया, जिसमें एक सर्प भी था। सर्प ने अपना मतलब निकालने के लिये चूहे से कहा— भाई! तुम पेटी काट डालो, जिससे हम दोनों निकल भागें। चूहे ने पहले तो उसका विश्वास नहीं किया, किन्तु बहुत कहने पर उसने सर्प की बात मान ली और पेटी काट डाली। पेटी कटते ही सर्प पहले चूहे को मार कर खा गया, फिर पेटी से निकल भागा। ऐसे ही आप लोगों द्वारा असुरों से सन्धि कर समुद्र-मन्थन से अमृत प्राप्त करने का प्रयास होना चाहिए। समुद्र-मन्थन के लिये मन्दराचल को मथानी और सर्पराज वासुकि को रस्सी बनाकर समुद्र-मंथन किया जाय। तुम लोग अमृत पीकर शक्ति सम्पन्न हो जाओगे और असुर केवल क्लेश के भागी होंगे। इस प्रकार भगवान् के निर्देशानुसार इन्द्र ने असुरराज बलि के निकट जाकर बड़ी मधुर वाणी में सन्धि का प्रस्ताव रखा और अमृत प्राप्ति के लिये समुद्र-मन्थन का सुझाव दिया। बलि प्रभृति दैत्यों ने प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया और सबकी आपस में सन्धि हो गयी। सभी ने मिल कर मथानी के लिय मन्दराचल को उखाड़ा और उसे समुद्र तट पर ले जाने लगे। मार्ग में

उसके भार से सब श्रान्त हो गये और उनके कन्धों से पर्वत बीच में ही गिर पड़ा, जिससे बहुत से सुर-असुर विचूर्ण हो गये। यह देखकर भगवान् ने तत्क्षण वहाँ प्रकट होकर अपनी अमृतमयी दृष्टि से सबको जीवित कर दिया। अनन्तर भगवान् ने एक हाथ से पर्वत को उठाकर गरुड पर रखा एवं समुद्र तट पर ले गये। वहाँ पहुँचने पर गरुड को अन्यत्र भेज दिया, क्योंकि वहाँ उनके अस्तित्व में वासुकि का आना सम्भव न था।

इसके बाद सुर और असुरों ने वासुकि के पास जाकर कहा— हे नागराज! हम लोग अमृतप्राप्ति के लिये समुद्रमन्थन का विचार कर रहे हैं। आप मथानी की रस्सी बनकर हमारी सहायता करें। अमृतप्राप्ति होने पर उसमें आपको भी भाग दिया जायेगा। वासुकि ने उनकी बात स्वीकार कर ली और आकर मन्दराचल के बीच में लिपट गये। भगवान् श्री हरि ने देवताओं के साथ वासुकि के मुख की ओर का भाग पकड़ लिया। यह बात दैत्यों को अच्छी न लगी। वे बोले—

न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम्।

हम सब उत्तम कुल में उत्पन्न हैं, वेद का स्वाध्याय करने वाले हैं एवं वीरता में विख्यात हैं। हम सर्प के अमङ्गल अङ्ग को नहीं पकड़ेंगे। यह कहकर वे चुपचाप एक ओर खड़े हो गये। यह देख भगवान् ने मुस्कराकर देवताओं के साथ वासुकि का मुखभाग छोड़ दिया और पूँछ पकड़ ली। असुरों ने प्रसन्न होकर उसका मुख पकड़ लिया। इस प्रकार दोनों दलों ने मिलकर समुद्र का मन्थन आरम्भ किया। नीचे आधार न होने के कारण मथते समय वह पर्वत जल में धँसने लगा। यह देख सबके मुख पर उदासी छा गयी। भगवान् ने इसे गणेश जी का विघ्न जान मन से उनका स्मरण किया और तत्क्षण कच्छप रूप धारण कर अपनी पीठ पर पर्वत रख लिया। कच्छप भगवान् की एक लक्ष योजन चौड़ी पीठ एक दूसरे द्वीप के सदृश मालूम पड़ती थी। पर्वत को ऊपर उठा हुआ देखकर देव-दानव सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुनः बड़े उत्साह से समुद्र का मंथन करने लगे। भगवान् गुप्तरूप से सुर, असुर तथा नागराज का बल बढ़ा रहे थे एवं हजार बाहु धारण कर अन्यरूप से पर्वत को ऊपर खींच रहे थे। समुद्र के मन्थन से मकर आदि सभी जलचर जीव व्यग्र हो उठे। सर्पराज वासुकि के श्वास से गरम-गरम फूत्कारों से असुरों के

शरीर झुलस कर काले पड़ गये। उसकी झार से कुछ देवताओं की भी कान्ति मलिन सी हो गयी। भगवदिच्छा से उसी समय देवताओं की ओर मेघमण्डल से छोटी-छोटी बूँदें झरने लगीं और शीतल मन्द सुगन्ध वायु भी बहने लगी। इससे देवताओं को उतना कष्ट नहीं हुआ जितना कि असुरों को। मथते-मथते जब सब थक गये, अमृत नहीं निकला, तब स्वयं भगवान् कमर कस कर समुद्र को मथने के लिये उतरे।

भगवान् के मथते ही समुद्र से ऐसा भयङ्कर विष निकला, जिसकी ज्वालाएँ चारों ओर फैल गयीं और सब लोग त्राहि-त्राहि कर चिल्ला उठे। इन्द्र आदि देवताओं ने भाग कर कैलास में भगवान् शिव की शरण ली और स्तुति करते हुए कहा— हे भगवन्! इस भयङ्कर विष से हमारी रक्षा करें, हम आपकी शरण में हैं।

हे भगवन्! आप विराट् पुरुष हैं। आकाश आपकी नाभि, वायु श्वास, चन्द्र, सूर्य और अग्नि नेत्र तथा जल रेत है। आप सभी जीवों की आत्मा हैं। आपके स्वरूप को ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी नहीं जानते। आप हमारा कष्ट दूर करें। आपको बारम्बार नमस्कार है। भगवान् शिव ने देवताओं का संकट देख, पार्वती की सम्मति से वह फैला हुआ विष योग द्वारा अपनी हथेली पर रखकर पी लिया—

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम्।
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः।।

विषपान से भगवान् शंकर का कण्ठ नीला पड़ गया। तभी से उनका नाम **'नीलकण्ठ'** पड़ गया। भगवान् शिव की यह अद्भुत शक्ति देखकर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता उनकी प्रशंसा करने लगे। विष पीते हुए भगवान् के हाथ से जो कुछ बूँदें टपकीं, उन्हीं से साँप, बिच्छू, काँतर, विषैले वृक्ष, विषौषधियाँ पैदा हो गयीं।

इस प्रकार जब भगवान् शंकर ने विष पी लिया, तब देवता और असुरों को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे फिर नये उत्साह से समुद्र मथने लगे। तब समुद्र से कामधेनु प्रकट हुई। वह अग्निहोत्र की सामग्री उत्पन्न करने वाली थी। इसलिये ब्रह्मलोक तक पहुँचाने वाले यज्ञ के लिये उपयोगी एवं पवित्र थी, दूध आदि प्राप्त करने के लिये ब्रह्मवादी ऋषियों ने उसे ग्रहण किया। उसके

बाद उच्चै:श्रवा नाम का घोड़ा निकला, वह चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण का था। बलि ने उसे लेने की इच्छा प्रकट की। इन्द्र ने उसे नहीं चाहा, क्योंकि भगवान् ने उन्हें पहले से ही सिखा रखा था। तदनन्तर ऐरावत नाम का श्रेष्ठ हाथी निकला। उसके बड़े-बड़े दाँत थे, जो उज्ज्वल वर्ण कैलास की शोभा को भी मात कर रहे थे। जिसे इन्द्र ने प्राप्त किया। इसके बाद चन्द्रमा प्रादुर्भूत हुआ, जो अमृतस्राव करने वाला था। वह भगवान् शंकर के हिस्से में प्राप्त हुआ। उसे विषपायी भगवान् शिव ने अपने ललाट में धारण किया। इसलिये वे **शशिशेखर, चन्द्रभूषण** आदि नामों से विख्यात हुए।

इस तरह समुद्र-मन्थन से चौदह रत्न प्राप्त हुए। उनके नाम ये हैं—

लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा
धेनुः कामदुधा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः।
अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शङ्खोऽमृतं चाम्बुधे
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम्।।

इनमें कौस्तुभ नामक मणि को अपने हृदय पर धारण करने के लिये भगवान् विष्णु ने लेना चाहा। स्वर्गलोक की शोभा बढ़ाने वाला कल्पवृक्ष याचकों की इच्छित वस्तु देकर उनकी इच्छायें पूर्ण करता है। अप्सरायें सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित एवं गले में स्वर्ण-हार पहनी हुई थीं, वे अपने मनोहर चाल एवं विलास भरी चितवन से देवताओं को सुख पहुँचाने वाली हुईं। शोभा की मूर्ति स्वयं भगवती लक्ष्मी देवी ने भगवान् विष्णु का वरण करते समय यह विचार किया—

एष ब्रह्मातिवृद्धस्तपति दिनपतिश्चञ्चलो मातरिश्वा
दिग्वासा नीलकण्ठस्त्रिदशपतिरसौ गर्वितः क्षीयतेऽब्जः।
इत्थं देव्या विचिन्त्य भ्रमरकुलकलागीतशब्दप्रफुल्ला
दत्ता माला मुरारेः सुरतरुकुसुमालङ्कृता पातु युष्मान्।।

भगवान् विष्णु में समस्त सद्गुण नित्य निवास करते हैं। उन्होंने जगज्जननी समस्त सम्पत्तियों की अधिष्ठातृ-देवता श्रीलक्ष्मी जी को अपने वक्षःस्थल पर ही सर्वदा निवास करने का स्थान दे दिया है। लक्ष्मीजी ने वहाँ विराजमान होकर अपनी करुणामयी चितवन से तीनों लोक, लोकपति अपनी प्यारी प्रजा की अभिवृद्धि करती हैं।

इसके बाद समुद्र-मन्थन करने पर कमलनयनी कन्या के रूप में वारुणी देवी प्रकट हुईं। भगवान् की अनुमति से दैत्यों ने उसे ले लिया। इसके बाद हाथ में अमृत का कलश लिये हुए धन्वन्तरि प्रकट हुए। वे ही आयुर्वेद के प्रवर्तक और यज्ञभोक्ता के रूप में प्रसिद्ध हुए। भगवान् ने मोहिनी रूप धारण कर अमृत देवताओं को पिलाया, जिससे वे अमर हो गये। असुर जन्म से ही क्रूर स्वभाव वाले हैं। इनको अमृत पिलाना सर्पों को दूध पिलाने के समान बड़ा अन्याय होगा, इसलिये उन्होंने असुरों को अमृत में भाग नहीं दिया।

सज्जनों! देवता और दैत्य दोनों ने एक ही समय एक स्थान पर एक प्रयोजन तथा एक वस्तु के लिये एक विचार से एक ही कर्म किया था, परन्तु फल में बड़ा भेद हो गया। उनमें देवताओं ने बड़ी सुगमता से अपने परिश्रम का फल— अमृत प्राप्त कर लिया, क्योंकि उन्होंने भगवान् के चरणकमल की रज का आश्रय लिया था। परन्तु उससे विमुख होने के कारण परिश्रम करने पर भी असुरगण अमृत से वञ्चित ही रहे। मनुष्य अपने प्राण, धन, कर्म, मन और वाणी आदि से शरीर एवं पुत्र आदि के लिये जो कुछ करता है— वह व्यर्थ ही होता है; क्योंकि उसके मूल में भेदबुद्धि बनी रहती है। परन्तु उन्हीं प्राण आदि वस्तुओं के द्वारा भगवान् के लिये जो कुछ किया जाता है, वह सब भेद-भाव से रहित होने के कारण अपने शरीर, पुत्र और समस्त संसार के लिये सफल हो जाता है। जैसे वृक्ष की जड़ में पानी देने से उसका तना, टहनियाँ और पत्ते सब-के-सब सिंच जाते हैं, वैसे ही भगवान् के लिये कर्म करने से वे सबके लिये हो जाते हैं।

भगवान् आशुतोष ने भेदबुद्धि का त्याग कर विष पान किया, तो अमृतस्त्रावी चन्द्रमा को ग्रहण कर देवाधिदेव हो गये। ऐसे चन्द्रचूड़ भगवान् चन्द्रशेखर हम सबकी रक्षा करें।

सूक्ष्मागम, उत्तरभाग-क्रियापाद के द्वितीय पटल में शशिचूडलीला का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

शिव को व्योमकेश कहा गया है। चन्द्रमा सदा व्योम (आकाश) में विचरण करता है और भगवान् शिव उस चन्द्रमा को सदा धारण करते हैं। इस प्रसङ्ग की प्राचीन कथा भी वहाँ संक्षेप में वर्णित है (सूक्ष्मा., उ.भा.,

क्रि.पा., २.७-१२)। यह कथा पुराणों में भी प्राप्त होती है। शिवपुराण की कोटिरुद्रसंहिता में यह कथा इस प्रकार वर्णित है—

महामना प्रजापति दक्ष की साठ कन्यायें थीं। उनमें से दस कन्याओं का विवाह उन्होंने धर्म के साथ कर दिया। सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा से ब्याही गयीं और विधिपूर्वक तेरह कन्याओं के हाथ दक्ष ने कश्यप के हाथ में दे दिये। उन्होंने चार कन्याएँ श्रेष्ठ रूप वाले तार्क्ष्य (अरिष्टनेमि) को ब्याह दीं। तथा भृगु, अङ्गिरा और कृशाश्व को दो-दो कन्याएँ अर्पित कीं। उन स्त्रियों से उनके पतियों द्वारा बहुसंख्यक चराचर प्राणियों की उत्पत्ति हुई। दक्ष ने महात्मा कश्यप को जिन तेरह कन्याओं का विधिपूर्वक दान दिया था, उनकी सन्तानों से सारी त्रिलोकी व्याप्त है। स्थावर और जङ्गम कोई भी सृष्टि ऐसी नहीं है, जो कश्यप की सन्तानों से शून्य हो। देवता, ऋषि, दैत्य, वृक्ष, पक्षी, पर्वत तथा तृण-लता आदि सभी कश्यपपत्नियों से पैदा हुए हैं। इस प्रकार दक्ष-कन्याओं की सन्तानों से सारा चराचर जगत् व्याप्त है (शि.पु., रु.सं., अ.१६)।

प्रजापति दक्ष ने अपनी अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याओं का विवाह चन्द्रमा के साथ किया था। चन्द्रमा को स्वामी के रूप में पाकर वे दक्ष-कन्याएँ विशेष शोभा पाने लगीं तथा चन्द्रमा भी उन्हें पत्नी के रूप में पाकर निरन्तर सुशोभित होने लगे। उन सब पत्नियों में भी जो रोहिणी नाम की पत्नी थी, एकमात्र वही चन्द्रमा को जितनी प्रिय थी, उतनी दूसरी कोई पत्नी कदापि प्रिय नहीं हुई। इससे दूसरी स्त्रियों को बड़ा दुःख हुआ। वे सब अपने पिता की शरण में गयीं। वहाँ जाकर उन्होंने जो भी दुःख था, उसे पिता से निवेदन किया। वह सब सुनकर दक्ष भी दुःखी हो गये और चन्द्रमा के पास जाकर शान्तिपूर्वक बोले।

दक्ष ने कहा— कलानिधे! तुम निर्मल कुल में उत्पन्न हुए हो। तुम्हारे आश्रय में रहने वाली जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सबके प्रति तुम्हारे मन में न्यूनाधिक भाव क्यों है? तुम किसी को अधिक और किसी को कम प्यार क्यों करते हो? अब तक जो किया, सो किया, अब आगे फिर कभी ऐसा विषमतापूर्ण बर्ताव तुम्हें नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसे नरक देने वाला बताया गया है—

कृतं चेत्तत्कृतं तच्च न कर्तव्यं त्वया पुनः।
वर्तनं विषमत्वेन नरकप्रदमीरितम्।।

(शि.पु., कोटिरुद्रसंहिता, १४.१२)

अपने जामाता चन्द्रमा से स्वयं ऐसी प्रार्थना कर प्रजापति दक्ष घर को चले गये। उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया था कि अब फिर आगे ऐसा नहीं होगा। पर चन्द्रमा ने प्रबल भावी से विवश होकर उनकी बात नहीं मानी। वे रोहिणी में इतने आसक्त हो गये थे कि दूसरी किसी पत्नी का कभी आदर नहीं करते थे। इस बात को सुनकर दक्ष दु:खी हो फिर स्वयं आकर चन्द्रमा को उत्तम नीति से समझाने लगे तथा न्यायोचित बर्ताव के लिये प्रार्थना करने लगे।

दक्ष बोले— चन्द्रमा! सुनो, मैं पहले अनेक बार तुमसे प्रार्थना कर चुका हूँ। फिर भी तुमने मेरी बात नहीं मानी। इसलिये आज शाप देता हूँ कि तुम्हें क्षय का रोग हो जाय—

श्रूयतां चन्द्र यत्पूर्वं प्रार्थितो बहुधा मया।
न मानितं त्वया यस्मात्तस्मात्त्वं च क्षयी भव।।

(शि.पु., कोटि.सं., १४.१८)

दक्ष के इतना कहते ही क्षणभर में चन्द्रमा क्षयरोग से ग्रस्त हो गये। उनके क्षीण होते ही उस समय सब ओर महान् हाहाकार मच गया। सब देवता और ऋषि कहने लगे कि 'हाय! हाय! अब क्या करना चाहिये, चन्द्रमा कैसे ठीक होंगे? इस प्रकार दु:ख में पड़कर वे सब लोग विह्वल हो गये। चन्द्रमा ने इन्द्र आदि सब देवताओं तथा ऋषियों को अपनी अवस्था सूचित की। तब इन्द्र आदि देवता तथा वसिष्ठ आदि ऋषि ब्रह्माजी की शरण में गये।

उनकी बात सुनकर ब्रह्माजी ने कहा— देवताओं! जो हुआ, सो हुआ। अब वह निश्चय ही बदल नहीं सकता है। अत: उसके निवारण के लिये मैं तुम्हें एक उत्तम उपाय बतलाता हूँ। आदरपूर्वक सुनो। चन्द्रमा देवताओं के साथ प्रभास क्षेत्र में जायें, जो अत्यन्त शुभ क्षेत्र है। वहाँ मृत्युञ्जय मन्त्र का विधिपूर्वक अनुष्ठान करते हुए भगवान् शिव की आराधना करें। अपने सामने शिवलिङ्ग की स्थापना करके वहाँ चन्द्रदेव नित्य तपस्या करें। इससे प्रसन्न होकर भगवान् शिव उन्हें क्षयरहित कर देंगे।

तदनन्तर देवताओं तथा ऋषियों के कहने से ब्रह्मा जी की आज्ञा के अनुसार चन्द्रमा ने वहाँ छः महीने तक निरन्तर तपस्या की। मृत्युञ्जय मन्त्र से भगवान् वृषभध्वज का पूजन किया। दस करोड़ मन्त्र का जप और मृत्युञ्जय का ध्यान करते हुए चन्द्रमा वहाँ स्थिरचित्त होकर लगातार खड़े रहे। उन्हें तपस्या करते देख भक्तवत्सल भगवान् शंकर प्रसन्न हो उनके सामने प्रकट हो गये और अपने भक्त चन्द्रमा से बोले।

भगवान् शंकर ने कहा— चन्द्रदेव! तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे मन में जो अभीष्ट हो, वह वर माँगो। मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हें सम्पूर्ण उत्तम वर प्रदान करूँगा।

चन्द्रमा ने कहा— देवेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मेरे लिये क्या असाध्य हो सकता है, तथापि प्रभो! शंकर! आप मेरे शरीर के इस क्षय रोग का निवारण कीजिये। मुझसे जो अपराध बन गया हो, उसे क्षमा कीजिये।

भगवान् शिव ने कहा— चन्द्रदेव एक पक्ष में प्रतिदिन तुम्हारी कला क्षीण हो और दूसरे पक्ष में फिर वह निरन्तर बढ़ती रहे—

पक्षे च क्षीयतां चन्द्र कला ते च दिने दिने।
पुनश्च वर्द्धतां पक्षे सा कला च निरन्तरम्।।

(शिव.पु., को.सं., १४.४५)

तदनन्तर चन्द्रमा ने भक्तिभाव से भगवान् शंकर की स्तुति की। इससे पहले निराकार होते हुए भी वे भगवान् शिव फिर साकार हो गये। देवताओं पर प्रसन्न हो उस क्षेत्र के माहात्म्य को बढ़ाने तथा चन्द्रमा के यश का विस्तार करने के लिये भगवान् शंकर ने चन्द्रमा को सिर से लगा लिया, जिससे वे **'भालचन्द्र'** कहलाये। चन्द्रमा के द्वारा पूजित शिव की मूर्ति **'सोमेश्वर'** के नाम से तीनों लोकों में विख्यात हुई।

भगवान् शिव सोमनाथ का पूजन करने से उपासक के क्षय तथा कोढ़ आदि रोगों का नाश हो जाता है। ये चन्द्रमा धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, जिनके नाम से तीनों लोकों के स्वामी साक्षात् भगवान् शंकर भूतल को पवित्र करते हुए प्रभासक्षेत्र में विद्यमान हैं। वहीं सम्पूर्ण देवताओं ने सोमकुण्ड की भी स्थापना की है, जिसमें शिव और ब्रह्मा का निवास माना जाता है।

चन्द्रकुण्ड इस भूतल पर पापनाशन तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। जो मनुष्य उसमें स्नान करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। क्षय आदि जो असाध्य रोग होते हैं, वे सब उस कुण्ड में छः मास तक स्नान करने मात्र से नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य जिस फल के उद्देश्य से इस उत्तम तीर्थ का सेवन करता है, उस फल को सर्वथा प्राप्त कर लेता है— इसमें संशय नहीं है—

चन्द्रकुण्डं प्रसिद्धं च पृथिव्यां पापनाशनम्।
तत्र स्नाति नरो यः स सर्वैः पापैः प्रमुच्यते।।
रोगाः सर्वे क्षयाद्याश्च ह्यसाध्या ये भवन्ति वै।
ते सर्वे च क्षयं यान्ति षण्मासं स्नानमात्रतः।।
प्रभासं च परिक्रम्य पृथिवीक्रमसम्भवम्।
फलं प्राप्नोति शुद्धात्मा मृतः स्वर्गे महीयते।।

(शि.पु., को.सं., १४.५४-५६)

इस प्रकार चन्द्रमा नीरोग होकर अपना पूर्ववत् कार्य करने लगे। इस तरह भगवान् की चन्द्रधारण लीला पूर्ण हुई। इस प्रकार सोमेश्वर लिङ्ग का प्रादुर्भाव हुआ। जो मनुष्य सोमनाथ के प्रादुर्भाव की इस कथा को सुनता अथवा दूसरों को सुनाता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है और सब पापों से मुक्त हो जाता है—

यः शृणोति तदुत्पत्तिं श्रावयेद्वा परान्नरः।
सर्वान् कामानवाप्नोति सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

(शि.पु., को.सं., १४.६२)

भगवान् शंकर की अनन्त लीलायें हैं। जो कल्पकल्पान्तर के भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णित हैं। कल्पान्तर की कथा है कि भगवान् महादेव ने चन्द्रमा एवं बृहस्पति के युद्ध में बृहस्पति का पक्ष लेकर युद्ध किया था। यह कथा वायुपुराण एवं भागवतपुराण में शब्दान्तर से इस प्रकार आयी है—

ब्रह्मा के पुत्र अत्रि अपने गुणों के कारण ब्रह्मा जी के ही समान थे। उन्हीं अत्रि के नेत्रों से अमृतमय चन्द्रमा का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को ब्राह्मण, औषधि और नक्षत्रों का अधिपति बना दिया। चन्द्रमा ने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त की और राजसूय यज्ञ किया। इससे उनका अहङ्कार बढ़ गया

और उन्होंने बलपूर्वक बृहस्पति की पत्नी तारा का हरण कर लिया। देवगुरु बृहस्पति ने अपनी पत्नी को लौटा देने के लिये उनसे बार-बार याचना की, परन्तु वे इतने मतवाले हो गये थे कि उन्होंने किसी प्रकार उनकी पत्नी को नहीं लौटाया। ऐसी परिस्थिति में उसके लिये देवता और दानवों में घोर संग्राम छिड़ गया। शुक्राचार्य जी ने बृहस्पति के द्वेष से असुरों के साथ चन्द्रमा का पक्ष ले लिया, तब महादेव भगवान् शंकर स्नेहवश समस्त भूतगणों के साथ अपने विद्यागुरु अङ्गिरा जी के पुत्र बृहस्पति का पक्ष लिया। देवराज इन्द्र ने भी समस्त देवताओं के साथ अपने गुरु बृहस्पति का ही पक्ष लिया। इस प्रकार तारा के निमित्त से देवता तथा असुरों का संहार करने वाला भयङ्कर संग्राम हुआ।

तदनन्तर अङ्गिरा ऋषि ने ब्रह्माजी के पास जाकर इस युद्ध को बन्द कराने की प्रार्थना की। इस पर ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को बहुत डाँटा-फटकारा और तारा को उसके पति बृहस्पति को लौटा दिया। जब बृहस्पति को यह मालूम हुआ कि तारा गर्भवती है, तब उन्होंने कहा— हे दुष्टे! मेरे क्षेत्र में यह तो किसी दूसरे का गर्भ है। इसे तू अभी त्याग दे, तुरन्त त्याग दे। डर मत, मैं तुझे जलाऊँगा नहीं; क्योंकि एक तो तुम स्त्री हो दूसरे मुझे भी सन्तान की कामना है। देवी होने के कारण तू निर्दोष भी है ही। अपने पति की बात सुनकर तारा अत्यन्त लज्जित हुई। उसने सुवर्ण के समान चमकता हुआ एक बालक अपने गर्भ से अलग कर दिया। उस बालक को देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों ही मोहित हो गये और चाहने लगे कि यह हमें मिल जाय। अब वे एक दूसरे से इस प्रकार जोर-जोर से झगड़ा करने लगे कि 'यह तुम्हारा नहीं, मेरा है'। ऋषियों और देवताओं ने तारा से पूछा कि 'यह किसका लड़का है।' परन्तु तारा ने लज्जावश कोई उत्तर नहीं दिया। बालक ने अपनी माता की झूठी लज्जा से क्रोधित होकर कहा— 'दुष्टे! तू बतलाती क्यों नहीं, तू अपना कुकर्म मुझे शीघ्र-से-शीघ्र बतला दे।' उसी समय ब्रह्माजी ने तारा को एकान्त में बुलाकर बहुत कुछ समझा-बुझाकर पूछा। तब तारा ने धीरे से कहा कि 'चन्द्रमा का' इस लिये चन्द्रमा ने उस बालक को ले लिया। ब्रह्माजी ने उस बालक का नाम रखा **'बुध'**; क्योंकि उसकी बुद्धि बड़ी गम्भीर थी। ऐसा पुत्र प्राप्त करके चन्द्रमा को बहुत आनन्द हुआ। बुध के द्वारा इला के गर्भ से पुरूरवा का जन्म हुआ। पुरूरवा

और उर्वशी का प्रसङ्ग भी विलक्षण एवं प्रसिद्ध है (वा.पु., उत्तरार्द्ध, अ. २८, भा.पु., ९०.१४)।

इस प्रकार चन्द्रमा के आचरण से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उन्हें अपना लिया और माथे पर लगा लिया। यह है भगवान् शंकर की चन्द्रधारण लीला, यह आप सभी का कल्याण करे।



१२. जलन्ध्वध लीला

एक समय इन्द्र आदि सभी देवताओं ने शंकर के दर्शन के लिये एक सभा की। उस सभा में ग्यारहों रुद्र, बारहों सूर्य, आठों वसु, तेरहों विश्वेदेव, उनचास पवन एवं सभी दिक्पाल उपस्थित थे। सम्पूर्ण सभासदों को लेकर बड़े उत्सव के साथ इन्द्र रजोगुण धारण किये हुए शिवजी के दर्शन के लिये चले। दर्शन का एकमात्र प्रयोजन संसार में यश प्राप्त करना था। यह जानकर भगवान् शंकर ने लीला करके अपना स्वरूप भयंकर बना कर अवधूत के समान इन्द्र के नगर में ही प्रकट हो गये। भयंकर वेश वाले पुरुष को देखकर इन्द्र ने पूछा कि तुम कौन हो? प्रतीत होता है कि तुम भूतपति शंकर के सेवकों में कोई हो। बतलाओ, शंकर किस स्थान पर रहते हैं? इस प्रकार इन्द्र ने अनेकों बार पूछा। परन्तु उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तदनन्तर इन्द्र ने बहुत क्रोधित होकर कहा— क्या तुम कोई भूत तो नहीं हो? जो पूछने पर कोई उत्तर नहीं दे रहे हो। अब मैं अपने वज्र से तुम्हें मार डालता हूँ।

यह कहकर इन्द्र ने देवाधिदेव शंकर पर वज्र का प्रहार कर दिया। इन्द्र का वज्र भगवान् शंकर के गर्दन में जा लगा। वज्र की शक्ति को स्थिर करने के लिये वे **'नीलकण्ठ'** हो गये। श्यामचिह्न कण्ठ को धारण करते ही वज्र जलकर भस्म हो गया। उस समय पशुपति का तेज इतना बढ़ा कि चारों ओर दाह फैल गया। सभी देव-देवियाँ जलने लगे। यह दशा देख सभी भय से कम्पित हो गये। तदनन्तर बृहस्पति ने सदाशिव का ध्यान किया। भगवान् शिव को पहचान कर उनकी स्तुति करने लगे। यह देखकर सभी देवता भी स्तुति करने लगे। देवताओं ने कहा— हे ईश्वर! हमारे दोष को क्षमा करें। हम आपके दर्शन के लिये ही उत्सुक थे। परन्तु आपने स्वयं कृपा करके गुप्त रीति से बिना परिश्रम के ही हमलोगों को दर्शन दिया। इस प्रकार देवताओं की स्तुति सुनकर भगवान् भूतभावन प्रसन्न होकर बोले— हे देवगुरु बृहस्पति! तुम्हारी स्तुति सुन कर हम बहुत प्रसन्न हैं। वर माँगो।

भगवान् गिरिजेश को प्रसन्न जानकर देवगुरु बृहस्पति ने कहा— हे स्वामिन्! आप अपना क्रोध दूर कर इन्द्र की रक्षा करें। आपके भाल पर तेजरूप नेत्र की तीक्ष्णता दूर हो जाये। यह वचन सुनकर पशुपति ने कहा— हे बृहस्पति! हमारे नेत्र से जो अग्नि निकली है, उसे मैं किसी प्रकार भी अपने भाल में स्थान नहीं दे सकता। क्या सर्प अपने केंचुल को त्याग कर फिर उसको स्वयं धारण कर सकता है। फिर भी हम कृपा कर उस तेज को बहुत दूर फेंक देंगे, जिससे इन्द्र को कष्ट प्राप्त न हो। हे बृहस्पति! तुमने इन्द्र को जीव-दान दिया है। इसलिये तुम्हारा नाम **'जीव'** प्रसिद्ध होगा। यह सुनकर बृहस्पति और इन्द्र आदि सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर भूतपति ने अपने हाथ से उस तेज को समुद्र में फेंक दिया और वहीं अन्तर्धान हो गये। तब सभी देवता जय-जयकार करते हुए अपने-अपने धामों को चले गए।

जब भगवान् शंकर ने अपने नेत्र से निकले तेज को दूर फेंक दिया, तो वह सागर में गिरा। गिरते ही बालक के स्वरूप में प्रकट होकर अतिभयानक रोदन करने लगा। उसके शब्द से पृथिवी काँप उठी। वह शब्द चारों ओर फैल गया। सभी आश्चर्य करने लगे, पर्वत चलायमान हो गये, समुद्र सूख गये। तब देवता और मुनि आश्चर्यचकित होकर ब्रह्मा के पास जाकर कहने लगे— हे ब्रह्मन्! यह कैसा शब्द है, कहाँ से आ रहा है? इसे दूर करें, जिससे देवताओं को आनन्द प्राप्त हो। तदनन्तर ब्रह्मा ने कहा— हे देवों! यह शब्द सुनकर हम भी आश्चर्य में पड़े हैं। तुम सब अपने-अपने धामों में जाओ, जहाँ से यह शब्द आ रहा है, वहाँ हम जायेंगे। यह कहकर सभी देवताओं को विदा कर ब्रह्मा शब्द को ढूँढ़ते हुए समुद्र के तट पर गये। वहाँ ब्रह्मा ने देखा कि एक अति सुन्दर बालक पड़ा हुआ है। उन्होंने निश्चय किया कि वह शब्द इसी का था। ब्रह्मा को समुद्र तट पर आया हुआ देखकर समुद्र पुत्र समेत उनके समीप आया और प्रणाम कर उस लड़के को ब्रह्मा की गोद में दिया।

इसके बाद ब्रह्मा ने समुद्र से पूछा कि यह किसका पुत्र है? तदनन्तर समुद्र ने कहा— हे ब्रह्मन्! यह बालक समुद्र से उत्पन्न हुआ है, इसलिये यह हमारा पुत्र है। आप इसका नामकरण आदि संस्कार कर दीजिये। यह वार्ता हो ही रही थी कि उस लड़के ने ब्रह्मा की दाढ़ी पकड़ कर इतनी जोर से

खींची कि उनके आँख से आँसू निकल पड़े। तदुपरान्त बड़ी युक्ति से उन्होंने अपनी दाढ़ी छुड़ायी। तब ब्रह्मा ने समुद्र से कहा— हे तोयनिधि! तुम्हारा यह पुत्र अति बलिष्ठ होकर तुम्हारी कीर्ति को सभी देशों में बढ़ायेगा। इसने हमारी दाढ़ी को पकड़ कर इतने जोर से खींची कि आँसू बहने लगे, इससे इसका नाम जलन्धर होगा। यह शीघ्र ही युवा होकर वेदों को जान लेगा। यह कहकर ब्रह्मा ने शुक्र को बुलाया और उत्सवपूर्वक उसका राज्याभिषेक करके ब्राह्मणों को बहुत दान दिया। जालन्धरी नगरी उसकी राजधानी हुई। इसके बाद ब्रह्मा ने जलन्धर से कहा— हे जलन्धर! तुम्हारे कुल के गुरु शुक्र होंगे। यह कहकर ब्रह्मा वहीं अन्तर्धान हो गये।

इस प्रकार जलन्धर जालन्धरी नगरी को बसाकर रहने लगा। एक समय समुद्र ने दैत्यों के राजा कालनेमि को बुलाकर अपने पुत्र जलन्धर की शक्ति का वर्णन किया। उसके पराक्रम को सुन कर कालनेमि कुल समेत अति प्रसन्न हुआ। इसके बाद उसने इच्छा की कि अपनी पुत्री का विवाह जलन्धर से कर दूँ। तदुपरान्त दैत्यगुरु शुक्र की सम्मति लेकर बड़ी धूम-धाम से विवाह भी सम्पन्न हो गया। इन दोनों कुलों में सम्बन्ध हो जाने के कारण अतिप्रीति और मित्रता बढ़ गयी। जलन्धर तो पहले ही अति बलवान् था, फिर जब शुक्र से सहायता मिल गयी, तो उसने तीनों लोकों को अपने अधीन कर लिया। इसके बाद पुत्र के समान प्रजा का पालन करने लगा। जो दैत्य भाग कर पाताल में स्थित हुए थे, वे भी जलन्धर की आज्ञा से निर्भय होकर उसके समीप आ पहुँचे और प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। जलन्धर ऐसा राजा हुआ कि उसके राज्य में किसी प्रकार का पाप नहीं होता था। तीनों लोकों में उसकी आज्ञा की अवज्ञा करने वाला कोई नहीं था। प्रतापशाली जलन्धर अच्छे लोगों को सुख देने वाला एवं बुरों के लिये दुःखदायी था। उसने वर्णानुकूल धर्माचरण की व्यवस्था सुदृढ़ कर दी। कोई भी कुमार्गी नहीं था। इस तरह उसका प्रताप और तेज तीनों भुवनों में फैल गया।

एक समय जलन्धर अपनी सभा में बैठा था। सभी दैत्य एवं शुक्र आदि भी उस सभा में बैठे थे, उसी समय राहु शीशरहित सभा में आये। उनको देखकर आश्चर्य करते हुए जलन्धर ने शुक्र से पूछा— हे गुरुदेव! इनका शिर किसने काटा है। तदनन्तर शुक्र ने समुद्रमन्थन से प्राप्त अमृत-पान की

पुरातन कथा सुनाते हुए कहा— हे जलन्धर! जब विष्णु छलपूर्वक दैत्यों को मद्य पिलाकर देवताओं को अमृत पिला रहे थे, उस समय राहु ने देवताओं के साथ बैठकर अमृत पी लिया, तब विष्णु ने उसका सिर काट डाला। उस समय देवताओं और दैत्यों से बड़ा युद्ध हुआ, जिसमें करोड़ों दैत्यों के स्वामी मारे गये और जो शेष बचे, वे पाताल में चले गये, उस समय वे भयभीत थे। परन्तु जबसे आपका अवतार हुआ है और आप राजा हुए हैं, तब से दैत्यों को पाताल से प्रकट होने का समय मिला है। यह सुनकर जलन्धर अति क्रोधित हुआ कि उसके पिता समुद्र का देवताओं ने मन्थन किया है। क्रोध के कारण उसके नेत्र लाल हो गये। वह दाँतों से अपने ओठ चबाने लगा।

इसके बाद जलन्धर ने घस्मर नामक दूत को बुलाकर कहा कि तुम इन्द्र के पास निर्भय होकर जाकर कहो कि तुमने हमारे पिता समुद्र को क्यों मथा था। उनके सभी रत्न निकाल लिये। तुमने देवताओं समेत अमृत का पान कर दैत्यों को मद्य पिलाया है। पुनः छल से दैत्यों को परास्त किया है। जलन्धर के आदेश से वह दूत इन्द्र की सभा में गया और अहङ्कार से अपना सिर झुकाये बिना ही इन्द्र से बोला— हे देवराज! समुद्र के पुत्र जलन्धर ने तुमको यह सन्देश भेजा है कि जो रत्न तुमने समुद्र से निकाल लिये हैं, उन्हें हमको सौंप दो, अन्यथा इसका अच्छा परिणाम नहीं होगा। इन्द्र यह सब सुनकर जलन्धर को बड़ा बलवान् और पराक्रमी समझकर कुछ तो भयभीत हुए, फिर भी क्रोधित होकर उस दूत से कहा— हे घस्मर! तुम जाकर जलन्धर से कहो कि किसी समय पहाड़ों ने उड़कर हमारे लोक को नष्ट कर दिया था। हमने पर्वतों के पंख काट डाले। जो शेष रह गये, वे डूबकर समुद्र में छिप गये। समुद्र ने उनकी रक्षा की। हमारे अन्य दैत्य शत्रुओं को भी समुद्र ने स्थान दिया था। इसलिये हमने समुद्र को मथा था। पूर्व में देवताओं का एक अन्य शत्रु उत्पन्न हुआ था, जिसको शङ्खासुर कहते हैं, हमने उसे भी तुम्हारे समान अपना प्रताप दिखाया था और हमारे भाई ने उसका वध कर डाला था। इसलिये हे दूत! जलन्धर से कह देना कि क्यों बुद्धिहीन होकर ऐसे दुर्विचारों में पड़ता है। क्या वह हमारे बल और प्रताप को किसी से नहीं सुनता है? हमने बड़े-बड़े दैत्यों को अपने छोटे भाई की सहायता से मार डाला है।

इस प्रकार इन्द्र की बात सुनकर दूत ने पुन: कहा— हे इन्द्र! अब तुम अहङ्कार मत करो, क्योंकि आज जलन्धर ने सम्पूर्ण संसार का राज्य प्राप्त कर लिया है। उसीके अधीन सम्पूर्ण संसार है। अत: तुमको उचित है कि गर्व को छोड़कर सब रत्न जलन्धर को सौंप दो। तुम जलन्धर की छाया में रह कर सदा आनन्द से जीवन व्यतीत करो। अन्यथा तुमको बहुत ही कष्ट होगा। तदनन्तर इन्द्र ने क्रोध करके कहा— हे दूत! जो मैंने पहले कहा है, उसी बात को जाकर जलन्धर से कह दो। तुम अधिक वार्ता क्यों करते हो? यह सुन इन्द्र से बिदा होकर दूत ने जाकर जलन्धर से सम्पूर्ण वार्ता बतला दी। इन्द्र की वार्ता को सुनकर जलन्धर क्रोधरूपी अग्नि में जल उठा और उसके ओठ फड़कने लगे।

इसके बाद जलन्धर ने अति क्रोधित होकर देवताओं को परास्त करने के लिये दैत्यों की एक भारी सेना एकत्रित की। शुम्भ-निशुम्भ के समान उस सेना में यूथप थे। कालनेमि भी अन्य यूपथों के साथ आया। ऐसी सेना लेकर जलन्धर देवलोक के लिये चल पड़ा। उस समय पृथिवी काँप उठी, मार्ग में भयङ्कर गर्जना करते हुए दैत्यों ने देवलोक में पहुँचकर चारों ओर से उसको घेर लिया। यह देखकर इन्द्र भी क्रोधित होकर गुरु बृहस्पति से आज्ञा लेकर देवताओं की सेना लेकर अपने पुर से बाहर निकल पड़े। दोनों सेना परस्पर लड़ने लगी। अनेक प्रकार के शस्त्र चलने लगे। देवता और दैत्य उत्साहपूर्वक परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। खून की नदी बह चली। युद्धस्थल में लाशों का ढेर लग गया। परन्तु देवताओं द्वारा मारे गये दैत्यों को शुक्र मृतसञ्जीवनी विद्या की शक्ति से जीवित कर देते थे। इसी प्रकार द्रोणगिरि से जिलाने वाली औषधि ले जाकर देवगुरु बृहस्पति भी देवताओं को जीवित कर देते थे।

जलन्धर ने देखा कि देवता मर कर पुन: जीवित हो जाते हैं, तो बहुत क्रोधित हुआ और जाकर दैत्यगुरु शुक्र से विनयपूर्वक पूछा— हे गुरुदेव! हमने बहुत देवताओं को मारा, परन्तु वे सब जीवित हो जा रहे हैं। हम जानते थे कि सञ्जीविनी विद्या केवल आप ही जानते हैं। यह सुनकर शुक्र ने कहा— द्रोणगिरि पर्वत पर जिलाने वाली एक पवित्र औषधि है। उसको लाकर बृहस्पति देवताओं को जिला देता है। यदि तुम विजय की इच्छा रखते हो, तो द्रोणगिरि को ही जड़ से उखाड़ कर समुद्र में डाल दो। तदनन्तर

जलन्धर ने प्रसन्न होकर द्रोणपर्वत को मूल से उखाड़ कर समुद्र में डाल दिया। पुनः युद्धस्थल में जाकर हस्तलाघव दिखाते हुए युद्ध करने लगा। अब युद्ध में मरे हुए दैत्यों को तो शुक्र जिलाने लगे, परन्तु देवताओं को जिलाने के लिये बृहस्पति औषधि प्राप्त करने हेतु द्रोण पर्वत की ओर गये। वहाँ उसे न पाकर निराश हो लौट आये और देवताओं से कहा— हे देवों! युद्ध बन्द करो। जलन्धर बहुत बलवान् है। वह रुद्र की नेत्राग्नि से उत्पन्न है। उसे परास्त नहीं किया जा सकता। देखो, इसने पहाड़ को मूल से खोद डाला है।

देवगुरु बृहस्पति का वचन सुनकर देवता युद्धस्थल से भाग चले और जिसको जहाँ जगह मिली, वह वहीं जा छिपा। देवताओं की यह दशा देखकर दैत्य भयानक नाद करते हुए विजय के बाजे बजाने लगे। जलन्धर देवताओं के पुर में जाकर राज्य करने लगा। इस प्रकार जहाँ पर देवताओं की राजधानी थी, वहाँ दैत्यों ने अपनी राजधानी बनायी। चन्द्र, अनल, यम, कुबेर, सोम, सूर्य, पवन आदि सभी देवताओं के पद पर दैत्यों को नियुक्त कर दिया। प्रतापी एवं शक्तिमान् जलन्धर पुत्र के समान प्रजा का पालन करने लगा। शुम्भ आदि दैत्यों को राज्य का भार समर्पित कर स्वयं सेना लेकर देवताओं को खोजने के लिए सुमेरु पर्वत पर गया।

जलन्धर को आते हुए देखकर देवता घबड़ा कर भगवान् विष्णु का स्मरण करने लगे। उनकी स्तुति करते हुए देवताओं ने कहा— हे उपेन्द्र! आपने देवताओं को दुःखी देखकर उनके दुःख को दूर करने के लिये मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह आदि विलक्षण अवतार धारण किये हैं। आपने देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए ही वामन बनकर बलि के साथ छल किया है। आपने परशुराम, राम और कृष्ण का अवतार लेकर पृथिवी के भार को उतारा है। जब दैत्यों ने वेदों को छीन लिया और पृथिवी म्लेच्छों से पूर्ण हो गयी, तब आपने बौद्ध रूप धारण कर वेदों की निन्दा कर दैत्यों की बुद्धि भ्रष्ट कर दी। आपने कलियुग में कल्कि अवतार धारण कर सभी म्लेच्छों को नष्ट करने का वचन दिया है। इस प्रकार आप भक्तों के लिए असंख्य अवतार धारण कर उनके दुःख दूर किया करते हैं। आप स्वयं कष्ट सह कर भक्तों को आनन्द प्रदान करते हैं। आप अपने पीतवसन की झलक दिखाकर हमारे दुःख को दूर करें। इस प्रकार देवताओं ने विष्णु की स्तुति की।

देवताओं की स्तुति सुनते ही विष्णु उठकर गरुड पर सवार होकर शीघ्रता से जाने के लिए उद्यत हुए। उस समय लक्ष्मी ने पूछा कि आप इतनी जल्दी कहाँ जाने के लिए उद्यत हो गये हैं। लक्ष्मी को उत्तर देते हुए विष्णु ने कहा— समुद्रतनये! तुम्हारे भाई जलन्धर ने देवताओं पर युद्ध के लिए चढ़ाई कर दी है। देवता हमारी स्तुति कर रहे हैं। मैं उनकी रक्षा करने के लिए दैत्यों से युद्ध करने के लिए जा रहा हूँ। जलन्धर के प्रेम के कारण लक्ष्मी ने कहा कि हमारे भाई को आप किस तरह मारेंगे। तब विष्णु ने कहा— हे लक्ष्मी! जलन्धर बड़ा बलिष्ठ है, वह रुद्र का अंश है, ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर देवताओं को कष्ट दे रहा है। वह मेरे मारने से नहीं मरेगा। परन्तु मैं नहीं जाता, तो मेरा नाम मिट जायेगा। वेद का मार्ग भ्रष्ट हो जायेगा। यह कह कर शङ्ख, चक्र, गदा, असि और बाण धारण कर विष्णु गरुड पर सवार होकर जलन्धर के समीप पहुँच गये।

उस समय गरुड ने शीघ्र ही अपने पंखों को डुलाया। जिस प्रकार पवन मेघों को उड़ा देता है, उसी प्रकार गरुड के पंख की वायु ने दैत्यों को उड़ा दिया। पवन से दैत्यों को दुःखी देखकर जलन्धर ने बहुत क्रोध किया और सिंह के समान विष्णु पर टूट पड़ा। विष्णु और जलन्धर में भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। दोनों ओर से चले बाणों से आकाश ढ़क गया। विष्णु ने जलन्धर के रथ वाले घोड़े, छत्र, ध्वजा और धनुष को काट कर शङ्खध्वनि की। तदनन्तर क्रोधित होकर विष्णु ने जलन्धर के हृदय में एक बाण मारा। जलन्धर ने भी गरुड के सिर पर भयङ्कर गदा का प्रहार किया, जिसे न सहकर गरुड धरती पर गिर पड़े। फिर भी निर्भय होकर विष्णु ने असि से जलन्धर की गदा को काट गिराया। जब जलन्धर ने क्रोधित होकर विष्णु के हृदय पर एक तमाचा मारा और फिर दोनों लिपट गये। परन्तु जब दोनों में से कोई न हारा, तब प्रलयकालीन बादल के समान गरजते हुए विष्णु ने कहा— हे जलन्धर! हमने तीनों लोकों में तुम्हारे समान कोई वीर नहीं देखा। तुम्हारे अलावा अन्य कोई हमारे बल और तेज को नहीं सह सकता। मैं तुम्हारे पराक्रम से अति प्रसन्न हूँ। हमसे तुम वरदान माँग लो।

भगवान् विष्णु के वचन को सुनकर जलन्धर ने कहा— पीताम्बरधारी हे विष्णु! हम आप से यही वरदान माँगते हैं कि हमारी बहन लक्ष्मी के साथ

आप हमारे घर में आकर स्थित रहें। इसी प्रकार सभी देवता भी हमारे अधीन होकर हमारे घर में निवास करें। जलन्धर के इस प्रकार के वचन को सुनकर विष्णु अति दु:खी हुए। परन्तु उसके वचन को मानकर जलन्धर के घर में स्थित हो गये। इस प्रकार जलन्धर तीनों लोक को जीत कर बड़े आनन्द से रहने लगा।

इसके बाद जलन्धर ने सभी देवताओं, दिक्पालों को बुलाकर अपने नगर में प्रजा के समान बसा दिया। संसार में जितने बहुमूल्य रत्न, विचित्र एवं अद्भुत पदार्थ, ऐरावत हाथी, उच्चै:श्रवा घोड़ा और नन्दन वन के कल्पवृक्ष को भी छीन लिया। यहाँ तक कि वरुण का छत्र, प्रजापति का रथ, अनल का अंकुश छीन कर उसने अपने अधीन कर लिया। जलन्धर पुत्र के समान प्रजा का पालन करते हुए दैत्यों में अद्वितीय गिना जाने लगा। उसके राज्य में प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। सभी वर्ण एवं आश्रम धर्म का पालन करते हुए वेदों के बताये मार्ग पर चलते थे। कोई मनुष्य अधर्मी न था। कोई भी मनुष्य अकालमृत्यु को न प्राप्त करता था। उसके राज्य में छल-छिद्र तो था ही नहीं। कोई दरिद्री न था। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि भगवान् शिव की लीला ऐसी बलवती है।

जलन्धर के राज्य में देवताओं के अतिरिक्त अन्य किसी के मन में कष्ट न था। एक दिन सभी देवता एकत्रित होकर भगवान् शंकर का स्मरण और ध्यान करते हुए स्तुति करने लगे। देवताओं ने कहा— हे देवाधिदेव भगवन् शिव! हम लोगों के पास अब कोई अन्य उपाय शेष नहीं रह गया है। अब तो आपकी ही कृपा होनी चाहिये; क्योंकि भगवान् विष्णु भी अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ जलन्धर के घर में ही रह रहे हैं। अब आपके अतिरिक्त हमलोगों का काई अन्य शरण नहीं है। इसलिए हमलोग आपको कष्ट दे रहे हैं। यह सुनकर आकाशवाणी के माध्यम से भगवान् शिव ने कहा— हे देवताओं! आप लोग कुछ भय न करें, हम आप लोगों की अभिलाषा पूर्ण करेंगे। यह सुनकर देवतालोग प्रसन्न हो गये।

इसके बाद भगवान् शंकर ने महामुनि नारद के मन में प्रेरणा दी। जिससे नारद ने जलन्धर के राज्य में जाकर विष्णु आदि देवताओं को देखा। जलन्धर ने भी नारद को देखकर अगवानी की और आदरपूर्वक उनका

सत्कार किया। कुशल प्रश्न के बाद उसने नारदमुनि के आगमन का प्रयोजन पूछा। तदुपरान्त उसने नारद से कहा— हे महामुनि नारद! आप भ्रमणशील हैं। आपने संसार में यदि कोई आश्चर्यजनक चरित्र देखा हो, तो उसका वर्णन करें। जलन्धर के वचन को सुनकर नारद ने कहा— हे जलन्धर! एक दिन मैं कैलास पर गया, जो सृष्टि में श्रेष्ठ है। शिव के प्रणाम एवं स्तुति के उपरान्त वहाँ इतनी सामग्री देखकर आश्चर्यचकित होकर रह गया। विचार किया कि इतनी सामग्री तो किसी के यहाँ नहीं होगी। यह तुलना करने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। यह सुनकर जलन्धर ने अपनी सम्पूर्ण सामग्री नारद मुनि को दिखायी। तदनन्तर नारद ने कहा— हे जलन्धर! तुम्हारे घर में सभी रत्न वर्तमान हैं। किन्तु यहाँ एक दारारत्न नहीं है। शिवजी के घर ऐसी स्त्री है, जिसके समान संसार में अन्य कोई स्त्री नहीं है। उसकी सुन्दरता पर ब्रह्मा भी मोहित हुए थे। उसकी उपमा किससे दी जाय? कामदेव के शत्रु शिवजी को भी जिसने अपनी सुन्दरता से वश में कर लिया है। ब्रह्मा ने बहुत प्रयत्न किया कि शिवरानी के समान दूसरी स्त्री बनायें, पर वैसा वे न बना सके। यह कहकर वहाँ से विदा लेकर नारद मुनि चले गये।

इसके बाद जलन्धर कामज्वर से पीड़ित होकर दु:खसागर में डूब गया। काम के वशीभूत हो भगवान् शंकर को अन्य देवताओं के समान समझ कर राहु को दूत बना कर शिवजी के समीप भेजा। शिव की लीला बड़ी आश्चर्य देने वाली है, उनके असंख्य चरित्र हैं। उन्होंने लीला करने के लिए जलन्धर के ज्ञान को हरण कर लिया। राहु अपने स्वामी की आज्ञा पाकर कैलास पर गया। वहाँ छ: ड्योढ़ी को पार कर सातवें दरवाजे पर गया, जहाँ गायों के राजा नन्दी द्वारपाल बनकर बैठे थे। वहाँ नन्दी ने राहु को रोक दिया। तदुपरान्त शिव की आज्ञा लेकर नन्दी राहु को उनके समीप ले गया। शिव की आज्ञा पाकर राहु ने कहा— हे शंकर! इस समय जलन्धर सबसे श्रेष्ठ है। जिसके अधीन सभी देवता एवं विष्णु भी हैं। आप उसकी आज्ञा को सुनें। उसने कहा है कि आप तो तपस्वी हैं, नग्न शरीर श्मशान में निवास करते हैं। हड्डियों की माला पहन कर अवधूत के समान विचरण करते रहते हैं। तुम तो भोग-विलास से प्रयोजन नहीं रखते। तुमको ऐसी कोमलाङ्गी स्त्री से क्या प्रयोजन? तुम तो वन में रहने वाले हो। ऐसी स्त्री तो हमको चाहिये, इससे उचित है कि ऐसी स्त्रीरत्न को हमको दे दो।

इस प्रकार जलन्धर के सन्देश को सुनकर भगवान् शंकर अत्यधिक कुपित हुए। शीघ्र ही भगवान् शिव की भौंहों से उत्पन्न होकर एक मनुष्य आगे खड़ा हो गया। उसका शरीर अत्यन्त भयानक, वज्र के समान कठोर, सिंह के समान स्वरूप, तीक्ष्ण जिह्वा, जलती हुई अग्नि के समान उसके सभी बाल खड़े थे। वह भयानक जीव शिव की इच्छा समझ कर राहु को निगल लेने के लिए आगे बढ़ा। यद्यपि राहु जीव बचाने के लिये भागा, परन्तु उस जीव ने उसे पकड़ लिया। राहु काँपते हुए भगवान् शंकर से कहा— हे देवेश! मुझको ब्राह्मण समझ कर इससे मेरी रक्षा करें। यह मुझे खाना चाहता है। मैं तो आपका ब्राह्मण हूँ।

तदुपरान्त राहु के विनयपूर्ण वचन को सुनकर शिवशंकर ने उसे छोड़ देने की आज्ञा दी। परन्तु भगवान् शंकर के समीप आकर उसने कहा— हे भगवन्! मैं बहुत भूखा हूँ। मेरे लिए कुछ भोजन बतला दीजिये। भूख की आग से मैं जला जा रहा हूँ। उस जीव के वचन को सुनकर भूतभावन रुद्र ने कहा— यदि तुम बहुत भूखे हो, तो अपने ही अङ्गों को खा लो। शिव की आज्ञा पाकर उसने शिर को छोड़कर अपने सभी अङ्गों को खा लिया। यह देखकर भगवान् शंकर अति प्रसन्न हो आश्चर्यपूर्वक बोले— हे जीव! मैं तुम्हारी आज्ञा पालन की प्रवृत्ति से अति प्रसन्न हूँ। आज से तुम्हारा नाम **'कीर्तिमुख'** होगा। तुम हमारे द्वारपाल रहोगे। जो कोई व्यक्ति तुम्हारी पूजा किये बिना हमारा दर्शन करना चाहेगा, उसे मैं स्वप्न में भी दर्शन नहीं दूँगा।

उसी दिन से कीर्तिमुख भगवान् शंकर के द्वार पर रहते हैं। कीर्तिमुख की पूजा किये बिना शंकर की पूजा नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। उधर राहु कीर्तिमुख के हाथ से छूट कर ऐसे भागा कि कैलास पर्वत की एक खाई में गिर पड़ा, जिससे उसके अङ्ग-भङ्ग हो गये। किसी तरह जलन्धर के समीप पहुँच कर उसने सभी समाचार कह सुनाया।

दूत के वचन को सुनकर जलन्धर अतिकुपित हुआ और दैत्यों को आज्ञा दी कि इसी समय शिव के कैलास पर्वत पर चढ़ाई करें। तदनन्तर सभी सेनाधिपति अपनी-अपनी चतुरङ्गिणी सेना लेकर युद्ध के लिये चल पड़े। उस समय जलन्धर की पत्नी ने बहुत समझाया और हाथ जोड़कर मना करते हुए कहा कि हे स्वामिन्! आज तक शिव से युद्ध कर कोई जीता नहीं है। परन्तु

मृत्यु के वश में होने के कारण जलन्धर उसके बहुत कहने पर भी एक नहीं माना। जब मृत्यु आती है, तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जो मनुष्य स्त्री, ब्राह्मण का आदर नहीं करता, वह काल के मुख में पड़ जाता है। दैत्यगुरु शुक्र को आगे कर जलन्धर ने कैलास के लिए प्रस्थान किया। उस समय उसके सिर से मुकुट गिर पड़ा और अनेक अपशकुन होने लगे। उसकी सेना के सेनापति शुम्भ और निशुम्भ नियुक्त हुए। कालनेमि भी अपनी सेना लेकर चला। जलन्धर सेना सहित कुछ दूर नगर से बाहर गया, तब विष्णु ने बुलाकर देवताओं से कहा— हे देवों! अब कष्ट दूर होने का समय आ गया है। आप लोग गुप्तरूप से शिव के समीप जाकर जलन्धर की चढ़ाई का समाचार निवेदन करें।

इसके बाद देवता लोग छिपे छिपे भगवान् शंकर के पास पहुँचकर स्तुति करने लगे और देवताओं ने जलन्धर के वध की इच्छा प्रकट की। तदनन्तर देवाधिदेव भगवान् शिव प्रसन्न होकर देवताओं से बोले— हे देवों! आप लोग धैर्य रखें, अब आप लोगों को कोई कष्ट न होगा। इसके बाद विष्णु से कहा— हे विष्णु! आपने जलन्धर को क्यों नहीं मारा। आप वैकुण्ठ छोड़कर क्यों उसके घर में रह रहे हैं। भगवान् शंकर का वचन सुनकर विष्णु ने कहा— हे देवदेव! जलन्धर बहुत बलवान् है। कोटि यत्न करने पर भी वह अन्य से नहीं मारा जा सकता है; क्योंकि वह आपका अंश है। इसलिये उस पर कोई शस्त्र काम नहीं करता। मैंने उसके साथ बहुत युद्ध किया, परन्तु वह नहीं मरा। हे प्रभु! वह आपसे ही मर सकता है। कृपा कर आप उसका वध करें। आप त्रैलोक्य के स्वामी हैं।

भगवान् विष्णु के वचन को सुनकर भगवान् शिव ने कहा— हे विष्णु! जलन्धर हमारे अंश से उत्पन्न हुआ है। इसलिये उस पर हम त्रिशूल नहीं चला सकते। त्रिशूल के अतिरिक्त अन्य अस्त्र-शस्त्र उस पर काम नहीं करेंगे। इसलिये हमने एक उपाय सोचा है। आप सभी देवता अपना-अपना तेज देते जाओ, इससे हम उसका एक शस्त्र बनायेंगे। उसी शस्त्र से जलन्धर को जलायेंगे। यह सुनकर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवताओं का तेज एकत्रित होकर प्रज्वलित होने लगा, तब भगवान् शिव ने उससे एक शस्त्र बनाया, जिसका नाम **'सुदर्शन चक्र'** रखा गया। वह कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान हो रहा था और अग्नि के समान प्रज्वलित हो रहा था। सुदर्शन

चक्र बनाने से बचे हुए तेज से वज्र बनाया, जिससे देवताओं को अति आनन्द प्राप्त हुआ। अब देवताओं को जलन्धर-वध का पूर्ण विश्वास हो गया।

उसी समय जलन्धर ने कैलास पर्वत पर पहुँच कर सेना सहित एक कन्दरा में डेरा डाल दिया। उसको आया हुआ जान कर सभी देवता छिपे-छिपे अपने-अपने स्थानों पर चले गये। दैत्यसेना के पहुँचने के पूर्व ही भगवान् शंकर के दूत ने आकर बताया कि दैत्यसेना आ रही है। आप जैसा उचित हो, वैसा करें। तदनन्तर भगवान् शिव ने नन्दी, गणपति और वीरभद्र को आज्ञा दी कि तुमलोग गणों के साथ जाकर दैत्यों से युद्ध करो। पशुपति की आज्ञा प्राप्त कर शिवजी के गण चल पड़े।

भगवान् शिव के गण जय शिवशंकर, जय मृत्युञ्जय का जयघोष करते हुए प्रसन्नतापूर्वक गाते बजाते दैत्यसेना से युद्ध करने लगे। युद्धस्थल में ऐसी मार-काट मची कि पृथिवी काँप उठी। अस्थि, मांस और रुधिर से युद्धस्थल पट गया। शिव के गणों द्वारा मारे गये दैत्यों को भृगु अपनी मृतसञ्जीवनी विद्या से जिला देते थे। यह देखकर देवगण दुःखी होकर शिव के समीप जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर भगवान् शंकर ने क्रोधित होकर कहा कि मृत्युञ्जय-मन्त्र प्राप्त कर भृगु ऐसा कार्य कर रहा है। उस समय भगवान् शिव के मुख से कृत्या नामक एक स्त्री निकली, जिसका स्वरूप अति भयानक था। वह शिव की सेना के साथ युद्धस्थल में आयी और भयङ्कर नाद करती हुई दैत्यों को पकड़ कर खाने लगी। दैत्य दुःखी होकर भागने लगे। पुनः कृत्या भृगु को अपनी योनि में दबा कर उड़ गयी और सभी के देखते-देखते आँखों से ओझल हो गयी। कृत्या द्वारा भृगु को उड़ा ले जाने पर दैत्यसेना में हाहाकार मच गया, अब दैत्यसेना बिना मौत के मरने लगी। शिवजी के गण प्रसन्न होकर दैत्यों को चारों ओर से घेर कर सिंह के समान गरजने लगे। दैत्यों ने भागने के अतिरिक्त अन्य उपाय न देखा। दैत्यसेना को भागते हुए देखकर शुम्भ, निशुम्भ और कालनेमि तीनों दैत्यसेनापति अति दृढ़ता से शिव के गणों के साथ युद्ध करने लगे। उन लोगों ने भगवान् शंकर के गणों को मार कर दुःखी कर दिया। सभी लोग भाग चले। इतने में गणपति, नन्दी, वीरभद्र आदि ने दैत्यों को रोककर गणों

को धैर्य बँधाया और तीनों दैत्यसेनापतियों के साथ युद्ध करने लगे। घमासान युद्ध हुआ। अन्त में विजय गणेश जी की हुई, बाजे बजने लगे।

इतने में वृन्दा नामक शुम्भ का पितामह कुपित होकर गणपति के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा। तदनन्तर गणेशजी दौड़कर वृन्दा के समीप पहुँचे। उनके साथ असंख्य भूत, प्रेत, कूष्माण्ड, पिशाच, भैरव, गण, वेताल, डाकिनी, शाकिनी, योगिनी आदि सिंह और हाथियों के समान नाद करते थे। उन लोगों ने सेना समेत वृन्दा को विकल कर दिया। इतने में नन्दी भी वहाँ आ गये और ऐसे बाण छोड़े, जो दैत्यों की ओर सर्प के समान चले, जिससे दैत्यों की सेना नष्ट होने लगी, कुछ तो दैत्यगण खा लिये गये, कुछ दैत्य मारे गये, कुछ मूर्च्छित हुए, कुछ भाग चले। इस प्रकार सब दैत्यों की सेना नष्ट हुई, जो दैत्य शेष बचे, उन्होंने महाराज जलन्धर के पास पहुँच कर रक्षा की गुहार मचायी।

जलन्धर अपनी वीर सेना की ऐसी दुर्दशा देख बड़े क्रोध के साथ रथ पर चढ़ कर कटक सहित गणों की ओर चला। दैत्यों की सेना पुनः संभल कर लड़ने के लिये तैयार हुई। युद्ध के बाजे बजने लगे और दोनों सेना पुनः लड़ने लगी। गणपति, नन्दी और वीरभद्र धनुष, खड्ग, गदा और साङ्ग से प्रहार करते हुए जलन्धर से युद्ध कर रहे थे। जलन्धर वीरतापूर्वक बारी-बारी से सबके साथ युद्ध करते हुए सबको मूर्छित कर दिया। ऐसी दशा देखकर सब गण भागने लगे और शिवजी के समीप जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया।

भगवान् शंकर गणों की दुर्दशा सुनकर शीघ्र ही बैल पर चढ़े और त्रिशूल लेकर दैत्यों की सेना पर चढ़ाई कर दी। युद्ध के बाजे बजने लगे। शिवजी ने अपनी डमरु बजायी। तदनन्तर शिव के गण भी उत्साहित होकर युद्ध के लिये तैयार हो गये। फिर दैत्यों के साथ घमासान युद्ध होने लगा। उस समय भगवान् शंकर ने अपना ऐसा भयानक रूप धारण किया, जिसे देखकर ही दैत्यों की सेना भाग चली। तब दैत्यपति जलन्धर ने सेना की यह दशा देख भगवान् शंकर पर बहुत बाण छोड़े और शुम्भ, निशुम्भ, कालनेमि, हयमुख, असिलोमा, बलाहक, प्रचण्ड आदि एक ही साथ शिव पर चढ़ाई कर बाण चलाने लगे। बाणों की वर्षा से आकाश ढक गया। परन्तु शिवजी ने सब बाणों के जाल को काट कर अपने बाणों से आकाश को

पूरित कर दिया और परशु से असिलोमा के सिर को काट डाला। बलाहक को भी मार डाला। घस्मर को पाश से बाँध लिया।

भगवान् शंकर की लीला विचित्र है। जो सृष्टि कर प्रलय करने वाले हैं। वे संसारी रीति के समान विचित्र लीला करते हैं। शिवजी ने अपना बूढ़ा बैल दैत्यों की सेना में छोड़ दिया, जिसने अपनी सींगों से असंख्य दैत्यों को मार डाला। शेष दैत्य भाग चले। तब जलन्धर ने शुम्भ, निशुम्भ और कालनेमि से कहा— देखो, जो संसार में जन्म लेता है, वह अवश्य ही एक दिन मरता है। उसका कोई निदान नहीं है। फिर ऐसी मृत्यु कौन नहीं चाहेगा, जिससे दोनों लोकों में कीर्ति बढ़े। लोक में दो प्रकार के मृत्यु वाले जीव सूर्यमण्डल को भेदकर स्वर्गलोक को जाते हैं। एक योगी और दूसरे जो युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए तुम लोग मृत्यु के भय को छोड़कर युद्ध करो। परन्तु जलन्धर के वचन से किसी के मन में कुछ भी प्रबोध नहीं हुआ। तब सबको धिक्कारते हुए स्वयं युद्ध के लिये तैयार हो गया।

इसके बाद जलन्धर सिंह के समान गरजते हुए युद्धभूमि में पहुँचा। उसके शब्द से धरती काँप गयी। समुद्र, पर्वत सब थर-थर काँपने लगे। जो दैत्य पहिले भाग गये थे, वे सब लौट आये। जलन्धर ने शिवजी से कहा— हे शंकर! प्रतीत होता है कि तुम कुछ बलशाली हो; क्योंकि तुम हमारे साथ युद्ध करने की इच्छा रखते हो। इसलिये अब तुम अपनी वीरता दिखाओ। यह कहकर उसने शिवजी पर शत्रुबाण चलाया, जिसको शिवजी ने बीच में ही काट गिराया। तदनन्तर भगवान् पशुपति ने सुगमतापूर्वक एक बाण चलाकर जलन्धर के रथ, सारथि और घोड़ों समेत उसके धनुष आदि सबको नष्ट कर डाला। जलन्धर ने अनेक प्रकार से शिवजी पर प्रहार किया, लेकिन उन्होंने सबका प्रतीकार अनायास ही कर दिया। तदनन्तर जलन्धर ने विचार किया कि शिव बड़े बली हैं, इसलिये युद्ध के द्वारा इन पर विजय नहीं मिल सकती। इनके साथ कोई माया करनी चाहिये। शिवजी को नाद प्रिय है। यह सोचकर जलन्धर ने माया के द्वारा गन्धर्व, अप्सरा और किन्नरादि को उत्पन्न कर दिया। वे लोग नानाप्रकार से नृत्य गीत करने लगे। मृदङ्ग, मुरली, वीणा आदि नाना प्रकार के वाद्य बजने लगे। जिसे सुनकर भगवान् शंकर आनन्दमग्न हो गये। नाद तो भगवान् शंकर का रूप ही है, शिवजी नाद से

शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। उस समय उनके हाथों से सभी शस्त्र गिर पड़े। उस तुरीयावस्था में भगवान् शंकर ने कुछ भी नहीं जाना।

इसके बाद जलन्धर ने काम के वशीभूत होकर शिवजी के समान अपना स्वरूप बनाया। जिसके दश भुजा, पाँच मुख, तीन नेत्र थे और माया से एक बैल बनाकर उसके ऊपर चढ़ कर शुम्भ और निशुम्भ को युद्धस्थल में ठहराकर स्वयं गिरिजा के समीप गया। पार्वती ने लोकरीति से उसे शिवजी ही समझा। परन्तु वे सखियों के बीच से उठीं और उसकी माया को जानकर वहाँ से अन्तर्धान हो गयीं। तदनन्तर जलन्धर लज्जित होकर युद्धस्थल की ओर लौट आया। इसके बाद माहेश्वरी उमा ने विष्णु का ध्यान किया, ध्यान करते ही वे वहाँ आ गये। तब गिरिजा ने जलन्धर का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। इसके बाद पातिव्रत धर्म की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि जलन्धर की पत्नी वृन्दा बड़ी पतिव्रता है, उसी के धर्म से जलन्धर नहीं मरता है, क्योंकि पतिव्रता स्त्री विधवा नहीं होती है। इसलिये तुम जलन्धरपुरी में जाकर उसकी स्त्री के पतिव्रत धर्म का नाश करो। जलन्धर की पत्नी वृन्दा के साथ छल करो। इसमें कुछ धर्म का विचार मत करो; क्योंकि धर्मशास्त्र कहता है कि बुरे व्यक्ति के साथ बुराई करने में पाप नहीं लगता। यह सुनकर भगवान् विष्णु जलन्धरपुरी में गये।

इधर जलन्धर गिरिजा के समीप से लौटकर युद्धस्थल में आया और अपनी माया को दूर किया। तदनन्तर भगवान् शंकर चैतन्य होकर युद्ध का स्मरण करने लगे। पुन: युद्ध प्रारम्भ हो गया। दैत्य पतङ्गों के समान भगवान् शिव के प्रहार से मरने लगे।

गिरिजा की आज्ञा से विष्णु जलन्धर की नगरी में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे सोचने लगे कि किस प्रकार जलन्धर की पत्नी का पातिव्रत धर्म नष्ट किया जाय। इसी चिन्ता में विष्णु ने भगवान् शिव का ध्यान किया। उनके ध्यान करते ही उन्हें उपाय सूझ गया। वे तपस्वी का रूप बनाकर एक शिष्य को साथ लेकर जलन्धर की पत्नी वृन्दा के उपवन में गये। उसी रात वृन्दा ने स्वप्न देखा था कि उसका पति जलन्धर मारा गया है। वह तेल लगाये हुए भैंसे पर सवार होकर नग्न और सिर का बाल बनवाये हुए, काले फूलों की माला पहनकर राक्षसों से घिरे हुए यम की दिशा में चला जा रहा है। पुन:

उसने स्वप्न में देखा कि सम्पूर्ण नगर समुद्र में डूबने वाला है और चारों ओर अन्धेरा छा रहा है। यह दुःस्वप्न देखकर उठी, तो सूर्य उदित होते हुए राहु से ग्रस्त प्रकाशहीन दिखाई पड़े। ऐसे अपशकुनों को देखने से वह एकाएक रोने पीटने लगी। घबड़ाहट से इधर-उधर घूमने लगी, परन्तु मन में दुःख को भुला न सकी। अपनी दो सखियों को साथ लेकर जलन्धर के उद्यान में गयी। परन्तु वहाँ भी फूल और फलों को देखकर कुछ हर्ष नहीं हुआ। उसी समय उसे दो राक्षस दृष्टिगोचर हुए, जो अति भयानक थे। उनको देखकर रानी भाग गयी और आगे जाकर शिष्य के साथ तपस्या में लीन एक तपस्वी को देखा। वृन्दा दौड़कर भयभीत होने के कारण अपने दोनों हाथ तपस्वी की गले में डालकर लिपट गयी और कहा कि हमारी रक्षा करें। तदनन्तर तपस्वी ने दोनों नेत्र खोलकर बहुत क्रोध किया और ऐसा हुङ्कार किया कि वे दोनों राक्षस भाग गये। इससे जलन्धर की पत्नी बहुत प्रसन्न हुई। तदुपरान्त प्रणाम कर उनके तप की प्रशंसा करने लगी। वृन्दा ने कहा— हे तपोधन! मेरे पति शिवजी से युद्ध करने के लिये गये हैं, उनका वृत्तान्त बतलायें। तपस्वीरूप धारण किये हुए विष्णु जी ने हँसकर ऊपर की ओर देखा। इतने में दो बन्दर आ पहुँचे। वे प्रणाम कर बैठे और तपस्वी का सङ्केत पाकर अन्तर्धान हो गये। एक क्षण भी न बीता कि दोनों बन्दर पुनः पहले की तरह आकर बैठ गये, उनके हाथ में जलन्धर का सिर और धड़ था। उन्होंने उसे योगी के आगे रख दिया और स्वयं दुःखी होकर बैठ गये।

इसके बाद वृन्दा अपने पति का सिर देखते ही मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ी। तब मुनि ने पानी आदि छिड़क कर वृन्दा को होश में लाया। तदनन्तर वृन्दा विलाप करने लगी। उसने कहा— हे पतिदेव! मैं तो आपको शिव के साथ युद्ध करने के लिये मना करती थी, लेकिन आप ने न माना। पुनः मुनि से कहा— हे योगिराज! आप हमारे ऊपर कृपा करके हमारे पति को जीवित क्यों नहीं करते? मैं आपका सामर्थ्य देख चुकी हूँ। तदनन्तर तपस्वी ने कहा— हे वृन्दा! जो मनुष्य भगवान् शिव की क्रोधाग्नि से मारा गया है, उसे मैं जिलाने में समर्थ नहीं हूँ। फिर भी तुम्हारे दुःख को देखकर जीवित करने का प्रयत्न करता हूँ। यह कहकर तपस्वी स्वरूप विष्णु ने सिर को धड़ से जोड़ दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये। इसके बाद उस शरीर में स्वयं प्रवेश कर गये। जलन्धर के समान उठ कर बैठ गये। तदनन्तर

अपनी पत्नी को गले लगाया। वृन्दा ने भी पति के साथ पत्नी के धर्म को पूर्ण किया। इस तरह भोगविलास करने के बाद एक समय भगवान् विष्णु ने अपना स्वरूप धारण किया, जिसको देखकर वृन्दा बहुत दुःखी हुई और भगवान् विष्णु को शाप देती हुई बोली— हे विष्णु! आपने मेरे साथ छल कर मेरे धर्म को नष्ट किया है। जिन दो राक्षसों को आपने दिखाया था। वे दोनों राक्षस अति बलवान् होकर आपकी स्त्री का हरण कर ले जायेंगे, जिससे आप दुःखी होकर वन-वन भ्रमण करेंगे। जिन दो बन्दरों को आपने दिखाया था, वे ही दोनों बन्दर आपकी सहायता करेंगे। इस प्रकार वृन्दा विष्णु को शाप देकर विलाप करने लगी और चिता बनाकर अपने पति के साथ सती होने की इच्छा की। यद्यपि विष्णु ने बहुत मना किया, तथापि पतिधर्म में दृढ़ रहकर उसने शिव और गिरिजा का ध्यान करती हुई सती हो गयी। सभी के देखते-देखते वृन्दा का तेज गिरिजा के शरीर में प्रवेश कर गया। यह दशा देखकर भगवान् विष्णु पश्चात्ताप करते हुए वृन्दा के भस्म को अपने शरीर में लगा कर वहीं स्थिर हो गये।

युद्धस्थल में भगवान् शंकर जब सचेत हुए तो देवताओं को दुःखी कर दिया। जलन्धर ने शिवजी की वीरता और पराक्रम देख विचार किया कि अब मुझे माया करनी चाहिये, जिससे शिवरानी को प्राप्त करूँ। यह विचार कर उसने माया से गिरिजा का स्वरूप बनाया और भगवान् शिव के सम्मुख ले गया। उस समय गिरिजा को शुम्भ और निशुम्भ दोनों मार रहे थे और पार्वती रोती हुई रक्षा की पुकार कर रही थी। तदनन्तर ऊँचे शब्दों में जलन्धर ने कहा— हे सदाशिव! अपनी पत्नी को देखो तुम्हारी प्रिय पत्नी को हम पकड़ लाये हैं। उसकी ऐसी दुर्दशा को तुम देखो, माया की पार्वती को देखकर लीलाविहारी भगवान् शंकर प्राकृत पुरुष के समान बहुत दुःखी हुए। उसी समय जलन्धर ने धनुष को कान तक खींचकर शिवजी के ऊपर तीन बाण चलाये, जो एक सिर में, दूसरा छाती में एवं तीसरा शिवजी के उदर में लगे। भगवान् शंकर जलन्धर की माया को समझ कर महाभयंकर स्वरूप को धारण कर अग्नि के समान प्रकाशित होने लगे। उनके भयानक स्वरूप को देखकर सभी दैत्य भयभीत होकर युद्धस्थल से भागने लगे। यहाँ तक कि शुम्भ और निशुम्भ भी पीठ दिखाकर भाग चले। भगवान् शंकर ने जलन्धर की सम्पूर्ण माया को नष्ट कर दिया।

भगवान् शंकर ने भागते हुए शुम्भ और निशुम्भ को शाप देते हुए कहा— तुम दोनों ने छलपूर्वक गिरिजा को दुःख दिया है, इसलिये तुम दोनों गिरिजा के हाथों ही मारे जाओगे। इतने में जलन्धर ने बाणों की वर्षा से शिव जी को छिपा दिया। तदनन्तर क्रोधित होकर भगवान् शंकर ने उसके बाणों को काट डाला। इतने में जलन्धर ने परिघ से शंकर के बैल पर प्रहार किया। जिससे बैल युद्धस्थल से भाग चला। भगवान् शंकर के बहुत रोकने पर भी वह युद्धस्थल में नहीं ठहर सका।

इसके बाद भगवान् शंकर ने अति कुपित होकर महाभयंकर स्वरूप धारण कर हाथ में सुदर्शन चक्र को उठा लिया, जो करोड़ों सूर्य के समान चमक रहा था। भगवान् शंकर ने उस चक्र को जलन्धर के ऊपर चला दिया। उस चक्र का तेज दशों दिशाओं में फैल रहा था। सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाश दग्ध होने लगे। सुदर्शन चक्र ने जाकर जलन्धर के सिर को शरीर से भिन्न कर दिया। उस समय भयंकर शब्द हुआ। जिससे पृथिवी थर-थर काँपने लगी। पर्वत जलने लगे। सभी के देखते-देखते जलन्धर का तेज भगवान् शिव के शरीर में प्रवेश कर गया। उस समय जय-जय का शब्द हो रहा था। जो अत्यन्त भाग्यशाली होते हैं, उनकी यह दशा होती है; क्योंकि देवता और मुनि भी बड़े-बड़े उपायों के द्वारा शिव की सायुज्य-मुक्ति को नहीं प्राप्त करते। तदनन्तर ब्रह्मा, इन्द्र आदि सभी देवता शंकर की स्तुति करने लगे।

स्तुति में देवताओं ने कहा— हे सदाशिव! आप हर प्रकार से भक्तों के दुःख दूर करने वाले हैं। आप मन और वाणी से परे हैं। आपकी महिमा को वेद भी नेति नेति कहकर अपनी अज्ञानता ही प्रकट करते हैं। आपकी महिमा अपार है, जिसको नारद, शेष, महेश भी नहीं कह सकते। आप परब्रह्म परमात्मा, दीनदयालु, घट-घट में व्यापक रहने वाले हैं। आपने अनेक भक्तों का उद्धार किया है। आपकी कृपादृष्टि पाकर ही ब्रह्मा, विष्णु सृष्टि की रचना और पालन-पोषण करते हैं। आप तीनों गुणों से परे होते हुए भी सगुण हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवताओं ने भगवान् शंकर की स्तुति की। जो इस स्तुति को सुनता है और पढ़ता है, वह दोनों लोकों में प्रसन्न रहकर शिव के लोक को प्राप्त करता है।

इस प्रकार देवताओं ने स्तुति कर भगवान् शंकर से प्रार्थना करते हुए कहा— हे देवाधिदेव! आपने जलन्धर को नष्ट कर हम लोगों को निर्भय कर दिया। अब कोई कण्टक नहीं रह गया है। परन्तु भगवान् विष्णु उस स्थान पर भस्म लगाये विह्वल पड़े हैं, जहाँ जलन्धर की पत्नी वृन्दा सती हुई थी। उनको आप प्रबुद्ध करें। तदनन्तर हँसते हुए भगवान् पशुपति ने कहा— हे देवताओं! यह सब हमारी माया की लीला है, हमारी माया तीनों लोक को नचाया करती है। विष्णु जी की बुद्धि को मोहित कर हमने ही यह लीला करायी है। वे हमें बहुत प्रिय हैं। हमने यह लीला कर उनके अहङ्कार को दूर किया है। अब हम जो उपाय बतलाते हैं, उसे करो, विष्णु जी का मोह दूर हो जायेगा। तुम लोग देवी पार्वती के शरण में जाओ, वे तुम लोगों के कार्य को पूर्ण करेंगी। यह कहकर भगवान् शंकर अपने गणों के साथ वहीं अन्तर्धान हो गये।

इसके बाद देवता गिरिजा की स्तुति करने लगे। उन लोगों ने कहा— हे देवि! हम लोग आपकी शरण में आये हैं। हमें दुःख से मुक्ति दिलायें। जो यह स्तुति पढ़ेगा, वह कभी मोह और दरिद्रता में न पड़ेगा। इस प्रकार देवता स्तुति कर रहे थे, उसी समय आकाश में एक अग्नि का कुण्ड दृष्टिगोचर हुआ। उस कुण्ड से शब्द सुनाई पड़ा कि हमने तीन रूप में अलग-अलग तीनों गुणों से अलंकृत होकर संसार में अवतार लिया है। एक गिरिजा, दूसरी लक्ष्मी और तीसरी सरस्वती हैं। हे देवगण! तुम लोग उनकी शरण में जाओ, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। यह सुनकर पुनः देवता स्तुति करने लगे, जिसके प्रत्येक श्लोकों में जय शब्द था। तदनन्तर तीनों देवियों ने तीन बीज देकर कहा कि जहाँ विष्णु जी बैठे हैं, वहाँ इनका वपन कर दो, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। देवताओं ने वैसा ही किया, जिससे तीन प्रकार की वनस्पति उपजी, जिनका नाम धात्री, मालती और तुलसी हुआ। ब्रह्मा की पत्नी धात्री के अंश से धात्री, लक्ष्मी से मालती और पार्वती से तुलसी उपजीं। ये तीनों देवियाँ रज, सत्त्व और तम तीनों गुणों को धारण कर स्त्री के समान प्रकट हुईं और वृन्दा से भी अति सुन्दर रूप धारण कर विष्णु के सामने खड़ी हुईं। उनको देख विष्णु आश्चर्य में पड़ गये और काम के वशीभूत हो गये। उस समय धात्री और तुसली ने तिरछी चितवन से विष्णु की ओर देखा। परन्तु मालती उनकी इस प्रकार की दृष्टि को सवतियाडाह से न सह कर दुःखी हुई और मन

में क्रोध किया। इसलिये मालती शिव पर नहीं चढ़ाई जाती है। भगवान् विष्णु धात्री और तुलसी पर मोहित हो उनको साथ लिये हुए वैकुण्ठ चले गये और उनका मोह जाता रहा। इस प्रकार भगवान् शंकर की यह जलन्धरोद्धारलीला पूर्ण होती है। इस लीला को जो मनुष्य पढ़ेगा, वह सभी प्रकार के कष्टों से छुटकारा पाकर अन्त में शिवलोक को प्राप्त करेगा (शिवपुराण भाषा, पञ्चम खण्ड, अ. ११-१२)।



१३. चक्रप्रदान लीला

समय के परिवर्तन से कभी तो देवता बलवान् हो जाते हैं और कभी दानव। एक समय की बात है, दैत्य अत्यन्त प्रबल होकर लोगों को पीड़ा देने लगे और धर्म का ध्वंस करने लगे। दानवों की शक्ति बढ़ जाने से देवता बहुत संत्रस्त और सन्तप्त हुए। तब वे अपने दुःखों की निवृत्ति के लिये भगवान् विष्णु के समीप जाकर उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने उन लोगों के आने का कारण पूछा। तब देवों ने हाथ जोड़कर विनती की कि हे महाराज! हम लोगों को दुष्ट दानव अपरिमित कष्ट पहुँचा रहे हैं और हम लोगों का अपने स्थान पर रहना भी कठिन हो गया है। अतः हे भगवन्! आप इसका कुछ उपाय बतलाइये। आपके अतिरिक्त अन्य कोई हमें शरण देने वाला नहीं है। देवों का ऐसा हृदयविदारक करुण-क्रन्दन सुनकर भगवान् विष्णु ने उनसे कहा कि 'मैं परमकारुणिक श्री महादेव जी की आराधना कर इस कार्य को करूँगा।' उनका ऐसा वचन सुनकर सभी देवता अपने-अपने धाम को चले गये।

इधर विष्णुदेव क्षीरसागर की सुखद शय्या का परित्याग कर कैलास पर जाकर भगवान् शिव की विधिपूर्वक आराधना करने लगे। वे शिव के हजार नामों से उनकी स्तुति करते तथा प्रत्येक नाम पर एक कमल का पुष्प चढ़ाते थे। एक बार भगवान् शंकर ने विष्णु के भक्तिभाव की परीक्षा करने के लिए उनके लाये हुए एक हजार कमलों में से एक को छिपा दिया। शिव जी की माया के कारण घटित हुई इस अद्भुत घटना का भगवान् विष्णु को पता नहीं लगा। उन्होंने एक फूल कम जान कर उसकी पूर्ति के लिये कमल खोजना प्रारम्भ किया। दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रत का पालन करने वाले श्रीहरि ने भगवान् शिव की प्रसन्नता के लिए उस एक फूल की प्राप्ति के उद्देश्य से सारी पृथिवी पर भ्रमण किया, परन्तु कहीं भी उन्हें कमल फूल नहीं मिला। तब विशुद्धचेता विष्णु ने एक फूल की पूर्ति के लिए अपने कमलसदृश एक नेत्र को ही निकाल कर चढ़ा दिया। यह देख सबका दुःख दूर करने वाले भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और वहीं उनके सामने प्रकट हो गये। प्रकट होकर वे

श्रीहरि से बोले— हरे! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। मैं तुम्हें मनोवांच्छित वस्तु प्रदान करूँगा। तुम्हारे लिए मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।

इसके बाद भगवान् शंकर का वचन सुनकर विष्णु ने कहा— नाथ! आपके सामने मुझे क्या कहना है। आप अन्तर्यामी हैं। अत: सब कुछ जानते हैं। तथापि आपके आदेश का गौरव रखने के लिए कहता हूँ। दैत्यों ने सारे जगत् को पीड़ित कर रखा है। सदाशिव! हम लोगों को सुख नहीं मिलता। स्वामिन्! मेरा अपना अस्त्र-शस्त्र दैत्यों के वध में काम नहीं देता। परमेश्वर! इसी लिए मैं आपकी शरण में आया हूँ।

श्री विष्णु का यह वचन सुनकर देवाधिदेव शंकर ने तेजोराशिमय अपना सुदर्शन चक्र उन्हें दे दिया। इसका बड़ा सुन्दर वर्णन श्रीपुष्पदन्ताचार्य जी ने शिवमहिम्नस्तोत्र में किया है—

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्।।

करुणावरुणालय भगवान् शिव ने विष्णु से कहा कि 'इससे सभी दैत्यों का विनाश हो जायेगा।' यह कहकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये।

भगवान् विष्णु ने उसी चक्र की सहायता से उन समस्त प्रबल दैत्यों का बिना परिश्रम के ही संहार कर डाला। इससे सारा जगत् स्वस्थ हो गया। देवताओं को भी सुख मिला और अपने लिए उस आयुध को पाकर भगवान् विष्णु भी अत्यन्त प्रसन्नता एवं परम सुख का अनुभव करने लगे।

जब-जब शत्रुओं का संहार करना होता है, तब-तब भगवान् विष्णु उस चक्र को काम में लाते हैं—

तत् प्राप्य भगवान् विष्णुर्दैत्यांस्तान् बलवत्तरान्।
जघान तेन चक्रेण द्रुतं सर्वान् विना श्रमम्।।
जगत् स्वास्थ्यं परं लेभे बभूवुः सुखिनः सुराः।
सुप्रीतः स्वायुधं प्राप्य हरिरासीन् महासुखी।।

(शि.पु.,को.रु.सं., ३४.३१-३२)

इसी प्रकार श्रीहरि प्रतिदिन सहस्रनामों द्वारा भगवान् शिव की स्तुति, कमलों द्वारा सहस्रार्चन एवं प्रार्थना किया करते थे। एक दिन भगवान् शिव की लीला से एक कमल कम हो जाने पर भगवान् विष्णु ने अपना कमलोपम नेत्र ही चढ़ा दिया। इस तरह उनसे पूजित एवं प्रसन्न हो शिव ने उन्हें चक्र दिया और इस प्रकार कहा— हरे! सब प्रकार के अनर्थों की शान्ति के लिये तुम्हें मेरे स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। अनेकानेक दुःखों का नाश करने के लिए इस सहस्रनाम का पाठ करते रहना चाहिये तथा समस्त मनोरथों की सिद्धि के लिए सदा मेरे इस चक्र को प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये। यह सभी चक्रों में उत्तम है। दूसरे भी जो लोग प्रतिदिन इस सहस्रनाम का पाठ करेंगे, या करायेंगे, उन्हें स्वप्न में भी कोई दुःख नहीं प्राप्त होगा। राजा की ओर से संकट प्राप्त होने पर यदि मनुष्य साङ्गोपाङ्ग विधिपूर्वक इस सहस्रनामस्तोत्र का सौ बार पाठ करे, तो निश्चय ही कल्याण का भागी होगा।

यह उत्तम स्तोत्र रोग का नाशक, विद्या और धन देने वाला, सम्पूर्ण अभीष्ट की प्राप्ति कराने वाला, पुण्यजनक तथा सदा ही शिवभक्ति देने वाला है। जिस फल के उद्देश्य से मनुष्य इस श्रेष्ठ स्तोत्र का पाठ करेगा, उसे निःसन्देह फल प्राप्त होगा। भगवान् शंकर कहते हैं— जो प्रतिदिन सबेरे उठकर मेरी पूजा के पश्चात् मेरे सामने इसका पाठ करता है, सिद्धि उससे दूर नहीं रहती। उसे इस लोक में सम्पूर्ण अभीष्ट को देने वाली सिद्धि पूर्णतया प्राप्त होती है और अन्त में वह सायुज्य मुक्ति का भागी होता है, इसमें संशय नहीं है।

ऐसा कहकर सर्वदेवेश्वर भगवान् रुद्र ने श्रीहरि के अङ्ग का स्पर्श किया और उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। भगवान् विष्णु भी शंकर जी के वचन से तथा उस शुभ चक्र को पा जाने से मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। फिर वे प्रतिदिन शम्भु के ध्यानपूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करने लगे। उन्होंने अपने भक्तों को भी इसका उपदेश दिया (शिवपुराण, कोटिरुद्रसंहिता, अ. ३४-३६)।

परात्पर सच्चिदानन्द परमेश्वर शिव एक हैं, वे विश्वातीत हैं और विश्वमय भी हैं। वे गुणातीत हैं और गुणमय भी हैं। यही परात्पर परमेश्वर शिव महाशिव, महाविष्णु, महाशक्ति, गोकुलविहारी श्रीकृष्ण, साकेतविहारी

श्रीराम आदि नामरूपों से प्रसिद्ध हैं। जटाजूटधारी श्री शिव रूप सबके आदि उत्पन्नकर्ता और सर्वपूज्य महेश्वर उपास्य हैं तथा अन्य नाम-रूपधारी उपासक हैं। इतिहास-पुराण में अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं, जिससे श्रीविष्णु के शिवभक्त होने का स्पष्ट समर्थन होता है।

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्।

यह वैदिक मन्त्र समस्त विद्याओं के ईशान (स्वामी) और सर्वभूत अर्थात् प्राणिमात्र के नियन्ता, ईश्वरशब्दवाच्य महादेव का निरूपण करता है। इसी मन्त्र का प्रतीक लेकर श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन को परमहित का उपदेश देते हुए कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।।

इस श्लोक में 'ईश्वर' शब्द अमरकोश-वाक्य के अनुसार साक्षात् महादेव का वाचक है—

ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः।

(अमरकोश)

इसी ईश्वर शिव की शरण में जाने का स्वयं श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं। यही भगवान् श्रीकृष्ण की शिव-भक्ति एवं उपासना का प्रकृष्ट प्रमाण है, क्योंकि शरणप्रपन्न अपने प्रिय सखा अर्जुन को परम श्रेयस्कर उपाय पूछने पर वे शिवशरणागति का उपदेश देते हैं। इसीसे उसके संकट की निवृत्ति हुई।

'जयद्रथ को यदि सूर्यास्त के पहले न मार सकूँ, तो मैं चिता प्रवेश करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा जब अर्जुन ने की, तब सारी रात भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को शिव-पूजन में लगाकर उसे पाशुपतास्त्र पुनः प्राप्त कराया और 'मेरे रथ के आगे यह त्रिशूल पर कौन है?' इस प्रकार अर्जुन के प्रश्न करने पर 'जिसका तू आराधन करता है, वही तेरी रक्षा के लिये यहाँ उपस्थित है और उसी के अनुग्रह से सर्वत्र तुम्हारी विजय होती है' ऐसा उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण देते हैं।

लिङ्गपुराण (पूर्वार्ध) के अध्याय १०८ में यह प्रसंग आया है कि भगवान् श्रीकृष्ण पुत्रप्राप्ति के लिये तप करने को तपोवन में जाते हैं। वहाँ महामुनि उपमन्यु के आश्रम में उन्हें धौम्य के ज्येष्ठ पुत्र उपमन्यु का दर्शन होता है। तब मुनि को प्रणाम करके श्रीकृष्ण तीन प्रदक्षिणा करते हैं। उन मुनिवर्य के दर्शन से ही श्रीकृष्ण के कायज और कर्मज मल नष्ट हो जाने पर मुनि उन्हें भस्मोद्धूलन कराते हैं, फिर उपमन्यु मुनि से श्रीकृष्ण शिवमन्त्रोपदेश ग्रहण कर एक वर्ष तक तपश्चर्या करते हैं। इस तपोनुष्ठान से प्रसन्न होकर महेश्वर श्रीकृष्ण को वर प्रदान करते हैं—

दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं प्रददौ प्रीतमानसः।
मुनेः प्रसादान्मान्योऽसौ कृष्णः पाशुपते द्विजाः।।

तपसा त्वेकवर्षेण दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्।
साम्बं सगणमव्यग्रं लब्धवान् पुत्रमात्मनः।।

तदा प्रभृति तं कृष्णं मुनयः शंसितव्रताः।
दिव्याः पाशुपताः सर्वे तस्थुः संवृत्य सर्वतः।।

(लि.पु., पू., १०८)

इसी लिङ्गपुराण के उत्तरार्ध के पंचम अध्याय में भगवान् विष्णु एवं अम्बरीष को वर प्रदान करते हैं, तब अम्बरीष श्री भगवान् विष्णु से कहते हैं— 'हे लोकनाथ! परमानन्दस्वरूप! मेरी वृत्ति, वाणी, मन और शरीर कर्मों सहित वासुदेवपरायण हो। जैसे आप देवाधिदेव परमात्मा शिव के भक्त हैं, वैसे ही मैं आपका भक्त होऊँ, ऐसा अनुग्रह कीजिये—

लोकनाथ परानन्द नित्यं मे भक्तिरव्यया।
वासुदेवपरा देव वाङ्मनःकायकर्मभिः।।

यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः।
तथा भवाम्यहं विष्णो तव देव जनार्दन।।

(लि.पु., उ.अ. ५)

कूर्मपुराण में लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण परम शिवभक्त और शिव-महिमा को जानने वाले हैं। 'श्रीकृष्णद्वैपायन (व्यासमुनि) साक्षात् विष्णुरूप ही हैं, इसमें संशय नहीं है। व्यासमुनि को छोड़कर परमेश्वर रुद्र को अन्य कौन

तत्त्व से जान सकता है। सत्यवतीसुत व्यास और देवकीसुत श्रीकृष्ण— इन दोनों को छोड़कर अर्जुन के समान कोई शिवभक्त भूतकाल में हुआ नहीं और भविष्य में होगा भी नहीं—

कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्विष्णुरेव न संशयः।
को ह्यन्यस्तत्त्वतो रुद्रं वेत्ति तं परमेश्वरम्।।
नार्जुनेन समः शम्भोर्भक्तो भूतो भविष्यति।
मुक्त्वा सत्यवतीसूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम्।।

(कू.पु.,)

इन प्रसंगों से भगवान् विष्णु का परम शिवभक्त होना स्पष्ट सिद्ध होता है।



१४. गजासुरसूदन लीला

गजासुर महिषासुर का पुत्र था। जब उसने सुना कि देवताओं से प्रेरित होकर देवी दुर्गा ने मेरे पिता को मार दिया था, तब उसका बदला लेने की भावना से उसने घोर तप किया। उसके तप की ज्वाला से सब जलने लगे। तब देवताओं ने जाकर ब्रह्माजी से अपना दुःख निवेदित किया। तदुपरान्त ब्रह्माजी ने उसके सामने प्रकट होकर उसकी प्रार्थना के अनुसार उसे वरदान दे दिया कि वह काम के वश होने वाले किसी भी स्त्री या पुरुष से नहीं मरेगा, महाबली और सबसे अजेय होगा।

ब्रह्मा से वर पाकर गजासुर गर्व से भर गया। इसके बाद सब दिशाओं तथा सब लोकपालों के स्थानों पर उसने अधिकार कर लिया। अन्त में भगवान् शंकर की राजधानी आनन्दवन काशी में आकर गजासुर सबको सताने लगा। देवताओं ने भगवान् शंकर से प्रार्थना की। शंकर कामविजयी हैं ही। उन्होंने भयंकर युद्ध में उसे हराकर त्रिशूल में पिरो लिया। तब उसने भगवान् शिव का स्तवन किया। उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उससे इच्छित वर माँगने के लिये कहा।

तब गजासुर ने कहा— दिगम्बरस्वरूप हे महेशान! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो अपने त्रिशूल की अग्नि से पवित्र हुए मेरे इस चर्म को आप सदा धारण किये रहें। हे विभो! मैं पुण्य गन्धों की निधि हूँ। इसीलिये मेरा यह चर्म चिरकाल तक उग्र तपरूपी अग्नि की ज्वाला में पड़ कर भी दग्ध नहीं हुआ है। हे दिगम्बर प्रभु! यदि मेरा यह चर्म पुण्यवान् न होता, तो रणाङ्गण में इसे आपके अङ्गों का सङ्ग कैसे प्राप्त होता। हे शंकर! यदि आप तुष्ट हैं, तो मुझे एक दूसरा वर और दीजिये, वह यह कि आज से आपका नाम हाथी के चर्म (कृत्ति) को धारण करने के कारण **'कृत्तिवासा'** विख्यात हो जाय।

यदि प्रसन्नो दिग्वासस्तदा नित्यं वसान मे।
इमां कृत्तिं महेशान त्वत्त्रिशूलाग्निपाविताम्।।

यदि पुण्यवती नैषा मम कृत्तिर्दिगम्बर।
तदा त्वदङ्गसङ्गोऽस्याः कथं जातो रणाङ्गणे।।

अन्यं च मे वरं देहि यदि तुष्टोऽसि शङ्कर।
नामास्तु कृत्तिवासास्ते प्रारभ्याद्यतनं दिनम्।।

(शि.पु., रु.सं., यु.ख. ५७-५८ ६२-६३)

इसके बाद गजासुर की बात सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शंकर ने परम प्रसन्नतापूर्वक महिषासुरनन्दन गज से कहा— 'तथास्तु' - अच्छा, ऐसा ही होगा। तदनन्तर प्रसन्नात्मा भक्तप्रिय महेशान ने उस दानवराज गज से पुनः कहा— उस समय उसका मन भक्ति के कारण पूर्व निर्मल हो गया था।

देवाधिदेव ने कहा— दानवराज! तुम्हारा यह पावन शरीर मेरे इस मुक्तिसाधक क्षेत्र काशी में मेरे लिङ्ग के रूप में स्थित हो जाय। इसका नाम **कृत्तिवासेश्वर** होगा। यह समस्त प्राणियों के लिये मुक्तिदाता, महान् पातकों का विनाशक, सम्पूर्ण लिङ्गों में शिरोमणि और मोक्षप्रद होगा। यह कहकर दिगम्बर देवेश्वर शिव ने गजासुर के उस विशाल चर्म को लेकर ओढ़ लिया—

इदं पुण्यं शरीरं ते क्षेत्रेऽस्मिन् मुक्तसाधने।
मम लिङ्गं भवत्वत्र सर्वेषां मुक्तिदायकम्।।

कृत्तिवासेश्वरं नाम महापातकनाशनम्।
सर्वेषामेव लिङ्गानां शिरोभूतं विमुक्तिदम्।।

कथयित्वेति देवेशस्तत्कृत्तिं परिगृह्य च।
गजासुरस्य महतीं प्रावृणोद्धि दिगम्बरः।।

(शि.पु., श.रु.सं., यु.ख., ५७ : ६६-६८)

उस दिन काशी में बहुत उत्सव मनाया गया। काशीनिवासी सारी जनता तथा प्रमथगण हर्षमग्न हो गये। विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं का मन हर्ष से परिपूर्ण हो गया। वे हाथ जोड़कर कृत्तिवासेश्वर को प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार भगवान् शिव ने गजासुर का चर्मधारण कर अपनी गजासुरसूदन लीला पूर्ण की और कीर्तिवासेश्वर के नाम से विख्यात हुए (शिवपुराण, रुद्रसंहिता, अ. ५७)।

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में गजासुरसूदन लीला का वर्णन करते हुए स्कन्द जी कहते हैं— गजासुर महिषासुर का पुत्र है। वह अपने पिता का वध सुनकर अत्यन्त उन्मत्त होकर सबको कष्ट पहुँचाने लगा। गजासुर अपने पराक्रम के अहङ्कार से उद्धत होकर अशेष प्रमथगणों को मथता हुआ महेश्वर के समीप जाने लगा। वह जिस-जिस स्थान पर अपना चरण रखता था, वहाँ की भूमि उसके बोझ से काँपने लगती थी। उसके तीव्र वेग से वृक्ष गिर पड़ते थे। उसके मुण्ड की टक्कर से शिखरों के साथ पर्वत चूर्ण हो जाते थे तथा उसके केशों के संघर्षण से मेघगण आकाश छोड़ देते थे। उसके केश की रगड़ की नीलिमा आज तक उनमें बनी है। उसके श्वास की फुफकार से महासमुद्रों में भी ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगती थी और नदियों में भी बड़ी-बड़ी हिंडोले उठने लगती थीं। उस मायावी गजासुर के शरीर की लम्बाई और चौड़ाई नवसहस्त्रयोजन फैली हुई थी। उसके नेत्रों की पीली चमक और चंचलता आजतक बिजली में बनी है। यह दुस्सह दानव जिस दिशा में जाता था, उसे वह समतल कर देता था। वह ब्रह्मा के वरदान के द्वारा कामदेव से हारे हुए स्त्री-पुरुषों से अपने को अवध्य मान कर देव, दैत्य और मनुष्य तीनों को तृण के समान समझता था।

जब भगवान् शंकर ने समझा कि यह दैत्यराज दूसरे किसी से वध करने योग्य नहीं है, तब त्रिशूलधारी महादेव ने उसे अपने समीप आते ही त्रिशूल से गोद कर उठा लिया। तब तो अपने को छाते के समान मानकर गजासुर ने भगवान् शिव से कहा— हे त्रिशूलपाणे! देवेश! आपने कामदेव का सहांर किया है, आपको मैं भली-भाँति जानता हूँ। हे त्रिपुरान्तक! आपके हाथ से मारे जाने में मेरा कल्याण ही है। हे मृत्युञ्जय! इस समय मैं आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहता हूँ। आप कृपापूर्वक ध्यान देकर सुनें और विचार करें कि मैं सत्य कहता हूँ या असत्य।

हे देव! एक आप ही त्रैलोक्य में वन्दनीय और सब किसी के ऊपर रहने वाले हैं, परन्तु आज तो मैं त्रिशूल में विद्ध होकर आपके ही ऊपर विराजमान हूँ। तब फिर मैं ही आपके अनुग्रह से धन्य हूँ और मेरी जीत हुई; क्योंकि कालधर्म के अनुसार एक दिन तो सभी को मरना है, तब ऐसी मृत्यु श्रेयस्कर है, इसमें कौन सन्देह करेगा?

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वत्त्रिशूलाग्रसंस्थितः।
कालेन सर्वैः मन्तव्यं श्रेयसे मृत्युरीदृशः।।

(का.ख. ६८.१७)

परमकारुणिक देवाधिदेव शम्भु उसके वचन को सुनकर हँसते हुए गजासुर से कहने लगे। भगवान् शिव ने कहा— हे महापुरुषार्थिन्! गजासुर! तुम्हारी सुबुद्धि से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। हे दानव! तुम अपनी इच्छा के अनुसार वर माँग लो, मैं देने के लिये प्रस्तुत हूँ। वह दैत्येन्द्र भगवान् शिव का यह वचन सुनकर उनसे कहा— हे दिगम्बर! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मेरे इस लम्बे चौड़े सुखस्पर्श कोमल रणाङ्गण के दाँव से जीते हुए और त्रिशूल की आग से पकाये गये मेरे चर्म को सदैव धारण करें। यह कृत्ति (खाल) आपकी कृपा से सदैव उत्तम गन्ध से युक्त अत्यन्त कोमल एवं निर्मल और आपका परम विभूषण हो। हे प्रभो! यह कृत्ति बहुत काल तक बड़ी भारी तपस्यारूप अग्निज्वाला में पड़ने पर भी नहीं जली। अत एव पवित्रता और सुगन्ध का आश्रय हो। हे नाथ! यदि मेरी यह कृत्ति (खाल) बड़े पुण्य से पूर्ण न होती, तो युद्धक्षेत्र में इसका आपके अङ्गों का संसर्ग कैसे हो जाता? हे दिगम्बर! आप इसे अपना वस्त्र बना लें।

हे शंकर! यदि आप सन्तुष्ट हैं, तो एक और भी वर दें। वह वर यही है कि आज के दिन से आपका नाम **कृत्तिवासा** हो, क्योंकि आपने मेरी कृत्ति (खाल) को वस्त्र के रूप में स्वीकार करने का वरदान दे दिया है।

गजासुर के इस वचन को सुनते ही 'तथास्तु' कहकर भगवान् शंकर भक्ति से निर्मल चित्त उस दैत्य से पुनः कहने लगे। महेश्वर ने कहा— हे पुण्यनिधे दैत्य! इसके अतिरिक्त एक और भी बड़ा दुर्लभ वरदान दे रहा हूँ, सुनो। तुमने मुक्ति के साधन इस अविमुक्त नामक महाक्षेत्र में युद्ध करके अपना शरीर-त्याग किया है। इसलिये तुम्हारा यह पवित्र शरीर इस क्षेत्र में मेरा लिङ्ग (चिह्न) होकर यहाँ पर सब किसी का मुक्तिदायक होगा। इसका नाम **कृत्तिवासेश्वर** पड़ेगा और यह महापापभञ्जन होने से सब लिङ्गों के मध्य में प्रधान मस्तक रूप लिङ्ग होगा। वाराणसी में जितने भी बड़े-बड़े लिङ्ग हैं, उन सभी में यह लिङ्ग उत्तमाङ्ग शिर के समान उत्तम होगा। मानवों के हित के लिये मैं इस लिङ्ग में अपने परिवार के साथ अवस्थान करूँगा। मनुष्य इस

लिङ्ग के दर्शन, पूजन और स्तुतिपाठ करने से कृतकृत्य होकर दुबारा संसार में प्रवेश नहीं करेगा—

इष्टेनानेन लिङ्गेन पूजितेन स्तुतेन च।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यः संसारं न विशेत्पुनः।।

(का.ख., ६८.३१)

शान्त, दान्त, क्रोधहीन, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, रुद्र, पाशुपत, सिद्ध, ऋषि, तत्त्वचिन्तन, मानापमान में सम बुद्धिवाले, ईंट, पत्थर और सुवर्ण को समान समझने वाले मेरे भक्त मोक्ष की इच्छा से अविमुक्त क्षेत्र में रहते हैं, उन सभी पर अनुग्रह करने के लिये मैं इस **कृत्तिवासेश्वर** लिङ्ग में निवास करूँगा।

प्रतिदिन दश सहस्र तीर्थ, तीनों बेला इस कृत्तिवासेश्वर पर अवश्य आया करेंगे। कलियुग में उत्पन्न लोग पापबुद्धि, सदाचार से हीन, सत्य और शौच से पराङ्मुख, माया, दम्भ, लोभ, मोह और अहङ्कार से पूर्ण, जिह्वालोलुप, अतिलालची, स्नान, सन्ध्या, जप और यज्ञ-यागादि से दूर भागने वाले होंगे। वे सब भी कृत्तिवासेश्वर में पहुँच कर सब पापों से छूटकर पुण्यात्मा के समान सुख से मोक्ष पद को प्राप्त करेंगे।

इसलिये काशी में कृत्तिवासेश्वर का सेवन करना चाहिये, क्योंकि दूसरे स्थान में जो मोक्ष सहस्रों जन्मान्तरों में भी बड़ा ही दुर्लभ है, वह कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग के दर्शन से अनायास एक ही जन्म में मिल जाता है। यद्यपि पूर्वजन्म का किया हुआ पाप तपस्या और दान इत्यादि से भी धीरे-धीरे दूर होता है, परन्तु कृत्तिवासेश्वर के दर्शन करने से तुरन्त ही विनष्ट हो जाता है—

पूर्वजन्मकृतं पापं तपोदानादिभिः शनैः।
नश्येत् सद्यो विनश्येत कृत्तिवासेश्वरेक्षणात्।।

(का.ख., ६८.४०)

माघ कृष्ण चतुर्दशी (फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी महाशिवरात्रि) को उपवास रहकर रात्रि में जागरण करते हुए कृत्तिवासेश्वर की पूजा करने से परमगति की प्राप्ति होती है। जो चैत्र मास की पूर्णिमा के दिन कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग पर बड़ा उत्सव मनाता है, वह गर्भ में कभी नहीं प्रवेश करता है, अर्थात् जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है—

माघकृष्णचतुर्दश्यामुपोष्य निशि जागृयात्।
[illegible]
स यायात्परमां गातिम्।।
शुक्लायां पञ्चदश्यां यश्चैत्र्यां कर्ता महोत्सवम्।
कृत्तिवासेश्वरे लिङ्गे न स गर्भं प्रवेक्ष्यते।।

देवेश्वर भगवान् शिव ने यह कह कर गजासुर की बड़ी भारी कृत्ति (खाल) को लेकर अपने नग्न शरीर में लपेट लिया। जिस दिन भगवान् दिगम्बर कृत्तिवासा हुए, उस दिन वहाँ बहुत बड़ा महोत्सव मनाया गया। भगवान् शिव ने जहाँ पर त्रिशूल में गोद कर गजासुर को छाता की तरह बनाकर भूतल में गाड़ दिया था, वहाँ पर त्रिशूल के उखाड़ लेने से एक बहुत बड़ा कुण्ड बन गया। मनुष्य उस कुण्ड में स्नान और पितरों को तर्पण करके तथा कृत्तिवासेश्वर का पूजन करने से कृतकृत्य हो जाता है।

काशी यात्रा के प्रसङ्ग में पञ्चायतन यात्रा में कृत्तिवासेश्वर महादेव के दर्शन पूजन का माहात्म्य वर्णित है—

कृत्तिवासो मध्यमेशः ओङ्कारश्च कपर्दिकः।
विश्वेश्वर इति ज्ञेयं पञ्चायतनमुत्तमम्।।

अर्थात् कृत्तिवासेश्वर, मध्यमेश्वर, ओङ्कारेश्वर, कपर्दीश्वर और विश्वेश्वर— इन्हीं को उत्तम पञ्चायतन समझना चाहिये। कृत्तिवासेश्वर महादेव का स्थान काशी के हरतीरथ के वृद्धकाल पर स्थित है। विशेष कर चैत्र पूर्णिमा के दिन यहाँ मेला लगता है।



१५. दक्षाध्वरध्वंस लीला

एक समय ब्रह्माजी ने दक्ष को सब प्रजापतियों का अधिपति बनाया। इससे उन्हें बड़ा अहंकार हो गया। उन्होंने भगवान् शिव और उनके भक्तों का अनादर कर बृहस्पतिसव नामक यज्ञ आरम्भ किया—

बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम्।

(भाग., ४.३.३)

इस यज्ञ में ऋषि, महर्षि, देवता, पितर आदि अपनी-अपनी पत्नियों के साथ सम्मिलित हुए। आकाशमार्ग से जाते हुए देवताओं के मुख से अपने पिता के घर यज्ञोत्सव की चर्चा सुनकर सती ने उत्कण्ठावश भगवान् शिव से कहा— नाथ! आपके श्वसुर के यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ-महोत्सव हो रहा है। सभी देवता वहाँ जा रहे हैं। आपकी इच्छा हो, तो हमलोग भी चलें। हमारी अन्य बहनें भी अपने-अपने पतियों के साथ सगे-सम्बन्धियों को देखने वहाँ अवश्य आयेंगी और वहाँ उनका सत्कार होगा। हमें भी वहाँ जाने पर नाना प्रकार के उत्तम पदार्थ उपहार में मिलेंगे। बहुत दिनों से मैंने अपनी माता को देखा नहीं है। वहाँ उन्हें भी मैं देख लूँगी और यज्ञ का भी दर्शन हो जायेगा। जिनका कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसी भी स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के साथ वहाँ जा रही हैं। आकाश-मण्डल विमानों से भरा दिखायी दे रहा है। संसार में ऐसी कौन कन्या होगी, जो पिता के घर उत्सव सुनकर भी जाने के लिए लालायित न हो? स्वामी, गुरु और पिता के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिए—

अनाहूता अप्यभियान्ति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम्।

यदि आपकी वहाँ जाने की इच्छा न हो, तो कृपा कर मुझे वहाँ जाने की अनुमति दें। यह सुनकर भगवान् शिव ने सती से कहा— हे देवि! तुमने जो कुछ कहा, वह ठीक है। फिर भी, जो सम्बन्धी अकारण द्रोह करते हैं, उनके यहाँ जाना उचित नहीं। सम्बन्धियों के दुर्वचनों से जैसी मर्म-पीड़ा होती

है, वैसी बाणों से भी नहीं होती। दक्ष की सब पुत्रियों में तुम अत्यन्त प्रिय हो, यह मैं मानता हूँ, फिर भी तुम्हारा वहाँ आदर न होगा, कारण दक्ष मुझसे द्वेष रखता है। हमारी निन्दा करता है। मैंने तुम्हारे पिता दक्ष को उस समय अन्तरात्मा से प्रणाम किया था, जो ज्ञानियों के लिए उचित है। मूर्ख दक्ष इसे न समझ सका और यज्ञ में मेरा अनादर कर बैठा।

प्रिये! मेरा वचन न मान कर यदि तुम वहाँ जाओगी, तो तुम्हारा भी अपमान होगा, जो तुम्हारी मृत्यु का कारण बन जायेगा। भगवान् शिव यह कहकर चुप हो गये, पर भय से विह्वल सती रोती हुई कभी घर से बाहर जातीं और कभी अन्दर आतीं। शिवजी के रोकने से उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगीं, भय और रोष से उनकी दशा विचित्र हो गयी। जान पड़ता था कि वे अपना शरीर ही भस्म कर डालेंगी। उनसे रहा न गया और पति भगवान् शिव को छोड़कर वे अकेले ही यज्ञ के लिए चल पड़ी। यह देख शिव के गण हजारों की संख्या में उनके पीछे हो लिये। सती को सुन्दर वृषभ पर बैठाकर छत्र, चँवर, बाजे-गाजे के साथ वे प्रसन्नतापूर्वक वहाँ पहुँचे। सती ने यज्ञशाला में प्रवेश किया। यज्ञ की शोभा अपूर्व थी। चारों ओर वेदध्वनि से आकाश मण्डल गूँज रहा था। ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि और देवताओं से यज्ञशाला भरी थी। बड़े-बड़े विद्वान् शास्त्रीय चर्चा द्वारा परस्पर बड़ी मनोरम स्पर्धा कर रहे थे। सती के यज्ञमण्डप में पहुंचने पर दक्ष के भय से किसी ने सती का आदर नहीं किया। केवल माता और बहनें उन्हें गले लगाकर मिलीं। कुशल-वार्ता के अनन्तर मौसियों ने सती को बैठने के लिए सुन्दर आसन एवं नाना वस्तुएँ भेंट कीं, किन्तु सती ने उन्हें ग्रहण नहीं किया, क्योंकि पिता ने उनका समुचित आदर नहीं किया था। यज्ञ में अपने पति भगवान् शिव का भाग न देखकर क्रोध से उनका शरीर जलने लगा। आँखें लाल हो गयीं। दक्ष को मारने के लिए उद्यत अपने गणों को रोकर वे शिवद्रोही दक्ष से बोलीं— जिनके सदृश कोई देवता नहीं हैं, जो प्राणीमात्र के प्रिय हैं, वैर का जिनमें लेश भी नहीं, ऐसे सर्वेश्वर से आप प्रतिकूल हैं, आपको धिक्कार है।

जिनके दो अक्षर का मङ्गलमय 'शिव' इस पवित्र नाम का एक बार भी वाणी से उच्चारण मनुष्यों की सम्पूर्ण पापराशि को भस्म कर देता है, काल भी जिनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। आश्चर्य है, आप उन शिव

से द्रोह करते हैं। आप स्वयं अमङ्गल रूप और गुणहीन हैं। इसीसे आपको उनमें अवगुण दिखायी देते हैं। आपकी तो गिनती ही क्या, आपके पिता ब्रह्माजी भी उनके पैरों से उतरी माला अपने सिर पर धारण कर अपने को कृतार्थ मानते हुए उनका गुणानुवाद किया करते हैं। महापुरुषों की निन्दा करना आपके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि मरणधर्मा शरीर को ही आप आत्मा समझ बैठे हैं। याद रखिये, उनकी चरणधूलि ही मूर्तिमती होकर आपका सर्वस्वनाश करेगी और इसे आप अपनी आँखों से देखेंगे।

आप कहते हैं, मैं उनका श्वसुर हूँ, उन्होंने मुझे प्रणाम नहीं किया। अरे मूर्ख! संसार में प्रवृत्त और निवृत्त दो प्रकार के कर्म हैं और इनके अधिकारी सकाम और निष्काम प्राणी हैं। परब्रह्म सदाशिव में कायिक-वाचिक व्यापार के अभाववश कोई कर्म प्राप्त ही नहीं है।

जब कभी आपके गोत्र का उच्चारण कर वे मुझे दाक्षायणी कहकर बुलाते हैं, तब मेरा मन दुःखित हो जाता है। इस लिये मैं आपसे उत्पन्न यह शरीर त्याग दूँगी, कारण विषयुक्त भक्षण किये गये अन्न की निवृत्ति वमन द्वारा ही हो सकती है। यह कहकर सती उत्तर दिशा की ओर मुख कर बैठ गयीं और अपने पति के ध्यान में मग्न हो प्राण और अपान को समकर, नाभिचक्र से प्राण को उठाकर अनाहत और विशुद्धाख्य चक्र से आज्ञाचक्र में ले गयीं। दक्ष के कारण शरीर त्यागने की इच्छा से उन्होंने वायु और अग्नि की धारणा की। उस समय उनके शरीर से समाधिस्थ अग्निज्वाला के साथ एक दिव्य ज्योति निकली। जो बिजली की तरह सबकी आँखों को चकाचौंध करती हुई अन्तर्हित हो गयी और उनका शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सती का इस प्रकार अद्भुत प्राणत्याग देखकर चारों ओर हाहाकार मच गया। सभी दक्ष की घोर निन्दा करने लगे। जब रुद्र के गण दक्ष के वध के लिए उद्यत हुए। तब भृगु ने 'अपहतं रक्षः' इत्यादि ऋचा पढ़कर अग्नि में आहुति दी। उससे तत्काल जलती लकड़ी लिये ऋभु संज्ञक देवता कुण्ड से निकल पड़े, जिन्होंने सब गणों को मार भगाया।

देवर्षि नारद से सती का निधन और अपने गणों की पराजय सुनकर भगवान् शिव को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने दाँतों तले अपना ओठ दबाकर जटा पृथ्वी पर पटकी, जिससे अत्यन्त विशालकाय वीरभद्र उत्पन्न हुए।

उसकी हजार भुजाएँ थीं। जलती अग्नि के समान उसके केश थे। मुण्डमाला पहने और हाथों में विविध शस्त्रास्त्र लिए हुए वह भगवान् शिव को प्रणाम कर बोला— भगवन्! क्या आज्ञा है? तब शिवजी ने कहा— हे वीरभद्र! तुम मेरे अंश हो, शीघ्र जाकर यज्ञ-विध्वंस कर दक्ष का वध कर डालो। यह सुनकर वीरभद्र भगवान् शिव की परिक्रमा कर हाथ में त्रिशूल लिये यज्ञ-मण्डप की ओर बड़े वेग से चल पड़े। उनके पीछे रुद्र के हजारों गण गर्जना करते हुए चले। उनके चलने से उड़ी धूलि से आकाश आच्छन्न हो गया। यज्ञ में बैठे यजमान और सदस्य उत्तर की ओर उस धूलिराशि को देखकर कहने लगे, यह क्या अन्धकार है या धूलि है? यदि धूलि है, तो कहाँ से आयी। इस समय वायु भी चल नहीं रही है। गौएँ भी कोई नहीं ले जा रहा है। क्या संसार का प्रलय तो नहीं होने वाला है? दक्षपत्नी प्रसूति आदि स्त्रियों ने उद्विग्न होकर कहा— यह और कुछ नहीं है, सती के अनादर से उत्पन्न इनके पाप का फल है। इन्होंने सती का अनादर किया और उसे मरने से नहीं रोका। जो शिव काल के भी काल हैं, उनका तिरस्कार कर उन्हें कुपित किया। अब इनका कल्याण कहाँ?

सब लोग इस प्रकार कह ही रहे थे कि रुद्र के गणों ने आकर यज्ञमण्डप को चारों ओर से घेर लिया। किसी ने आगे बढ़कर लम्बा बाँस तोड़ डाला, कोई यज्ञ-मण्डप नष्ट करने लगा।

रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन्।
कुण्डेष्वमूत्रयन् केचिद् बिभिदुर्वेदिमेखलाः।।

(भाग. ४.५.१५)

कोई यज्ञपात्र तोड़ने लगे, तो कोई अग्नि को ही बुझाने लगे, कुछ खड़े होकर अग्निकुण्ड में ही मूत्रोत्सर्ग करने लगे। इतने में वीरभद्र ने भृगु को पकड़कर उनकी दाढ़ी नोच डाली। पूषा के दाँत तोड़ डाले। भग नामक सूर्य के नेत्र ही निकाल लिये और भी कितने ही देवताओं के अङ्ग छिन्न-भिन्न कर डाले। दक्ष की छाती पर चढ़कर वीरभद्र ने तीक्ष्ण धार वाले शस्त्र से उनका सिर काटना चाहा, किन्तु उसकी त्वचा तक न कट सकी। यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। शिवजी का ध्यान करने से उन्हें उसके मारने का उपाय ज्ञात हुआ। उन्होंने हाथों से मरोड़कर दक्ष का सिर धड़ से अलग कर दिया

और **'अग्नये स्वाहा'** कहकर दक्षिणाग्नि में उसकी आहुति दे दी। वीरभद्र के इस कर्म की सभी ने सराहना की। अन्त में वीरभद्र यज्ञ मण्डप में अग्नि लगाकर कैलास चले गये।

तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद् गुह्यकालयम्।

(भाग. ४.५.२६)

भगवान् शिव के गणों द्वारा नाना अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से देवताओं के अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये, वे भय से व्याकुल होकर ब्रह्माजी के समीप पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर दक्ष-यज्ञ का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। भगवान् ब्रह्मा और विष्णु पहले से ही यज्ञध्वंस होगा, यह जानकर यज्ञ में गये ही नहीं थे। ब्रह्मा ने देवताओं से कहा— तुमलोगों ने बड़ा अन्याय किया, जो शिव को भाग नहीं दिया, जिनके कुपित हो जाने पर यज्ञ का ही क्या, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नाश हो सकता है, अतः अब तुमलोग वहाँ जाकर उन्हीं को प्रसन्न करो। वे इस समय प्रिया-विहीन हैं और दक्ष के दुर्वचनों से उनका हृदय पीड़ित है। उनके बल-वीर्य की तुलना मैं, विष्णु या अन्य कोई भी देवता नहीं कर सकते। इसलिए तुम सब वहीं जाओ। यह कहकर ब्रह्मा स्वयं सबको साथ लेकर कैलास की ओर चल पड़े। कैलास पर्वत पर एक विशाल वटवृक्ष के नीचे भगवान् शिव को बैठा देखकर लोकपालों सहित समस्त देवताओं ने आदि मनु भगवान् शिव को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। शिव ने भी ब्रह्मा को प्रणाम कर आसन पर बैठाया। तब ब्रह्मा ने भगवान् शिव से कहा— भगवन्! आप साक्षात् ब्रह्म हैं। शक्ति के साथ आप इस विश्व का सृजन, पालन और संहार करते हैं। दक्ष ऐसे अज्ञानी पर आपको दया करनी चाहिये। वह आपका प्रभाव क्या जाने? अब आप उसको क्षमा कर इस यज्ञ का उद्धार करें। जिन्होंने आपको भाग नहीं दिया, वे सब अज्ञानी हैं। यज्ञ के फलदाता आप ही हैं। आप उन सबको क्षमा करें। यजमान जीवित हो जाय, सूर्य के नेत्र हो जायँ। भृगु की दाढ़ी-मूँछ पुनः जम जायँ एवं पूषा के दाँत पूर्ववत् हो जायँ। अन्य भी जिन देवताओं के अङ्ग छिन्न-भिन्न हुए हैं, वे सब पूर्ण हो जायँ। यह आपका यज्ञीय सर्वोत्कृष्ट भाग है, इसे आप ग्रहण कर यज्ञ को पूर्ण करें।

देवताओं द्वारा भगवान् शिव की स्तुति करने पर उन्होंने मुस्कराते हुए प्रसन्न मुद्रा में कहा— ब्रह्मन्! मैं अज्ञानी पुरुषों के दोष न तो किसी से कहता

हूँ और न उनपर ध्यान ही देता हूँ। केवल उनके कल्याणार्थ सुख का विधान कर देता हूँ। अब आप जैसा चाहें, वैसा ही हो जायेगा। दक्ष का मुख बकरे का हो। भग नाम के सूर्य अपना भाग मित्र देवता के चक्षु से देखें। पूषा यजमान के दाँतों से भोजन करें अथवा पीस कर खायें और जिन देवताओं ने मुझे यज्ञ का उत्तम भाग दिया है, वे सब सर्वाङ्गपूर्ण हो जायें। भृगु की दाढ़ी बकरे की हो जाय। यह सुनकर सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और वे भगवान् शिव को साथ लेकर यज्ञ में आये। वहाँ भगवान् शिव के कथनानुसार बकरे का सिर दक्ष-धड़ से जोड़ा गया और उनके निरीक्षण करते ही वह तुरन्त उठकर बैठ गये। अपने सामने शिव को विराजमान देखकर उन्हें बड़ा अनुराग हुआ और उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। अपनी मृतपुत्री का स्मरण कर पश्चात्ताप से उनका कण्ठ भर आया। हाथ जोड़कर गद्गद वाणी से भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्होंने कहा— हे भगवन्! आपने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया, जो दण्ड देकर भी अपना बना लिया। उपेक्षा नहीं की। वेदों की रक्षा के लिए ही आपने ब्राह्मणों की सृष्टि की है, इसीलिए आप सर्वदा उनका पालन किया करते हैं। मैंने सभा में आपको जो दुर्वचन कहे, उनसे मेरा नरक में पतन होता, किन्तु आपने मुझे उससे बचा लिया। आप मुझे क्षमा करें। मैं आपके चरणों में बार-बार प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार शिव से क्षमा माँग कर दक्ष ने पुनः यज्ञकर्म प्रारम्भ किया। इसके बाद भगवान् विष्णु ने अपना यज्ञ भाग ग्रहण किया और दक्ष से कहा— हे प्रजापते! हम तीनों ही देवता एक हैं। जैसे मनुष्य अपने कर, चरणादि अङ्गों में परकीय बुद्धि नहीं करता, उसी प्रकार हम त्रिदेवों में भी भेद दृष्टि नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार भगवान् शिव की दक्षयज्ञध्वंस लीला पूर्ण हुई। जो प्रतिदिन भगवान् शिव की मङ्गलमयी यह लीला श्रवण करता है, उसकी पापराशि भस्म हो जाती है और उसकी त्रिदेवों में समबुद्धि होती है—

इदं पवित्रं परमेशचेष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम्।
यो नित्यदाऽऽकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद् धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः।।

(भाग., ४.८.६१)



१६. शरभावतार लीला

एक समय देवर्षि नारद से ब्रह्मा ने कहा— हे नारद! अब मैं भगवान् आशुतोष के शरभावतार लीला का वर्णन करता हूँ, उसे ध्यान से सुनो। प्राचीन काल में दिति के दो पुत्र उत्पन्न हुए— कनककशिपु और कनकाक्ष। दोनों देवताओं के महान् शत्रु थे। दोनों ने मिलकर सम्पूर्ण संसार के धर्म को भ्रष्ट कर डाला था। पाप के बढ़ जाने के कारण संसार में बड़े उपद्रव होने लगे थे। छोटे भाई कनकाक्ष का वध तो भगवान् विष्णु ने वराह का अवतार धारण कर किया था। कनककशिपु के चार पुत्र थे, उनमें प्रह्लाद सबसे छोटा था। वह सत्यवादी, तपस्वी, धर्मवान् और आत्मज्ञानी था। वह विष्णु का भक्त था। इसलिये वह सर्वदा विष्णु के अष्टाक्षरी मन्त्र का जप करता रहता था। एक दिन हिरण्यकपिशु ने पुत्र प्रह्लाद को गुरु के समीप विद्याध्ययन के लिये भेजा। वह गुरु के यहाँ भी उसी अष्टाक्षरी मन्त्र का जप करता रहता था। गुरु द्वारा उपदिष्ट राजनीति आदि को वह न पढ़ता था।

एक दिन कनककशिपु प्रह्लाद की परीक्षा लेने के लिए अपने समीप बुलाकर पूछा— हे पुत्र! तुमने गुरु से जो कुछ पढ़ा है, उसे सुनाओ। प्रह्लाद ने कहा— हे तात! हमने एकमात्र विष्णु का नाम पढ़ा है, जिसकी सेवा से दोनों लोक में आनन्द प्राप्त होता है। उस वैकुण्ठवासी विष्णु के समान अन्य कोई दूसरा नहीं है। यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को अपने गोद से फेंक दिया और कहा— यह विष्णु कौन है? तुम ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं को छोड़कर हमारे नाम का भजन करो। मुझसे बड़ा इस संसार में कोई नहीं है। मुझसे देवता और दैत्य सब डरते हैं।

पिता के वचन को सुनकर प्रह्लाद के मन में कुछ भी भय नहीं हुआ और वह जोर-जोर से विष्णु का नाम लेने लगा। अब अन्य बालकों को एकत्रित कर उनसे भी विष्णु का भजन कराने लगा। तदनन्तर कनककशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद की ऐसी बुद्धि देखकर दैत्यों को बुलाकर आज्ञा दी कि इसको मार

डालो। उसकी आज्ञा पाकर दैत्यों ने प्रह्लाद को अनेक प्रकार से प्रताड़ित किया। परन्तु उसके शरीर पर किसी प्रकार की चोट नहीं लगी, क्योंकि उसकी रक्षा विष्णु कर रहे थे। प्रह्लाद का न मरना सुनकर क्रोधित कनककशिपु ने प्रह्लाद को अपने समीप बैठाकर कहा— हे पुत्र! तुम्हारा स्वामी कहाँ है? अब मैं तुम्हारा वध करता हूँ। वह तुम्हें कैसे बचाता है, देखता हूँ, यह कहकर खड्ग लेकर प्रह्लाद का सिर काटने के लिये उद्यत हुआ। प्रह्लाद ने निर्भय होकर कहा— पिताजी! हमारे स्वामी सभी जगह हैं और सभी में विद्यमान हैं। वह भक्त की रक्षा सब जगह करते हैं।

प्रह्लाद के वचन को सुनकर हिरण्यकशिपु ने कहा— यदि तुम्हारा स्वामी सब जगह विद्यमान है, तो इस खम्भे में क्यों नहीं दिखायी देता। यह कहकर कनककशिपु ने खम्भे पर तलवार से प्रहार किया। जिससे महाभयङ्कर शब्द निकला। तत्पश्चात् भक्त के पालनहार भगवान् विष्णु नरहरि का रूप धारण कर उसी खम्भे से निकल आये। उन्होंने ब्रह्मा के वरदान की रक्षा करते हुए कनककशिपु को उदर विदीर्ण कर मार डाला। सिंह के समान घोर शब्द करते हुए दैत्यों को भी मार डाला। वे महाक्रोधित एवं महाभयङ्कर रूप से प्रलयकालीन अग्नि के समान प्रतीत हो रहे थे। नरहरि ने भयङ्कर शब्द किया, जिससे तीनों लोक में भय व्याप्त हो गया, पृथिवी काँपने लगी, पर्वत जलने लगे। दिग्गज भी अपने स्थान को छोड़कर भागने लगे। उस समय उनका रूप और भी भयानक हो गया। उन्होंने सहस्र चरण और सहस्र नेत्र धारण कर लिया था। उस समय तीनों अग्नि और बारहों सूर्य प्रकट होकर तीनों भुवनों को जलाने लगे। नरहरि का ऐसा स्वरूप देखकर देवता भी वहाँ ठहर न सके। दूर से ही ब्रह्मा, इन्द्र आदि सभी देवता उनकी स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी ने प्रह्लाद से कहा कि तुम नरहरि को शान्त कर समस्त लोकों के दुःख को दूर करो। ब्रह्मा की बात स्वीकार कर प्रह्लाद नरहरि के समीप गये, परन्तु उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ। वे और जोर से चिल्लाने लगे।

इसके बाद इन्द्र आदि सभी देवता वहाँ से भाग कर भगवान् शिव की शरण में गये। देवताओं ने शिव की स्तुति की और विनयपूर्वक कहा— हे प्रभो! हम सब आपकी शरण में आये हैं। आप ऐसा उपाय करें, जिससे नरहरि का क्रोध शान्त हो। इसी प्रकार का क्रोध वीरभद्र ने दक्ष के यज्ञ

विध्वंस के समय किया था। जिसको आपने ही शान्त किया था। इस क्रोधाग्नि को बुझाने वाला आपके अतिरिक्त अन्य कोई दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

देवताओं की ऐसी स्तुति सुनकर भगवान् आशुतोष ने प्रसन्न होकर नरहरि के क्रोध को शान्त करने के लिए गणों समेत वीरभद्र का स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही अट्टहास करते हुए करोड़ों गणों के साथ भयङ्कर स्वरूप वाले वीरभद्र उपस्थित हुये। उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान् शिव से आज्ञा माँगी। तदनन्तर भगवान् शंकर ने कहा— हे वीरभद्र! तुम जाकर नरहरि के क्रोध को नम्रतापूर्वक शान्त करो। कदाचित् तुम्हारे समझाने से उनके क्रोध की अग्नि शान्त न हो, तो मेरा भाव-बल दिखा कर केवल वचनों से ही उनका गर्व नष्ट करो। उनको किसी प्रकार का दण्ड न देना। उनको मेरे समीप लाओ।

भगवान् गिरिजेश के वचन को सुनकर वीरभद्र शान्तस्वरूप हो गये। तदनन्तर नरहरि के समीप जाकर जिस प्रकार पिता अपने पुत्र से उपदेश का वचन कहता है, उसी प्रकार कहने लगे— हे विष्णु! आपने संसार की स्थिति के निमित्त नरहरि का स्वरूप धारण किया है, आप प्रलय करने का उपाय न करें। तीनों लोकों के पालन करने के निमित्त अब भगवान् शिव की आज्ञा मान कर अन्तर्धान होकर सबको आनन्द प्रदान करें। शिवजी की आज्ञा है कि मैंने प्रलय करने के लिए आपको अपना तेज नहीं दिया था। तुम्हारे समान तीनों लोकों में अन्य कोई शिव भक्त नहीं है। तुमने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा के लिए दैत्यों का संहार कर दिया है। जिस निमित्त आपने यह अवतार धारण किया था, वह कार्य सुगमता से पूर्ण हो गया है, अब आप अपने भयानक स्वरूप को त्याग कर सौम्य स्वरूप को धारण करें।

वीरभद्र के वचन को सुनकर नरहरि ने घी की आहुति पाकर प्रज्वलित अग्नि के समान अति क्रोधित होकर उत्तर देते हुए कहा— हे वीरभद्र! तुम मेरी इच्छा के विरुद्ध यह वचन कहकर मेरे क्रोध को न बढ़ाओ। मुझको ज्ञान देने वाला कौन है? तीनों लोक तो मेरे अधीन है। हम सबके स्वामी हैं। हमारे नाभिकमल से प्रजापति ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। वेद मुझे सत् चित् आनन्द कहते हैं। हम सबके स्वामी, स्वाधीन, सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और प्रलय के

भी करने वाले हैं। वह कौन है, जो तुम्हें अपने प्रभाव से भ्रमित कर मुझे ज्ञान देने के लिए प्रेषित किया है। हम काल के भी काल हैं। देवता हमारी कृपा से जीवन धारण करते हैं। इस प्रकार नरहरि के वचन को सुनकर वीरभद्र ने कहा— हे उपेन्द्र! जिसने मुझे भेजा है, तुम चल कर उन्हें देख लो। वे प्रलयङ्कारी रुद्र हैं। उनके हाथ में पिनाक धनुष और त्रिशूल है। उनके प्रति तुम्हारा यह वचन उचित नहीं है। तुम उनके प्रताप को भूल जैसे गये हो। तुम उनको अन्य देवताओं के समान समझ कर ऐसा गर्व मत करो।

तुम प्रकृति हो और शिव पुरुष हैं। जिन्होंने तुम्हारे शरीर में बलाधान किया, जिससे तुम्हारे नाभि से कमलपुष्प उत्पन्न हुआ और उससे पञ्चमुखी ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उन्हीं शिव ने तुम्हारे अहङ्कार को दूर करने के लिए मुझे भेजा है। तुम केवल एक दैत्य का वध कर इतना अहङ्कार कर रहे हो, अब वृथा वार्ता को न बढ़ाओ, अन्यथा जब हम क्रोध करेंगे, तो तुम लज्जित होगे। संसार में जो मनुष्य बुरे हैं, उसके साथ उपकार करना अपने को ही हानिकारक होता है। जैसे कि सर्प को दूध पिलाने से उसके विष की वृद्धि होती है। इसीलिए तुम देवाधिदेव शिव को अपने अधीन कहते हो। तुम संसार के उत्पन्न और पालन करने वाले नहीं हो, अपितु शिव की आज्ञा से ही अवतार धारण करते हो। क्या नहीं जानते हो कि जब तुमने कमठ का अवतार धारण किया था, उस समय शिव ने तुम्हारे सिर को जलाकर अपने हार में पिरो लिया था। जब तुमने वराह अवतार धारण किया था, तो शिव ने तुम्हारे दाँत उखाड़ कर अपना त्रिशूल बनाया था और तुम्हारे शरीर में प्रहार कर गर्व को दूर किया था। शिव ने ही भैरव अवतार लेकर तुम्हारे पुत्र ब्रह्मा का सिर काटा था, जो अब तक ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर नहीं है।

हे विष्णु! क्या यह बात तुम भूल गये हो? तुम दक्षप्रजापति के यज्ञ का स्मरण करो। हमने ही क्षरभर में तुम्हारा सिर काट डाला था। जब तुमने दधीचि मुनि के साथ युद्ध किया था, तब क्या शिवजी के प्रताप को नहीं देखा था कि तुम देवताओं समेत मुनि की शरण में गये थे। जिस चक्र के बल पर तुम इतना गर्व कर रहे हो, यह तुमको किसने दिया था? तुमको सहस्र कमलपुष्प की पूजा भूल गयी प्रतीत होती है कि पशुपति की माया से तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गयी है। तुम क्षीरसमुद्र में अकेले पड़े रहते हो, तुम कैसे सतोगुणी और निर्दोष हो सकते हो। हम-तुमसे लेकर तृणपर्यन्त सब शिव की

शक्ति के अधीन हैं, तुम्हारा यह सब प्रताप और बल शिवजी की कृपा से है। वही भगवान् देवेश निष्पाप और तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाले हैं। तुम वृथा ही इतना गर्व कर रहे हो। भगवान् शंकर का प्रताप सर्वोपरि है। तुम काल हो, शिव महाकाल हैं और कालों के काल महेश हैं। यदि शिव क्रोधित होंगे, तो तुम्हारा रक्षक कोई न होगा।

इसके बाद वीरभद्र के वचन को सुनकर नृसिंह ने क्रोधित होकर चाहा कि वीरभद्र को पकड़ लें, परन्तु वीरभद्र ने अपना शरीर आकाश में छिपा लिया। तदनन्तर प्रज्वलित अग्नि के समान शिव का तेज प्रकट हुआ। जिसकी उपमा करोड़ों सूर्य, वह्नि और बिजली से नहीं दी जा सकती। वह तेज चारों ओर फैल गया। उस समय सभी तेज आकर शिव के तेज में विलीन हो गये। आकाश भी दृष्टिगोचर नहीं होता था। यह दृश्य देखकर देवता और मुनि आश्चर्य में पड़ गये।

भगवान् शिव की लीला अपरम्पार है, उसे कोई जान नहीं सकता। इतने में ही भगवान् शंकर इस स्वरूप में प्रकट हुए कि उनका आधा शरीर सिंह का था। वे दो पंख और चोंच धारण किये हुए सहस्त्र भुजा से सुशोभित हो रहे थे। शीश में जटा, मस्तक में चन्द्रमा, विराजमान था। उनके महाभयङ्कर दाँत और नख वज्र के समान थे। वही मानों उनके शस्त्र थे। एक कण्ठ, आठ चरण थे और उनके नेत्र क्रोध से लाल सूर्य के समान चमकते थे। उस समय हुङ्कार के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द सुनाई नहीं देता था। वे दाँतों से ओठ को चबा रहे थे। भगवान् शिव का ऐसा भयङ्कर स्वरूप देखकर विष्णु का अहङ्कार दूर हो गया, वे अतिनिस्तेज हो गये। जैसे सूर्य के उदित होने पर खद्योत और सिंह के सामने सिंह का बच्चा निस्तेज हो जाता है, वैसे ही शरभ अवतार के प्रादुर्भूत होने से विष्णु की दशा हो गयी।

इसके बाद भगवान् शरभ ने बलपूर्वक अपना शरीर हिलाया और अपनी दो भुजा से नरहरि की दोनों भुजाओं को पकड़ कर दो भुजा से उनके हृदय को और पूँछ से नरहरि के चरण को पकड़ कर धर दबोचा और उनको लेकर आकाश की ओर उड़ गये और आकाश से पृथिवी पर डालकर पुनः पूर्ववत् पकड़ कर आकाश में ले जाकर पृथिवी पर छोड़ने लगे। इसी प्रकार बारम्बार उड़ाकर नरहरि को निर्बल बना दिया। उस समय देवता और मुनीश्वर

भगवान् शिव की स्तुति कर रहे थे। जब नरहरि का सम्पूर्ण अहङ्कार दूर हो गया और अति असहाय हो गये, तब उन्होंने भगवान् शिव के एक सौ आठ नामों का वर्णन करते हुए स्तुति की और कहा— हे शरभेश्वर! जब मुझे क्रोध उपजे, आप इसी प्रकार मेरा अहङ्कार दूर किया करें। यह कहकर अपना नरहरि का शरीर छोड़कर अन्तर्धान हो गये। उस समय ब्रह्मा आदि देवता और मुनीश्वरों ने महाराज शरभेश्वर की बड़ी सेवा और स्तुति की।

तदनन्तर शरभेश्वर भगवान् शिव ने कहा— हे देवों और मुनीश्वरों! आप सभी भली-भाँति समझ लें, हम और विष्णु कोई भिन्न नहीं हैं, वरन् एक ही हैं। हम ऐसा चरित्र कर परस्पर लीला करते हैं। हम और विष्णु समान हैं, कुछ भी न्यूनता नहीं है। जो विष्णु के विरुद्ध है, वह मेरा भी विरोधी है। मुझे छोड़कर विष्णु की भक्ति नहीं हो सकती। यह कह कर देवाधिदेव गिरीश्वर ने नरहरि का सिर और चर्म उठा लिया। सिर को तो अपनी माला का सुमेरु बनाया और चर्म को ओढ़ लिया और सबके देखते-देखते शिव अन्तर्धान हो गये। तब से भगवान् शिव बाघम्बरधारी बने। देवता आदि अपने मनोरथ को पूर्ण समझ कर अपने-अपने धामों को चले गये। तदनन्तर ब्रह्मा ने कहा— हे नारद! भगवान् आशुतोष की शरभ अवतार की लीला को पढ़ने या सुनने से सभी प्रकार के भय दूर हो जाते हैं और दोनों लोक में बहुत आनन्द की प्राप्ति होती है (शिवपुराण भाषा, उत्तरार्ध, सप्तम खण्ड, अ. २१)।

लिङ्गपुराण के ९६ वें अध्याय में शरभरूप शिव की नृसिंहरूप विष्णु को परास्त करने की कथा बड़ी विचित्र है। कथा कुछ इस प्रकार है—

हिरण्यकशिपु का वध करके विष्णुरूप नृसिंह भयङ्कर गर्जना करने लगे। उनकी भयङ्कर गर्जना के घोर शब्द से ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोक काँप उठे। सब सिद्ध, साध्य, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता भी अपने-अपने प्राण बचाने के लिये भयभीत हो गये। वे लोकालोक पर्वत के शिखर से अति विनम्रभाव से नृसिंह जी की स्तुति करने लगे। परन्तु नृसिंह जी इस पर भी शान्त न हुए। तब तो सब देवता अपनी रक्षा के लिये मंदराचल पर शिवजी के समीप गये। देवताओं की दीन-दशा देखकर शिवजी ने प्रसन्न वदन होकर कहा कि हम शीघ्र ही नृसिंह रूप अग्नि को शान्त करेंगे।

देवताओं की स्तुति सुनकर नृसिंहरूप तेज को शान्त करने के लिए महादेव जी ने भैरवरूप अपने अंश वीरभद्र का स्मरण किया। वीरभद्र उसी क्षण उपस्थित हुए। महादेव जी ने वीरभद्र से कहा— 'वत्स! इस समय देवताओं को बड़ा भय हो रहा है। इस कारण नृसिंह रूप अग्नि को शीघ्र जाकर शान्त करो। पहले तो मीठे वचनों से समझाओ, यदि न समझें, तो भैरवरूप दिखलाओ।

भगवान् शिव की यह आज्ञा पाकर शान्त रूप से वीरभद्र नृसिंह के समीप जाकर उनको समझाने लगे। वीरभद्र ने कहा— 'हे नृसिंह जी! आपने जगत् के कल्याण के लिये अवतार लिया है और परमेश्वर ने भी जगत् की रक्षा का अधिकार आपको दे रखा है। मत्स्यरूप धारण कर आपने इस जगत् की रक्षा की। कूर्म और वराहरूप से पृथिवी को धारण किया, इस नृसिंहरूप से हिरण्यकशिपु का संहार किया, वामनरूप धारण कर राजा बलि को बाँधा। इस प्रकार जब-जब लोकों में दुःख उत्पन्न होता है, तब-तब आप अवतार लेकर सब दुःख दूर करते हैं। आप सब जीवों के उत्पन्न करने वाले और प्रभु हैं। आपसे अधिक कोई शिवभक्त नहीं।'

वीरभद्र के शान्तिमय वचनों को सुनकर नृसिंह की क्रोधाग्नि शान्त न हुई। उन्होंने उत्तर दिया— 'वीरभद्र! तुम जहाँ से आये हो, वहीं चले जाओ।' इस पर भगवान् नृसिंह से वीरभद्र का बहुत विवाद हुआ। अन्त में शिवकृपा से वीरभद्र का अति दुर्धर्ष, आकाश तक व्यापक, बड़ा विस्तृत एवं भयङ्कर रूप हो गया। उस समय भगवान् शिव के उस भयङ्कर तेजस्वी स्वरूप में सब तेज विलीन हो गये। इस रूप का आधा शरीर मृग का और आधा शरभ पक्षी का था। शरभ रूप शिव अपनी पुच्छ में नृसिंह को लपेट कर छाती में चोंच का प्रहार करते हुए जैसे सर्प को गरुड़ ले उड़े, ऐसे लेकर उड़ गये। फिर तो नृसिंह ने भगवान् शिव से क्षमा-याचना की और अति विनम्रभाव से स्तुति करने लगे—

नाम्नामष्टशतेनैवं स्तुत्वाऽमृतमयेन तु।
पुनस्तु प्रार्थयामास नृसिंहः शरभेश्वरम्।।
यदा यदा ममाज्ञानमत्यहङ्कारदूषितम्।
तदा तदापनेतव्यं त्वयैव परमेश्वर।।

(लि.पु., पूर्वभाग, ६.९५-९६)

इसके बाद देवताओं ने वीरभद्र की प्रार्थना करते हुए कहा कि हे वीरभद्र! आपने अपनी कृपा दृष्टि से उसी प्रकार हमलोगों की रक्षा की है, जिस प्रकार पर्जन्य अमृतमय जल की वर्षा से सूखते हुए वृक्षों की रक्षा करता है। तदनन्तर देवताओं के स्तुति को सुनकर वीरभद्र ने कहा— भगवान् विष्णु और शिव में कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक ही हैं। जैसे जल जल में विलीन हो जाता है, दूध दूध में, घृत घृत में; उसी प्रकार भगवान् नरसिंह संसार की रक्षा कर शिव में विलीन हो गये—

उवाच तान् सुरान् देवो महर्षींश्च पुरातनान्।
यथा जले जलं क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम्।।
एक एव तदा विष्णुः शिवलीनो न चान्यथा।
एष एव नृसिंहात्मा सदर्पश्च महाबलः।।

(लि.पु., पूर्वभाग, ९६.१११-११२)

इस प्राकर नृसिंहदेव अपना चर्म (बाघम्बर भगवान् शिव के निमित्त अर्पण कर भगवान् शंकर की महिमा का स्मरण करते हुए अन्तर्धान हो गये तथा देवता भी अपने-अपने धाम को चले गये।

भगवान् शंकर नृसिंह के चर्म को धारण कर बाघम्बरधारी हो गये एवं उनके मुण्ड को अपनी माला में सुमेरु की तरह धारण कर लिया, इसलिये **मुण्डमाली** कहलाये—

नृसिंहकृत्तिवसनस्तदा प्रभृति शङ्करः।
वक्त्रं तन्मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम्।।

(लि.पु., पूर्व., ९६.११५)

जो मनुष्य इस पवित्र आख्यान को पढ़ता है या श्रवण करता है, उसके सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं। यह पुण्यमय आख्यान धन-धान्य को देने वाला, यश, आयु, आरोग्य एवं पुष्टि की वृद्धि करने वाला है।

इसी प्रकार अन्य कई कथाएँ लिङ्गपुराण में ऐसी हैं, जिनमें देवताओं में श्रेष्ठ विष्णु और ब्रह्मा से शिव का उत्कर्ष दिखाया गया है।

वस्तुतः एकेश्वरवाद पर आर्य सिद्धान्त बहुत ही स्पष्ट है। लिङ्गपुराण में जिस प्रकार शिव को परब्रह्म परमात्मा-स्वरूप माना गया है, उसी प्रकार

अन्य पुराणों ने विष्णु, देवी आदि को सर्वशक्तिमान् माना है। परन्तु सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वरस्वरूप है एक ही व्यक्ति। किसी भी पुराण में परमेश्वर की शक्ति का भागीदार नहीं मिलता। पूर्ण पुरुष की ही भिन्न-भिन्न नामों से उपासना की गयी है। कहीं उसको विष्णु कहते हैं, कहीं ब्रह्मा, कहीं गणेश और कहीं शिव। जैसी जिसकी रुचि हुई, उपास्य देव का नाम रख लिया और लगा उसका गुणगान कर अपना जन्म सफल बनाने। आर्य विचारों का अद्भुत ऐक्य सनातन धर्म की महान् विशेषता है। इसलिये भगवान् पुष्पदन्त की सरणि का अनुसरण करते हुए हम भगवान् शिव के चरणों में अपनी प्रणामाञ्जलि समर्पित करते हैं—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

(शिवमहिम्न., श्लो. ७)



१७. कामदहन लीला

तारकासुर तीनों लोकों को अपने वश में करके जब स्वयं इन्द्र हो गया, तब इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अत्यन्त व्याकुल और अनाथ होकर ब्रह्मा की शरण में गये। उन सबने प्रजापति को प्रणाम कर अपने दारुण दुःख की बातें बताकर कहा— प्रभो! आप ही हमारी गति हैं। आप ही हमें कर्तव्य का उपदेश देने वाले हैं और आप ही हमारे धाता एवं उद्धारक हैं। हम सब देवता तारकासुर नामक अग्नि में जलकर अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। जैसे सन्निपात रोग में प्रबल औषधि भी निर्बल हो जाती है, उसी प्रकार उस असुर ने हमारे सभी उपायों को बलहीन बना दिया है।

देवताओं का यह कथन सुनकर ब्रह्मा ने उन सबसे समयोचित बात कही— देवताओं! मेरे ही वरदान से दैत्य तारकासुर इतना बढ़ गया है। अतः मेरे हाथों ही उसका वध होना उचित नहीं। जो जिससे पल कर बढ़ा हो, उसका उसी के द्वारा वध होना योग्य नहीं है। विष के वृक्ष को भी यदि स्वयं सींचकर बड़ा किया गया हो, तो उसे स्वयं काटना अनुचित माना गया है। तारक दैत्य स्वयं अपने पाप से नष्ट होगा। मेरे वर के प्रभाव से न मैं तारकासुर का वध कर सकता हूँ, न भगवान् विष्णु कर सकते हैं और न भगवान् शंकर ही उसका वध कर सकते हैं। दूसरा कोई वीर पुरुष अथवा सारे देवता मिलकर भी उसे नहीं मार सकते।

बात को आगे बढ़ाते हुए ब्रह्मा ने कहा— देवताओं! यदि शिव के वीर्य से कोई पुत्र उत्पन्न हो, तो वही तारक दैत्य का वध कर सकता है। सुर-श्रेष्ठ! इसके लिए जो उपाय मैं बतला रहा हूँ, उसे करो। महादेव जी की कृपा से वह उपाय अवश्य सिद्ध होगा। पूर्वकाल में जिस दक्षकन्या सती ने दक्ष के यज्ञ में अपने शरीर को त्याग दिया था, वही इस समय हिमालयपत्नी मेनका के गर्भ से उत्पन्न हुई है। महादेव जी उस कन्या का पाणिग्रहण अवश्य करेंगे, तथापि देवताओं! तुम लोग भी इसके लिए प्रयत्न करो। भगवान्

शंकर ऊर्ध्वरेता हैं। गिरिराज की पुत्री पार्वती इस समय युवावस्था में प्रवेश कर चुकी हैं और हिमालय पर तपस्या में निरत महादेव जी की प्रतिदिन सेवा करती हैं। तीनों लोकों में सबसे अधिक सुन्दरी पार्वती शिव के सामने रहकर प्रतिदिन उनकी पूजा करती हैं, तथापि वे ध्यानमग्न महेश्वर मन से भी ध्यानहीन स्थिति में नहीं आते। देवताओं! चन्द्रशेखर शिव जिस प्रकार काली को अपनी भार्या बनाने की इच्छा करें, वैसी चेष्टा तुम लोग शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक करो। मैं उस दैत्य के स्थान पर जाकर तारकासुर को बुरे हठ से हटाने की चेष्टा करूँगा। अतः तुम लोग अपने स्थान को जाओ।

देवताओं से ऐसा कहकर ब्रह्मा शीघ्र ही तारकासुर से मिलकर बड़े प्रेम से उससे इस प्रकार कहा— तारक! यह स्वर्ग हमारे तेज का सारतत्त्व है। परन्तु तुम यहाँ के राज्य का पालन कर रहे हो। जिसके लिए तुमने उत्तम तपस्या की थी, उससे अधिक चाहने लगे हो। मैंने स्वर्ग का राज्य कदापि नहीं दिया था। इसलिए तुम स्वर्ग को छोड़कर पृथ्वी पर राज्य करो। असुरश्रेष्ठ! देवताओं के योग्य जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हें वहीं सुलभ होंगे। ऐसा कहकर उस असुर को समझाने के बाद ब्रह्मा शिवा और शिव का स्मरण करके वहाँ से अदृश्य हो गये। तारकासुर भी स्वर्ग को छोड़कर पृथिवी पर आ गया और शोणितपुर में रहकर राज्य करने लगा।

इसके बाद देवता भी इन्द्र के साथ प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रलोक में गये। वहाँ आपस में मन्त्रणा कर सभी देवता प्रेमपूर्वक इन्द्र से बोले— 'भगवन्! शिव की शिवा में जैसे भी काममूलक रुचि हो, वैसा प्रयत्न आपको करना चाहिये। इस प्रकार देवराज इन्द्र से सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन कर देवता प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थान को चले गये। देवताओं के चले जाने पर दुरात्मा तारक दैत्य से पीड़ित इन्द्र ने कामदेव का स्मरण किया। कामदेव तत्काल वहाँ आ पहुँचा। तब इन्द्र ने मित्रता का धर्म बतलाते हुए कामदेव से कहा— मित्र! कालवशात् मुझपर असाध्य सङ्कट आ पड़ा है। उसे तुम्हारे बिना कोई भी दूर नहीं कर सकता। दाता की परीक्षा दुर्भिक्ष में, शूरवीर की परीक्षा रणभूमि में, मित्र की परीक्षा आपत्तिकाल में तथा स्त्रियों के कुल की परीक्षा पति के असमर्थ हो जाने पर होती है। तात! सङ्कट पड़ने पर विनय की परीक्षा होती है और परोक्ष में सत्य एवं उत्तम स्नेह की परीक्षा होती है। मित्रवर! इस समय

मुझ पर जो विपत्ति आयी है, उसका निवारण दूसरे किसी से नहीं हो सकता। यह कार्य केवल मेरा ही नहीं है, अपितु यह समस्त देवता आदि का भी है।

इन्द्र की इस प्रकार की बात सुनकर कामदेव मुस्कुराये और प्रेमपूर्ण गम्भीर वाणी में बोले— देवराज आप ऐसी बात क्यों कहते हैं? जो काम जिससे पूरा हो सके, बुद्धिमान् पुरुष उसे उसी काम में लगाते हैं। मेरे योग्य जो कार्य हो, वह सब आप मुझे बतायें। जो आपके इन्द्रपद को छीनने के लिए दारुण तपस्या कर रहा है, आपके उस शत्रु को मैं सर्वथा तपस्या से भ्रष्ट कर दूँगा।

कामदेव का यह कथन सुनकर इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। वे कामिनियों को सुख देने वाले काम को प्रणाम करके उससे इस प्रकार बोले— मित्रवर! मनोभव! काम! जिसके लिए आज तुम्हारे सहयोग की अपेक्षा हुई है, उसे ठीक-ठीक बता रहा हूँ, सुनो। तारक नाम से प्रसिद्ध महान् दैत्य ब्रह्माजी का अद्भुत वर पाकर अजेय हो गया है और सभी को दुःख दे रहा है। उसके द्वारा बारंबार धर्म का नाश किया गया है। वह सारे संसार को पीड़ित कर रहा है। उससे सभी देवता और समस्त ऋषि दुःखी हुए हैं। सम्पूर्ण देवताओं ने पहले उसके साथ अपनी पूरी शक्ति लगाकर युद्ध किया था, परन्तु उसके ऊपर सबके अस्त्र-शस्त्र निष्फल हो गये। जल के स्वामी वरुण का पाश टूट गया। श्रीविष्णु ने उसके कण्ठ पर चक्र चलाया, किन्तु वह वहाँ कुण्ठित हो गया। ब्रह्माजी ने महायोगीश्वर भगवान् शम्भु के वीर्य से उत्पन्न हुए बालक के हाथ से इस दुरात्मा दैत्य की मृत्यु बतलायी है। यह कार्य तुम्हें अच्छी तरह और प्रयत्नपूर्वक करना है। मित्रवर! उसके हो जाने से हम देवताओं को बड़ा सुख मिलेगा। भगवान् शम्भु गिरिराज हिमालय पर उत्तम तपस्या में लगे हुए हैं। वे हमारे भी प्रभु हैं। वे कामना के वश में नहीं हैं। स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। मैंने सुना है कि गिरिराजनन्दिनी पार्वती पिता की आज्ञा पाकर अपनी दो सखियों के साथ उनके समीप में रहकर उनकी सेवा कर रही हैं। उनका यह प्रयत्न महादेवजी को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए ही है। परन्तु भगवान् शिव अपने मन को संयम-नियम से वश में रखते हैं। मार! जिस तरह भी उनकी रुचि पार्वती में हो जाय, तुम्हें वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये। यही कार्य करके तुम कृतार्थ हो जाओगे और हमारा सारा दुःख नष्ट हो जायेगा। इतना ही नहीं, लोक में तुम्हारा स्थायी प्रताप फैल जायेगा।

इन्द्र के ऐसा कहने पर कामदेव का मुखारविन्द प्रसन्नता से खिल उठा। उसने देवराज से प्रेमपूर्वक कहा— मैं इस कार्य को करूँगा। इसमें संशय नहीं है। ऐसा कहकर शिव की माया से मोहित हुए काम ने उस कार्य के लिए स्वीकृति दे दी और शीघ्र ही उसका भार ले लिया। वह अपनी पत्नी रति और मित्र वसन्त को साथ ले बड़ी प्रसन्नता के साथ उस स्थान पर गया, जहाँ साक्षात् योगीश्वर शिव उत्तम तपस्या कर रहे थे। वहाँ पहुँच कर उसने भगवान् शिव पर अपने बाण चलाये। तब शंकर जी के मन में पार्वती के प्रति आषर्कण होने लगा। अपने धैर्य का ह्रास होता देख महायोगी महेश्वर अत्यन्त विस्मित हो मन-ही-मन इस प्रकार चिन्तन करने लगे। मैं तो उत्तम तपस्या कर रहा था, उसमें विघ्न कैसे आ गया। किस कुकर्मी ने यहाँ मेरे चित्त में विकार पैदा कर दिया।

इस प्रकार विचार करके सत्पुरुषों के आश्रयदाता महायोगी परमेश्वर शिव शङ्कायुक्त हो सम्पूर्ण दिशाओं की ओर देखने लगे। इसी समय वामभाग में बाण खींचे खड़े हुए काम पर उनकी दृष्टि पड़ी। वह मूढ़चित्त मदन अपनी शक्ति के घमण्ड में आकर पुन: अपना बाण छोड़ना ही चाहता था। इस अवस्था में काम पर दृष्टि पड़ते ही परमात्मा गिरीश को तत्काल रोष चढ़ आया। उधर आकाश में बाण सहित धनुष लिये खड़े हुए काम ने भगवान् शंकर पर अपना अमोघ अस्त्र छोड़ दिया, जिसका निवारण करना बहुत कठिन था। परन्तु परमात्मा शिव पर वह अमोघ अस्त्र भी मोघ (व्यर्थ) हो गया, कुपित हुए परमेश्वर के पास जाते ही शान्त हो गया। भगवान् शिव पर अपने अस्त्र के व्यर्थ हो जाने पर मन्मथ को बड़ा भय हुआ। भगवान् मृत्युञ्जय को सामने देखकर वह काँप उठा और इन्द्र आदि समस्त देवताओं का स्मरण करने लगा। अपना प्रयास निष्फल हो जाने पर काम भय से व्याकुल हो उठा। कामदेव के स्मरण करने पर वे इन्द्र आदि सभी देवता वहाँ आ पहुँचे और शम्भु को प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे।

देवता स्तुति कर ही रहे थे कि कुपित हुए भगवान् हर के ललाट के मध्यभाग में स्थित तृतीय नेत्र से बड़ी भारी आग की ज्वाला प्रकट होकर निकली। वे ज्वालाएँ ऊपर की ओर उठ रही थीं। वह आग धू-धू करके जलने लगी। उसकी प्रभा प्रलयाग्नि के समान जान पड़ती थी। वह आग तुरन्त ही

आकाश में उछली और पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर अपने चारों ओर चक्कर काटती हुई धराशायिनी हो गयी। भगवन्! 'क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये', यह बात जबतक देवताओं के मुख से निकले, तब तक उस आग ने कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया। उस वीर कामदेव के मारे जाने पर देवताओं को बड़ा दु:ख हुआ। वे व्याकुल हो 'हाय! यह क्या हुआ?' ऐसा कह कर जोर-जोर से चीत्कार करते हुए रोने-बिलखने लगे।

उस समय विकृत चित्त पार्वती का सारा शरीर सफेद पड़ गया— काटो तो खून नहीं। वे सखियों के साथ अपने भवन को चली गयीं। कामदेव के जल जाने पर उसकी पत्नी रति वहाँ एक क्षण तक अचेत पड़ी रही। पति की मृत्यु के दु:ख से वह इस तरह पड़ी थी, मानो मर गयी हो। थोड़ी देर में जब होश आया, तब अत्यन्त व्याकुल हो रति उस समय तरह-तरह की बातें कहकर विलाप करने लगी।

रति बोली— हाय! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? देवताओं ने यह क्या किया। मेरे स्वामी को बुलाकर नष्ट करा दिया। हाय! हाय! नाथ! स्मर! स्वामिन्! प्राणप्रिय! हा मुझे सुख देने वाले प्रियतम! हा प्राणनाथ! यह यहाँ क्या हो गया।

इस प्रकार रोती बिलखती और अनेक प्रकार की बातें कहती हुई रति हाथ-पैर पटकने और अपने सिर के बालों को नोचने लगी। उस समय उसका विलाप सुनकर वहाँ रहने वाले समस्त वनवासी जीव वृक्ष आदि स्थावर प्राणी भी बहुत दु:खी हो गये। इसी बीच इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता महादेवजी का स्मरण करते हुए रति को आश्वासन दे इस प्रकार बोले— रति! तुम काम के शरीर का थोड़ा-सा भस्म लेकर उसे यत्नपूर्वक रखो और भय छोड़ो। हम सबके स्वामी महादेवजी कामदेव को पुन: जीवित कर देंगे और तुम फिर अपने प्रियतम को प्राप्त कर लोगी। कोई किसी को न तो सुख देने वाला है और न कोई दु:ख ही देने वाला है। सब लोग अपने-अपने कर्म का फल भोगते हैं। तुम देवताओं को दोष देकर, व्यर्थ ही शोक करती हो।

इस प्रकार रति को आश्वासन दे सभी देवता भगवान् शिव के पास आये और उन्हें भक्तिभाव से प्रसन्न करके यों बोले— भगवन्! शरणागतवत्सल महेश्वर! आप कृपा करके हमारे उस शुभवचन को सुनें। शंकर! आप कामदेव

की करतूत पर भली-भाँति प्रसन्नतापूर्वक विचार कीजिये। महेश्वर! कामदेव ने जो यह कार्य किया है, इसमें इसका कोई स्वार्थ नहीं था। दुष्ट तारकासुर से पीड़ित हुए हम सभी देवताओं ने मिलकर उससे यह कार्य कराया है। नाथ! शङ्कर! इसे आप अन्यथा न समझे। सर्वसुखदाता देव! सती साध्वी रति अकेली अत्यन्त दुःखित होकर विलाप कर रही है। आप उसे सान्त्वना प्रदान करें। शङ्कर! यदि इस क्रोध के द्वारा आपने कामदेव को मार डाला, तो हम यही समझेंगे कि आप देवताओं सहित समस्त प्राणियों का अभी संहार कर डालना चाहते हैं। रति का दुःख देखकर देवता नष्टप्राय हो रहे हैं; इसलिये आपको रति का शोक दूर कर देना चाहिये।

इस प्रकार देवताओं का यह वचन सुनकर भगवान् शिव प्रसन्न हो उनसे इस प्रकार बोले— देवताओं और ऋषियों! तुम सब आदरपूर्वक मेरी बात सुनो। मेरे क्रोध से जो कुछ हो गया, वह तो अन्यथा नहीं हो सकता, तथापि रति का शक्तिशाली पति कामदेव तभी तक अनङ्ग (शरीररहित) रहेगा, जब तक रुक्मिणीपति श्रीकृष्ण का धरती पर अवतार नहीं हो जाता। जब श्रीकृष्ण द्वारका में रहकर पुत्रों को उत्पन्न करेंगे, तब वे रुक्मिणी के गर्भ से काम को भी जन्म देंगे। उस काम का ही नाम उस समय 'प्रद्युम्न' होगा— इसमें संशय नहीं है। उस पुत्र के जन्म लेते ही शम्बरासुर उसे हर लेगा। हरण के पश्चात् दानवशिरोमणि शम्बर उस शीशू को समुद्र में डाल देगा। फिर वह मूढ़ उसे मरा हुआ समझकर अपने नगर को लौट जायेगा। रते! उस समय तक तुम्हें शम्बरासुर के नगर में सुखपूर्वक निवास करना चाहिये। वहीं तुम्हें अपने पति प्रद्युम्न की प्राप्ति होगी। वहाँ तुमसे मिलकर काम युद्ध में शम्बरासुर का वध करेगा और सुखी होगा। देवताओं! प्रद्युम्न नामधारी काम अपनी कामिनी रति को तथा शम्बरासुर के धन को लेकर उसके साथ पुनः नगर में जायेगा, मेरा यह कथन सर्वथा सत्य होगा।

भगवान् शिव की यह बात सुनकर देवताओं के चित में कुछ उल्लास हुआ और वे प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर विनीत भाव से बोले— देवदेव! महादेव! करुणासागर! प्रभो! आप कामदेव को शीघ्र जीवन-दान दें तथा रति के प्राणों की रक्षा करें।

देवताओं की यह बात सुनकर सबके स्वामी करुणासागर परमेश्वर शिव पुनः प्रसन्न होकर बोले— देवताओं! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं काम को सबके

हृदय में जीवित कर दूँगा। वह सदा मेरा गण होकर सबके हृदय में विहार करेगा। तब से कामदेव सबके हृदय में उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनका एक नाम **मनसिज** हो गया। अब आप लोग अपने स्थान को जाओ। मैं तुम्हारे दुःख का सर्वथा नाश करूँगा।

ऐसा कहकर रुद्रदेव उस समय स्तुति करने वाले देवताओं के देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। देवताओं का विस्मय दूर हो गया और वे सब प्रसन्न हो गये। तदनन्तर रुद्र की बात पर भरोसा करके स्थिर रहने वाले देवता रति को उनका कथन सुनाकर आश्वार्सन दे अपने-अपने स्थान को चले गये। काम पत्नी रति शिव के बतलाये हुए शम्बर नगर को चली गयी तथा रुद्रदेव ने जो समय बताया था, उसकी प्रतीक्षा करने लगी।

इस प्रकार करुणावरुणालय भगवान् शंकर की यह कामदहनलीला पूर्ण होती है। इसके श्रवण मनन से मनुष्य का कामविकार नष्ट होता है (शिवपुराण, रुद्रसंहिता, अ. १४-१९)।



१८. गौरीविवाह लीला

भगवान् शंकर के नेत्र से उत्पन्न हुई अग्नि ने जब कामदेव को दग्ध किया, तब वहाँ महान् अद्‌भुत शब्द प्रकट हुआ, जिससे सारा आकाश गूँज उठा। उस महान् शब्द के साथ ही कामदेव को दग्ध हुआ देख भयभीत और व्याकुल पार्वती दोनों सखियों के साथ अपने घर चली गयीं। पिता के घर जाकर माता से मिलकर पार्वती ने अपना नया जन्म हुआ माना। वे अपने रूप की निन्दा करती हुई बोलीं— मेरे स्वरूप को तथा जन्म-कर्म को धिक्कार है? ऐसा कहती हुई वे सदा महादेव जी की प्रत्येक चेष्टा का चिन्तन करती रहती थीं। वे सदा 'शिव', 'शिव' का जप किया करती थीं। शरीर से पिता के घर में रहकर भी वे चित्त से पिनाकपाणि भगवान् शंकर के पास पहुँची रहती थीं।

एक दिन इन्द्र की प्रेरणा से इच्छानुसार घूमते हुए देवर्षि नारद हिमालय पर्वत पर आये। उस समय महात्मा हिमवान् ने उनका स्वागत सत्कार किया। तदनन्तर शैलराज ने अपनी कन्या के चरित्र का वर्णन आरम्भ से ही किया। इसके बाद नारद ने पार्वती से कहा— शिवे! तुम्हारे स्वामी महेश्वर विरक्त और महायोगी हैं। उन्होंने केवल कामदेव को जलाकर तुम्हें सकुशल छोड़ दिया है, उसमें यही कारण है कि वे भगवान् भक्तवत्सल हैं। अत: तुम उत्तम तपस्या में संलग्न हो चिरकाल तक महेश्वर की आराधना करो। तपस्या से तुम्हारा संस्कार हो जाने पर रुद्रदेव तुम्हें अपनी सहधर्मिणी बनायेंगे और तुम भी कभी कल्याणकारी शम्भु का परित्याग नहीं करोगी। हे देवि! तुम हठपूर्वक शिव को अपनाने का यत्न करो। शिव के सिवा दूसरे किसी को अपना पति स्वीकार न करना।

इसके बाद महामुनि नारद ने पार्वती को पञ्चाक्षर शिवमन्त्र का विधिपूर्वक उपदेश किया और कहा— देवि! इस मन्त्र का अद्भुत प्रभाव है। इसके श्रवणमात्र से भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं। यह मन्त्र सभी मन्त्रों

का राजा और मनोवाञ्छित फल को देने वाला है। यह मन्त्र भगवान् शङ्कर को बहुत ही प्रिय है तथा साधक को भोग और मोक्ष देने में समर्थ है। शिवे! शौच-सन्तोष आदि नियमों में तत्पर रहकर भगवान् शिव के स्वरूप का चिन्तन करती हुई तुम पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करो। इससे आराध्यदेव शिव शीघ्र ही सन्तुष्ट होंगे। साध्वी! इस तरह तपस्या करो। तपस्या से ही सबको मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है। यह समझाकर नारद ने स्वर्गलोक को प्रस्थान किया।

नारद के चले जाने पर प्रफुल्लचित्त पार्वती ने महादेव को तपस्या से ही साध्य मानकर तपस्या करने का मन में निश्चय किया। अपनी सखी जया और विजया के माध्यम से पिता हिमालय और माता मेना से तपस्या करने के लिए आज्ञा माँगी। पिता ने तो स्वीकार कर लिया। परन्तु माता मेना ने तपस्या के लिए वन में जाने से रोकते हुए 'उ', 'मा' (बाहर न जाओ) ऐसा कहा, इसलिए उस समय शिवा पार्वती का नाम **उमा** हो गया। लेकिन तपस्या के लिए रोकने से पार्वती को दु:खी जान उसने भी जाने की अनुमति दे दी। माता की आज्ञा पाकर उत्तम व्रत का पालन करने वाली पार्वती ने भगवान् शंकर का स्मरण कर अपने मन में बड़े सुख का अनुभव किया। माता-पिता को प्रणाम कर दोनों सखियों के साथ वे तपस्या करने के लिये वन में चली गयीं। उन्होंने अनेक प्रकार के प्रिय वस्त्रों का परित्याग कर कटि-प्रदेश में सुन्दर मूँज की मेखला बाँध शीघ्र ही वल्कल धारण कर लिया। हार का परिहार करके उत्तम मृगचर्म को हृदय से लगाया। तत्पश्चात् वे तपस्या के लिए गङ्गावतरण (गङ्गोत्तरी) तीर्थ चली गयीं। वहीं परम उत्तम शृङ्गी तीर्थ में पार्वती ने तपस्या आरम्भ की। गौरी के तप करने से ही उसका नाम **'गौरी-शिखर'** हो गया। तदनन्तर पार्वती ने ऐसी तपस्या प्रारम्भ की, जो मुनियों के लिए भी दुष्कर थी। ग्रीष्मऋतु में अपने चारों ओर दिन-रात आग जलाये रखकर वे बीच में बैठतीं और निरन्तर पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करती रहती थीं। वर्षा ऋतु में पत्थर की चट्टान पर आसन लगाकर वे निरन्तर वर्षा की जलधारा से भींगती रहती थीं। शीतकाल में निराहार रहकर भगवान् शंकर के भजन में तत्पर हो वे सदा शीतल जल के भीतर खड़ी रहतीं तथा रात भर बर्फ की चट्टानों पर बैठा करती थीं। प्रतिदिन अवकाश मिलने पर

वे सखियों के साथ अपने लगाये वृक्षों को प्रसन्नतापूर्वक सींचतीं और वहाँ पधारे हुए अतिथि का आतिथ्य सत्कार भी करती थीं।

शुद्धचित्त वाली पार्वती प्रचण्ड आँधी, कड़ाके की सर्दी, अनेक प्रकार की वर्षा तथा दुस्सह धूप का भी सेवन किया करती थीं। उनका पहला वर्ष फलाहार में बीता और दूसरा वर्ष उन्होंने केवल पत्ते खाकर बिताया। इस तरह तपस्या करती हुई देवी पार्वती ने क्रमश: असंख्य वर्ष व्यतीत कर दिये। तदनन्तर हिमवान् की पुत्री शिवा पार्वती ने पत्ते खाना भी छोड़कर सर्वथा निराहार रहने लगीं, तो भी तपश्चर्या में उनका अनुराग बढ़ता गया। जब शिवा पार्वती ने पर्ण (पत्ता) खाना छोड़ दिया, तब देवताओं ने उनका नाम **'अपर्णा'** रख दिया। इसके बाद पार्वती एक पैर से खड़ी होकर पञ्चाक्षर मन्त्र का जब करती हुई कठिन तपस्या करने लगीं। तपस्या का फल न मिलता देख जटा-वल्कलधारिणी निर्विकारा पार्वती मुँह नीचे कर सुदीर्घ काल तक तपस्या में लगी रहीं। उन्होंने ऐसी दुष्कर तपस्या की, जो मुनियों के लिए भी अनुकरणीय हुई। उनकी तपस्या के प्रभाव से परस्पर विरोधी जीवों ने भी उस आश्रम में अपने विरोध का परित्याग कर दिया। स्वभावत: एक दूसरे के वैरी जीव चूहे-बिल्ली आदि दूसरे-दूसरे जीव भी उस आश्रम पर कभी रोष आदि विकारों से युक्त नहीं होते थे। वहाँ के सभी वृक्षों में सदा फल लगे रहते थे। इस तरह पार्वती के तप की सिद्धि का साकार रूप दिखाई देने लगा।

इस प्रकार पार्वती की कठोर तपस्या से रुद्रदेव भी बड़े विस्मय में पड़ गये। भक्ताधीन होने के कारण ही वे समाधि से विचलित हो गये। तदनन्तर सृष्टिकर्ता हर ने वसिष्ठ आदि सप्तर्षियों का स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वे सातों ऋषि शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उन्हें आया देख भगवान् शिव ने हँसते हुए कहा— मुनिश्वरों! इस समय गिरिराज कुमारी पार्वती गौरीशिखर पर मुझे पति के रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रही हैं। तुम सबलोग मेरी आज्ञा से वहाँ जाओ और प्रेमपूर्ण हृदय से उनकी दृढ़ता की परीक्षा करो। वहाँ तुम्हें सर्वथा छलयुक्त बातें कहनी चाहिये।

भगवान् शंकर की यह आज्ञा पाकर वे सातों ऋषि तुरन्त ही उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ दीप्तिमती जगन्माता पार्वती विराजमान थीं। सप्तर्षियों ने वहाँ शिवा को तपस्या की मूर्तिमती दूसरी सिद्धि के समान देखा।

उत्तमव्रतधारी सप्तर्षियों ने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया और उनके द्वारा विशेषत: सत्कृत हो वे मस्तक झुकाये इस प्रकार बोले— गिरिराजनन्दिनि! हम जानना चाहते हैं कि तुम किसलिए तपस्या कर रही हो। इसके द्वारा किस देवता को और किस फल को पाना चाहती हो। उन द्विजों के इस प्रकार पूछने पर गिरिराजकुमारी ने उनके सामने अत्यन्त गोपनीय होने पर भी सच्ची बात बतलायी। पार्वती बोलीं— मुनीश्वरों! यद्यपि आप लोग मेरी असम्भव बात सुनकर मेरा उपहास करेंगे, इसलिए कहने में संकोच होता है, तथापि कहती हूँ। देवर्षि नारद का उपदेश पाकर मैं 'भगवान् रुद्र मेरे पति हों' इस मनोरथ को मन में लिये अगाध कठोर तप कर रही हूँ। मेरा मनरूपी पक्षी बिना पँख के ही हठपूर्वक आकाश में उड़ रहा है। मेरे स्वामी करुणानिधान भगवान् शंकर ही उसके इस आशा की पूर्ति कर सकते हैं।

पार्वती का यह वचन सुनकर वे मुनि हँस पड़े और बोले— गिरिराज-कन्यके! तुम नारद के भुलावे में आकर मूर्ख बनकर दुष्कर तप कर रही हो। बाले! तुम जिनके लिए तप कर रही हो, वे रुद्र उदासीन निर्विकार तथा काम के शत्रु हैं, वे अमाङ्गलिक वस्तुओं से ही प्रेम करते हैं। वे लज्जा को तिलाञ्जलि देकर नग्न भ्रमण करते हैं। उनका न कहीं घर है न द्वार। वे किस कुल के हैं, इसका भी किसी को पता नहीं है। निन्दित वेष धारण किये भूतों तथा प्रेतों आदि के साथ रहते हैं। जो सदा अकेले रहने वाले हैं, उनके साथ किसी स्त्री का निर्वाह कैसे होगा। तुम हमारी आज्ञा से घर लौट चलो और इस दुर्बुद्धि को त्याग दो। तुम्हारे योग्य वर भगवान् विष्णु हैं, जो समस्त सद्‌गुणों से युक्त हैं। वे वैकुण्ठ में रहते हैं। नाना प्रकार की क्रीड़ा करने में कुशल हैं। रुद्र के साथ विवाह का हठ छोड़कर सुखी हो जाओ।

सप्तर्षियों की ऐसी बात सुनकर जगदम्बिका पार्वती हँस पड़ीं और बोलीं— मुनीश्वरों! आप लोगों ने अपनी समझ से ठीक ही कहा है। परन्तु मेरा हठ भी छूटने वाला नहीं है। मेरा शरीर पर्वत से उत्पन्न होने के कारण मुझमें स्वाभाविक कठोरता है। गुरुजनों का वचन हितकारक होता है। 'गुरुओं का वचन सत्य होता है' ऐसा जिनका दृढ़ विश्वास है, उन्हें इहलोक और परलोक में परम सुख की प्राप्ति होती है, उन्हें कभी दु:ख नहीं होता। गुरुओं के वचन का कभी किसी तरह भी त्याग नहीं करना चाहिये। मेरा घर बसे

या उजड़ जाय, मुझे तो यह हठ सुख देने वाला है। भगवान् शंकर गुणातीत, अजन्मा, मायारहित हैं। ब्रह्मर्षियों यदि शिव मेरे साथ विवाह नहीं करते, तो मैं सदा कुमारी ही रह जाऊँगी। परन्तु दूसरे के साथ विवाह नहीं करूँगी, यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ। इस प्रकार गिरिजा के उस उत्तम निश्चय को जान कर उन सप्तर्षियों ने उनकी जय-जयकार करते हुए पार्वती को उत्तम आशीर्वाद दिया। इसके बाद वे लोग भगवान् शिव के स्थान को चले गये। वहाँ पहुँच कर उनसे सारा वृत्तान्त निवेदन करके, उनकी आज्ञा ले वे पुन: स्वर्गलोक को चले गये।

सप्तर्षियों के चले जाने के बाद सुन्दर लीला करने वाले भगवान् शंकर ने देवी के तप की परीक्षा लेने का विचार किया। परीक्षा के ही बहाने पार्वती जी को देखने के लिए जटाधारी तपस्वी का रूप धारण कर भगवान् शम्भु उनके आश्रम में गये। उन अद्भुत तेजस्वी ब्राह्मण देवता को आया देख उस समय देवी शिवा ने समस्त पूजन-सामग्रियों द्वारा उनकी पूजा की और आदरपूर्वक कुशल समाचार पूछा। तब ब्राह्मणवेशधारी शंकर ने कहा— मैं इच्छानुसार विचरण करने वाला वृद्ध ब्राह्मण हूँ। पवित्र बुद्धि, तपस्वी दूसरों को सुख देने वाला परोपकारी हूँ। तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो और इस निर्जन वन में किसलिए ऐसी तपस्या कर रही हो?

इसके बाद पार्वती ने कहा— मैं हिमाचल की पुत्री हूँ, मेरा नाम पार्वती है। इससे पहल के जन्म में प्रजापति दक्ष की पुत्री थी। उस समय मेरा नाम सती था। यहाँ दीर्घ काल तक कठोर तपस्या करके भी मैं अपने प्राणवल्लभ को न पा सकी। इसलिए अग्नि में प्रवेश कर जाना चाहती थी। इतने में ही आपको आया देख मैं क्षणभर के लिए ठहर गयी। अब आप जाइये। मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी; क्योंकि भगवान् शिव ने मुझे स्वीकार नहीं किया। किन्तु जहाँ-जहाँ मैं जन्म लूँगी, वहाँ-वहाँ शिव का ही पतिरूप में वरण करूँगी। ऐसा कहकर पार्वती उन ब्राह्मण देवता के सामने ही अग्नि में समा गयीं। किन्तु पार्वती के तप के प्रभाव से वह आग उसी क्षण चन्दन पङ्क के समान शीतल हो गयी। तब ब्राह्मणरूपधारी शिव ने उनसे पूछा— भद्रे! तुम्हारा तप क्या है? यह कुछ समझ में नही आ रहा है। इधर अग्नि से तुम्हारा शरीर नहीं जला, यह तो तपस्या की सफलता का सूचक है, परन्तु अब तक तुम्हें

अपना मनोरथ प्राप्त नहीं हुआ, इससे उसकी विफलता प्रकट होती है। अत: मुझ श्रेष्ठ ब्राह्मण के सामने अपने अभीष्ट को सच-सच बतलाओ।

ब्राह्मण के इस प्रकार कहने पर अम्बिका ने अपनी सखि को उत्तर देने के लिए प्रेरित किया। पार्वती से प्रेरित हो उनकी विजया नामक सखी ने जटाधारी तपस्वी से पार्वती का मनोरथ बतला दिया। विजया का यह यथार्थ वचन सुनकर जटाधारी तपस्वी रुद्र हँसते हुए बोले— सखी ने यह जो कुछ कहा है, उसमें मुझे परिहास का अनुमान होता है। यदि यह सब ठीक है, तो पार्वती देवी अपने मुँह से कहें।

जटिल ब्राह्मण के इस प्रकार कहने पर पार्वती स्वयं कहने लगीं। वे बोलीं— विप्रवर! मेरी सखी ने जो कुछ कहा है, वह सत्य है। मैं मन, वाणी और क्रिया द्वारा सत्य ही कहती हूँ। मैंने पतिभाव से भगवान् शंकर को ही वरण किया है। यद्यपि जानती हूँ, वह दुर्लभ वस्तु भला मुझे कैसे प्राप्त हो सकती है, तथापि मन की उत्कण्ठा से विवश हो मैं तपस्या कर रही हूँ। इसके बाद पार्वती की बात सुनकर ब्राह्मण ने कहा— देवि! महादेव जी के प्रति मेरे मन में गौरव-बुद्धि है। अत: मैं उनको सब प्रकार से जानता हूँ; तो भी यथार्थ बात कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। वृषभ के चिह्न से अङ्कित ध्वजा धारण करने वाले महादेव जी सारे शरीर में भस्म रमाये रहते हैं। सिर पर जटा धारण करते हैं, धोती की जगह बाघ का चाम पहनते और चादर की जगह हाथी की खाल ओढ़ते हैं। हाथ में भीख माँगने के लिए एक खोपड़ी लिये रहते हैं। झुण्ड के झुण्ड साँप उनके सारे अङ्ग में लिपटे देखे जाते हैं। वे विष खाकर ही पुष्ट होते हैं, अभक्ष्यभक्षी हैं, उनके नेत्र बड़े भद्दे और देखने में डरावने लगते हैं। उनका जन्म कब, कहाँ और किससे हुआ, यह आज तक प्रकट नहीं हुआ। घर-गृहस्थी के भोग से वे सदा दूर ही रहते हैं। नंग-धड़ंग घूमते हैं और भूत-प्रेतों को सदा साथ रखते हैं। देवि! मैं समझ नहीं पाता कि किस कारण से तुम उन्हें अपना पति बनाना चाहती हो। तुम्हारा ज्ञान कहाँ चला गया। दक्ष ने अपने यज्ञ में अपनी ही पुत्री सती को केवल यही सोचकर नहीं बुलाया कि वह कपालधारी भिक्षुक की भार्या है।

तुम तो स्त्रियों में रत्न हो, तुम्हारे पिता समस्त पर्वतों के राजा हैं, फिर तुम क्यों इस उग्र तप के द्वारा वैसे पति को पाने की अभिलाषा करती

हो? सोने की मुद्रा (अशर्फी) देकर बदले में उतना ही बड़ा काँच लेना चाहती हो। उज्ज्वल चन्दन छोड़कर अपने अङ्गों में कीचड़ लपेटना चाहती हो। देवेश्वरि! यदि तुम इन्द्र आदि लोकपालों को त्यागकर शिव के प्रति अनुरक्त हो, तो अवश्य ही रत्नों के उत्तम भण्डार को त्यागकर लोहा पाने की इच्छा करती हो। लोक में इस बात को अच्छा नहीं कहा गया है। शिव के साथ तुम्हारा सम्बन्ध मुझे इस समय परस्पर विरुद्ध दिखायी देता है। कहाँ तुम, जिसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदल के समान शोभा पाते हैं और कहाँ वे रुद्र, जो तीन भद्दी आँखें धारण करते हैं। तुम तो चन्द्रमुखी हो और शिव पञ्चमुखी कहे गये हैं। तुम्हारे अङ्ग में चन्दन का अङ्गराग होगा और शिव के शरीर में चिता का भस्म। कहाँ तुम्हारी मृदुल साड़ी और कहाँ शंकर के उपयोग में आने वाली हाथी की छाल। इस तरह तुम्हारे और हर के रूप आदि सब एक दूसरे के विरुद्ध हैं। अतः मुझे तो यह सम्बन्ध नहीं रुचता। फिर तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो। संसार में जो कुछ असद्वस्तु है, वह सब तुम स्वयं चाहने लगी हो।

ब्रह्मचारी से इस प्रकार की बात सुनकर पार्वती शिव की निन्दा करने वाले ब्राह्मण पर मन ही मन कुपित हो उठीं और इस प्रकार बोलीं— ब्राह्मण देवता! आपने जो कुछ कहा है, वह सब मुझे ज्ञात है। परन्तु वह सब झूठा ही है, सत्य कुछ नहीं है। यह ठीक है कि कभी-कभी महेश्वर अपनी लीलाशक्ति से प्रेरित हो तथाकथित अद्‌भुत वेष धारण कर लिया करते हैं। परन्तु वास्तव में वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। आप ब्रह्मचारी स्वरूप धारण कर मुझे ठगने के लिए उद्यत हो यहाँ आयें हैं और अनुचित एवं असङ्गत युक्तियों का सहारा ले छल-कपट से युक्त बातें बोल रहे हैं। वास्तव में शिव निर्गुण ब्रह्म हैं, कारणवश सगुण हो गये हैं। जो निर्गुण हैं, समस्त गुण जिनके स्वरूपभूत हैं, उनकी जाति कैसे हो सकती है? वे भगवान् शिव समस्त विद्याओं के आधार हैं। फिर उन पूर्ण परमात्मा को किसी विद्या से क्या काम? जो सबके आदिकारण हैं, उनकी अवस्था आयु का माप-तौल कैसे हो सकता है? भगवान् शम्भु प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति ये तीनों अक्षय शक्तियों को प्रदान करते हैं। उनके भजन से जीव मृत्यु को जीत लेता है। इसीलिए तीनों लोकों में उनका **'मृत्युञ्जय'** नाम प्रसिद्ध है। भगवान् शंकर की सेवा न करने से मनुष्य सात जन्मों तक दरिद्र होता है। उनकी सेवा

से मनुष्य लोक में कभी नष्ट न होने वाली लक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। यद्यपि यहाँ माङ्गलिक कही जाने वाली वस्तुएँ शंकर का सेवन नहीं करतीं, तथापि उनके स्मरणमात्र से ही सबका मङ्गल होता है। शिव के अङ्गों के स्पर्श से अपवित्र वस्तु भी पवित्र हो जाती है। इसीलिए देवतालोग उनके शरीर से गिरी हुई भस्म को धारण करने की लालसा करते हैं। परब्रह्म परमात्मा शिव का जो निर्गुण रूप है, उसे आप जैसे बहिर्मुख लोग कैसे जान सकते हैं। आपने अमित तेजस्वी महादेव जी की निन्दा की है और मैंने जो आपकी पूजा की है, उससे मुझे पाप की भागिनी होना पड़ा है। शिवद्रोही को देखकर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। शिवद्रोही का दर्शन हो जाने पर प्रायश्चित्त करना चाहिये।

ब्रह्मा और विष्णु भी कभी उन महात्मा हर के समान नहीं हो सकते, फिर दूसरे देवताओं की तो बात ही क्या है? वे भक्तवत्सल सर्वेश्वर शिव ही हम सबके परमेश्वर हैं। दीनों पर अनुग्रह करने वाले उन महादेव को ही प्राप्त करने की मेरी इच्छा है। ऐसा कहकर गिरिराजनन्दिनी पार्वती चुप हो गयीं और निर्विकार चित्त से भगवान् शिव का ध्यान करने लगीं। देवी गिरिजा की बात सुनकर वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण ज्यों ही कुछ फिर कहने के लिए उद्यत हुआ, त्यों ही शिव में आसक्त-चित्त होने के कारण उनकी निन्दा सुनने से विमुख हुई पार्वती अपनी सखी विजया से शीघ्र बोलीं— सखि! इस अधम ब्राह्मण को यत्नपूर्वक रोको, यह फिर कुछ कहना चाहता है। यह केवल शिव की निन्दा ही करेगा, जो शिव की निन्दा करता है, केवल उसी को पाप नहीं लगता, जो उस निन्दा को सुनता है, वह भी पाप का भागी होता है—

न केवलं भवेत्पापं निन्दाकर्तुः शिवस्य हि।
यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक् स भवेदिह।।

(शि.पु., रु.सं., पा.ख., २८/३७)

भगवान् शिव की निन्दा करनेवाला वध्य होता है। यदि वह ब्राह्मण हो, तो उसे अवश्य ही त्याग देना चाहिये और उस निन्दा के स्थान से शीघ्र दूर चला जाना चाहिये। ब्राह्मण होने के कारण यह वध्य तो नहीं है, अतः त्याग देने योग्य है। अतः इस स्थान को छोड़कर हम लोग अन्यत्र चलें, जिससे इस अज्ञानी के साथ बात करने का अवसर न मिले।

ऐसा कहकर उमा ने ज्यों ही अन्यत्र जाने के लिए पैर उठाया, त्यों ही भगवान् शिव ने अपने साक्षात् स्वरूप से प्रकट हो प्रिया पार्वती का हाथ पकड़ लिया और कहा— प्रिये! मुझे छोड़कर कहाँ जाओगी? अब मैं फिर कभी तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा। मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो। देवि! आज से मैं तपस्या के द्वारा मोल खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ। अब तुम्हारे बिना मुझे एक क्षण भी युग के समान जान पड़ता है। तुम मेरी सनातन सहगामिनी हो।

देवाधिदेव महादेव के ऐसा कहने पर पार्वती देवी आनन्दमग्न हो उठीं। उनका तपस्याजनित पहले का सारा कष्ट मिट गया। सती साध्वी पार्वती की सारी थकावट दूर हो गयी; क्योंकि परिश्रम का फल प्राप्त हो जाने पर प्राणी का पहले वाला सारा श्रम नष्ट हो जाता है।

भगवान् शंकर के वर माँगने के लिए कहने पर उनको बारंबार भक्तिभाव से प्रणाम कर पार्वती ने कहा— नाथ! आप आत्मा हैं और मैं प्रकृति। शंकर! आप मेरे लिए याचना करें और हिमवान् को दाता बनने का सौभाग्य प्रदान करें। पार्वती के ऐसा कहने पर महेश्वर ने लोकलीला का अनुसरण करने के लिए वैसा करना स्वीकार कर लिया। तदनन्तर हर्ष से भरे हुए शम्भु अन्तर्धान हो कैलास को चले गये। भगवान् शंकर के अपने स्थान को चले जाने पर सखियों सहित पार्वती भी अपने रूप को सफल करके महादेव जी का नाम लेती हुईं पिता हिमालय के घर चली गयीं। पार्वती का आगमन सुनकर मेना और हिमालय बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने गृहस्थ-आश्रम को सफल माना और यह अनुभव किया कि कुपुत्र की अपेक्षा सुपुत्री श्रेष्ठ है।

इसके बाद अरुन्धती सहित सप्तर्षियों ने समझा-बुझाकर मेना और हिमालय को पार्वती का विवाह शंकर के साथ करने के लिए राजी किया। तदनन्तर वे सप्तर्षि भगवान् शिव के पास गये। वहाँ जाकर शिव को नमस्कार कर उनसे बोले— महेश्वर! हमने नाना प्रकार के सुन्दर वचन और इतिहास सुना कर गिरिराज और मेना को समझा दिया है। पर्वतराज ने आपके लिये पार्वती का वाग्दान कर दिया है। अब आप अपने पार्षदों तथा देवताओं के साथ उनके यहाँ विवाह के लिऐ बारात लेकर जाइये। महादेव! अब शीघ्र वेदोक्त रीति के अनुसार पार्वती का अपने लिए पाणिग्रहण

कीजिये। ऐसा कहकर वे सातों ऋषि उनकी आज्ञा ले वहाँ से प्रसन्नतापूर्वक अपने धाम को चले गये।

इधर सप्तर्षियों के जाने के बाद पर्वतराज अपने भाई-बन्धुओं सगे-सम्बन्धियों को बुलाकर विवाह की पूर्ण तैयारी करने लगे। नगर को विचित्र रीति से सजाना आरम्भ हो गया। हिमवान् की आज्ञा से बुद्धिमान् विश्वकर्मा देवताओं आदि के निवास के लिए उनके कृत्रिम लोकों का भी यत्नपूर्वक निर्माण करने लगे। हिमवान् ने अपने पुरोहित गर्ग जी से बड़ी प्रसन्नता के साथ लग्नपत्रिका लिखवायी। उन्होंने आत्मीयजनों से विविध मङ्गल-सामग्रियों के साथ लग्नपत्रिका भगवान् शिव के पास भेजवायी।

भगवान् शिव ने उस लग्नपत्रिका को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और बाँच कर सुनायी। हिमालय के यहाँ से आये हुए लोगों को सम्मान के साथ विदा किया। तदनन्तर महालीला करने वाले देवेश्वर भगवान् शम्भु ने लोकाचार का सहारा ले तत्काल नारदमुनि का स्मरण किया। स्मरण करते ही नारद मुनि वहाँ आ गये। इसके बाद भगवान् शंकर ने उनसे कहा— मुने! तुम विष्णु आदि सभी देवताओं, मुनियों और सिद्धों तथा अन्य लोगों को भी मेरी ओर से निमन्त्रित करो। सभी लोग सज-धजकर स्त्री-पुरुषों के साथ बारात के लिए प्रस्थान करें।

इसके बाद भगवान् विष्णु सुन्दर वेष धारण कर अपनी पत्नी और दल-बल के साथ कैलास पर्वत पर आ गये। ब्रह्मा भी अपने गणों के साथ आ गये। तदनन्तर इन्द्र आदि लोकपाल और उनकी स्त्रियाँ आवश्यक सामान के साथ सज-धजकर वहाँ आयीं। मुनि, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, उपदेवता तथा अन्य लोग भी निमन्त्रित हो उत्सव मनाते हुए वहाँ आये। सबके सब उत्सव मना रहे थे। भगवान् शिव की आज्ञा पाकर सब लोग उनके प्रत्येक कार्य को अपना कार्य समझ कर नियन्त्रित रूप से सम्पन्न करने लगे। उस समय सातों मातृकायें बड़ी प्रसन्नता के साथ शिव को यथायोग्य आभूषण पहनाने लगीं।

परमेश्वर भगवान् शिव का जो स्वाभाविक वेष था, वही उनकी इच्छा से उनके लिए आभूषण की सामग्री बन गयी। उस समय चन्द्रमा स्वयं उनके मुकुट के स्थान पर विराजे। उनका जो सुन्दर ललाटवर्ती तीसरा नेत्र था, वही शुभ तिलक बन गया। कानों के आभूषणों के रूप में दो सर्प बतायें गये हैं,

वे नाना प्रकार के रत्नों से युक्त हो दो कुण्डल बन गये। अन्यान्य अङ्गों में स्थित सर्प उन-उन अङ्गों के अति रमणीय नाना रत्नमय आभूषण हो गये। उनके शरीर में जो भस्म लगा हुआ था, वही चन्दन आदि का अङ्गराग बन गया और उनके जो गजचर्म आदि परिधान थे, वे सुन्दर दिव्य दुकूल बन गये। इस प्रकार उनका रूप इतना सुन्दर हो गया कि उसका वर्णन करना अति कठिन है।

इसके बाद भगवान् शंकर सम्पूर्ण लौकिक वैदिक आभ्युदयिक कर्म सम्पन्न कराकर देवताओं और ब्राह्मणों को आगे करके बारात के लिए प्रस्थान किया। भगवान् की आज्ञा पाकर गणेश्वर शङ्ख, कर्ण, केकराक्ष, विकृत, विशाख, पारिजात, विकृतानन, दुन्दुभ, कपाल, सन्दारक, भानुक, प्रमथ, वीर, नन्दी, भृङ्गी, वृषभ, स्कन्द, रेणुक, दारुक, घण्टाकर्ण तथा धेनुकर्ण आदि अपने असंख्य कोटि-कोटि गणों तथा भूतों के साथ बारात के लिए चल पड़े। वे सब सहस्त्र हाथों से युक्त, जटा का मुकुट धारण करने वाले, मस्तक पर चन्द्रमा, गले में नील चिह्न, त्रिनेत्रधारी, भस्म लपेटे हुए थे। करोड़ों भूत भी शोभा पा रहे थे, जिनका रूप विकराल था।

शाकिनी, यातुधान, वेताल, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रमथ आदि गण, तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहू आदि श्रेष्ठ गन्धर्व तथा किन्नर भी बड़े हर्ष से भरकर बाजा बजाते हुए चल पड़े। सभी शिव जी का विवाह देखने के लिए बहुत उत्कण्ठित थे। उस समय भगवान् शंकर वृद्ध वृषभ पर आरूढ़ हो सबके साथ यात्रा करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे। इस प्रकार विष्णु आदि देवताओं एवं अपने गणों के साथ भगवान् शिव हिमालय नगर के समीप सानन्द आ पहुँचे।

गिरिराज हिमालय ने जब यह सुना कि सर्वव्यापी शंकर मेरे नगर के निकट आ गये हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर उन्होंने बहुत सा सामान एकत्र करके पर्वतों और ब्राह्मणों को महादेव जी के आगवानी के लिए भेजा। स्वयं भी बड़ी भक्ति के साथ महेश्वर का दर्शन करने के लिए गये। उस समय उनका हृदय अधिक प्रेम के कारण द्रवित हो रहा था और वे प्रसन्नतापूर्वक अपने सौभाग्य की सराहना कर रहे थे। महादेव जी को सामने देखकर हिमालय ने उन्हें प्रणाम किया। साथ ही समस्त पर्वतों और ब्राह्मणों ने भी सदाशिव की वन्दना की। वे वृषभ पर आरूढ़ थे।

उस अवसर पर मेना के मन में भगवान् शिव के दर्शन की इच्छा हुई। उन्होंने नारद को बुलाकर कहा— मुने! गिरिजा के होने वाले पति को पहले मैं देखूँगी। शिव का कैसा रूप है? जिनके लिए मेरी बेटी ने ऐसी उत्कृष्ट तपस्या की है।

उस समय भगवान् शिव भी मेना के भीतर के अहङ्कार को जानकर श्रीविष्णु और ब्रह्माजी से अद्भुत लीला करते हुए बोले— तात! आप दोनों मेरी आज्ञा से गिरिराज के द्वार पर चलिये। हम पीछे से आयेंगे। यह सुनकर भगवान् हरि ने सब देवताओं को बुलाकर वैसा करने के लिए कहा। शिव के चिन्तन में तत्पर रहने वाले समस्त देवताओं ने शीघ्र वैसी व्यवस्था करके उत्सुकतापूर्वक वहाँ से पृथक्-पृथक् यात्रा की।

बारात देखने के लिए मेना अपने भवन की सबसे ऊपरी छत पर जाकर खड़ी थीं। उस समय भगवान् विश्वेश्वर ने अपने को ऐसी वेषभूषा में दिखाया, जिससे मेना के हृदय को ठेस पहुँचे। सबसे पहले बारात के जुलूस में विविध वाहनों पर विराजित खूब सजे-धजे, बाजे-गाजे के साथ पताकायें, फहराते हुए वसु, गन्धर्व आये, फिर मणिग्रीवादि यक्ष, तदनन्तर इन्द्र आदि दश दिक्पाल, चन्द्रमा, सूर्य, भृगु आदि मुनीश्वर तथा ब्रह्मा आये। ये सब उत्तरोत्तर एक से एक विशेष सुन्दर शोभामय रूप-गुण से सम्पन्न थे। इसी बीच भगवान् विष्णु भी पधारे। लक्ष्मीपति विष्णु प्रभापुञ्ज से प्रकाशमान थे। उन्हें देखते ही मेना के नेत्र चकित हो गये। पहले तो उन्होंने विष्णु को ही शिवा का भावी पति समझा। लेकिन जब नारद ने कहा कि पार्वती के पति तो दूलह शिव हैं, उन्हें इनसे भी बढ़कर समझना चाहिये। उनकी शोभा का वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। वे ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के अधिपति हैं तथा स्वयंप्रकाश परमात्मा हैं। तब मेना ने कहा— इस समय मैं पार्वती को जन्म देने के कारण धन्य हो गयी। ये गिरीश्वर भी धन्य हैं। जिन-जिन अनन्त देवताओं और देवेश्वरों का मैंने दर्शन किया है, इन सबके जो स्वामी हैं, वे मेरी पुत्री के पति होंगे। उनके सौभाग्य का क्या वर्णन किया जाय। भगवान् शिव को पतिरूप में पाने के कारण पार्वती के सौभाग्य का सौ वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

मेना ने प्रेमपूर्ण हृदय से ज्यों ही उपर्युक्त बात कहीं, त्यों ही अद्भुत लीला करने वाले भगवान् रुद्र सामने आ गये। उनके सभी गण अद्भुत तथा

मेना के अहङ्कार को चूर्ण करने वाले थे। भगवान् शिव अपने आपको माया से निर्लिप्त एवं निर्विकार दिखाते हुए वहाँ आये। उन्हें आया जान नारद ने मेना से कहा— सुन्दरि! देखो, ये साक्षात् भगवान् शंकर हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए शिवा ने बड़ी भारी तपस्या की थी।

नारद के ऐसा कहने पर मेना ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अद्भुत आकार वाले भगवान् महेश्वर की ओर देखा। वे स्वयं तो अद्भुत थे ही, उनके अनुचर भी बड़े अद्भुत थे। किन्हीं के मुँख टेढ़े थे, तो कोई अत्यन्त कुरूप दिखायी देते थे। किन्हीं का मुँह दाढ़ी-मूँछ से भरा हुआ था, कोई लंगड़े थे, तो कोई अन्धे, कोई सींग, कोई डमरु और कोई गोमुख बजाते थे। कितनों के मुख पीठ की ओर लगे थे। इसी तरह कोई बिना हाथ के थे, तो कोई अनेक हाथ वाले थे। किन्हीं के हाथ उलटे लग रहे थे। ऐसे अद्भुत असंख्य शिव के गण थे। उन्हीं के बीच में भगवान् शंकर भी थे। जो निर्गुण होते हुए भी परम गुणवान् थे। वे वृषभ पर सवार थे। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र। उनके सारे अङ्गों में विभूति लगी हुई थी, जो उनके लिए आभूषण का काम देती थी। मस्तक पर जटाजूट और चन्द्रमा का मुकुट, दस हाथ और उनमें से एक में कपाल लिये, शरीर पर बाघम्बर का दुपट्टा और हाथ में पिनाक एवं त्रिशूल, आँखें भयानक, आकृति विकराल और हाथी की खाल का वस्त्र। यह सब देखकर शिवा की माता बहुत डर गयीं, चकित हो गयीं, व्याकुल होकर काँपने लगीं और उनकी बुद्धि चकरा गयी। उस अवस्था में नारद ने अँगुली से दिखाते हुए उनसे कहा— 'ये ही हैं, भगवान् शिव।'

नारद की यह बात सुनकर सती मेना दु:ख से भर गयीं और हवा के झोंके खाकर गिरी हुई लता के समान तुरन्त भूमि पर गिर पड़ीं। 'यह कैसा विकृति दृश्य है? मैं दुराग्रह में पड़कर ठगी गयी।' यों कह कर मेना उसी क्षण मूर्छित हो गयीं। तदनन्तर सखियों ने जब नाना प्रकार के उपाय किये, तो गिरिराजप्रिया मेना धीरे-धीरे होश में आयीं। इसके बाद वे क्षुब्ध होकर विलाप एवं तिरस्कार करने लगीं। सभी देवता आदि उन्हें समझाने लगे। तब मेना ने देवताओं से बारंबार विलाप करके कहा— शिव का रूप बड़ा भयंकर है। मैं उन्हें कदापि अपनी पुत्री नहीं दूँगी। आप सब देवता प्रपञ्च करके क्यों मेरी इस कन्या के उत्कृष्ट रूप को व्यर्थ करने के लिए उद्यत हैं? मैं शस्त्र

आदि से अपनी बेटी के टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगी, परन्तु उसे शंकर के हाथ में नहीं दूँगी। तुम सब लोग दूर हट जाओ, किसी को मेरे पास नहीं आना चाहिये।

मेना के इस प्रकार के बर्ताव से वहाँ हाहाकार मच गया। तब हिमालय ने अत्यन्त व्याकुल हो वहाँ आकर समझाने का प्रयत्न किया। तब उनकी बात सुनकर मेना ने कहा— नाथ! आप अपनी पुत्री पार्वती के गले में रस्सी बाँधकर बेखटके पर्वत से नीचे गिरा दीजिये, परन्तु मैं इसे हर के हाथ में नहीं दूँगी। स्वामिन्! यदि विकटरूपधारी रुद्र को आप पुत्री दे देंगे, तो मैं निश्चय ही अपना प्राण त्याग दूँगी।

मेना ने जब हठपूर्वक ऐसी बात कही, तब पार्वती स्वयं आकर यह रमणीय वचन बोलीं— माँ! तुम्हारी बुद्धि तो बड़ी शुभकारक है। इस समय विपरीत कैसे हो गयी। तुम धर्म को क्यों छोड़ रही हो। रुद्र सबकी उत्पत्ति के कारणभूत साक्षात् ईश्वर हैं। इनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। फिर मैंने मन, वाणी और क्रिया द्वारा स्वयं हर का वरण किया है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वह करो।' पार्वती की यह बात सुनकर शैलेश्वरप्रिया मेना बहुत ही उत्तेजित हो गयीं और पार्वती को डाँटती हुई दुर्वचन कहकर रोने तथा विलाप करने लगीं। तदनन्तर स्वयं ब्रह्मा तथा सनकादि सिद्धों ने भी मेना को बहुत समझाया, परन्तु वे किसी की बात न मानकर सबको डाँटती रही। इसके बाद मेना की महान् हठ की बात सुनकर शिवप्रिय भगवान् विष्णु वहाँ आकर समझाने का प्रयत्न करने लगे। श्रीविष्णु के द्वारा प्रयत्नपूर्वक समझाने पर मेना का मन कुछ कोमल हुआ। परन्तु शिव को कन्या न देने का हठ उन्होंने तब भी नहीं छोड़ा। शिव की माया से मोहित होने के कारण ही उन्होंने ऐसा दुराग्रह किया था। उस समय मेना ने शिव के महत्त्व को स्वीकार कर लिया। कुछ ज्ञान हो जाने पर उन्होंने श्रीहरि से कहा— यदि भगवान् शिव सुन्दर शरीर धारण कर लें, तब मैं उन्हें अपनी पुत्री दे सकती हूँ, अन्यथा कोटि उपाय करने पर भी ऐसा नहीं होने दूँगी। यह बात मैं सच्चाई और दृढ़ता के साथ कह रही हूँ। यह कहकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रत का पालन करने वाली मेना शिव की इच्छा से प्रेरित होकर चुप हो गयीं। धन्य है शिव की माया, जो सब को मोह में डाल देती है।

देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए नारद ने भगवान् शंकर के समीप जाकर नाना स्तोत्रों से उन्हें सन्तुष्ट किया। तब भगवान् शंकर ने अद्भुत, उत्तम और दिव्य रूप धारण कर लिया। शम्भु का वह स्वरूप कामदेव से भी अधिक सुन्दर तथा लावण्ययुक्त था। इस रूप को मेना ने देखा, तो आश्चर्यचकित हो गयीं। वैसे विलक्षण रूप में शिव को देखकर मेना क्षण भर के लिए चित्र-लिखी सी रह गयीं। फिर बड़ी प्रसन्नता के साथ बोलीं— महेश्वर! मेरी पुत्री धन्य है, जिसने बड़ा भारी तप किया, जिसके प्रभाव से आप मेरे इस घर में पधारे। पहले जो मैंने आपकी अक्षम्य निन्दा की है, उसे आप क्षमा करें और इस समय पूर्णत: प्रसन्न हो जायँ।

इसके बाद शैलप्रिया मेना ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, फिर वे लज्जित हो गयीं। इतने में पुरवासिनी स्त्रियाँ भगवान् शिव के दर्शन की लालसा से घर के कामों को छोड़कर जो जैसी थीं, वैसे ही अस्तव्यस्तरूप में दौड़ आयीं। भगवान् शंकर का वह मनोहर रूप देखकर वे सब मोहित हो गयीं। इसके बाद स्त्रियों ने चन्दन और अक्षत से शिव का पूजन किया और बड़े आदर से उनके ऊपर खीलों की वर्षा की। तदनन्तर देवताओं के साथ कौतूहलपूर्वक भगवान् शिव हिमालय के धाम में गये। हिमालय की श्रेष्ठ पत्नी मेना शम्भु की आरती उतारने के लिए हाथ में दीपकों से सजी हुई थाली लेकर ऋषिपत्नियों तथा अन्य स्त्रियों के साथ आदरपूर्वक द्वार पर आयीं। वहाँ आकर मेना ने सम्पूर्ण देवताओं से सेवित गिरिजापति महेश्वर शंकर को बड़े प्यार से देखा। वे अपने होने वाले जामाता की शोभा का सानन्द अवलोकन करती हुईं उनकी आरती उतारने लगीं।

इसी बीच गिरिराज के अन्त:पुर की स्त्रियाँ पार्वती को साथ ले कुलदेवी की पूजा के लिए बाहर निकलीं। वहाँ देवताओं ने अपलक दृष्टि से प्रसन्नता पूर्वक उमा को देखा। उनकी नखशिख कान्ति अवर्णनीय थी। अम्बिकादेवी की पूजा करने के पश्चात् ब्राह्मण-पत्नियों के साथ उमा पुन: अपने पिता के रमणीय धाम में लौट आयीं। भगवान् शंकर भी ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओं के साथ हिमालय के बताये हुए अपने नियत स्थान पर प्रसन्नतापूर्वक गये। वहाँ गिरिराज के द्वारा नाना प्रकार की सुन्दर समृद्धि से सम्मानित हुए वे सब लोग सुखकपूर्वक ठहर गये और भगवान् शिव की सेवा करने लगे।

इसके बाद गिरिश्रेष्ठ हिमवान् ने प्रसन्नतापूर्वक उत्साह के साथ वेदमन्त्रों द्वारा दुर्गा और शिव को उपस्नान करवाया। तत्पश्चात् गिरिराज की प्रार्थना से श्रीविष्णु आदि देवता उनके घर आकर वैदिक और लौकिक आचार का पालन कर भगवान् शिव के दिये हुए आभूषणों से देवी शिवा को अलंकृत किया। इसके पहले सखियों और ब्राह्मणपत्नियों ने पार्वती को स्नान करवाया, फिर सब प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर उनकी आरती उतारीं। उस अवसर पर दोनों पक्षों में महान् आनन्ददायक उत्सव होने लगा। ब्राह्मणों को शास्त्रोक्त रीति से नाना प्रकार का दान दिया गया। तदनन्तर सभी देवता हिमाचल की आज्ञा ले जनवासे में चले गये।

इसके बाद हिमाचल के पुरोहित गर्ग ने कन्यादान का समय जान हिमाचल से श्रीशंकर तथा बारातियों को बुलाने के लिए कहा। फिर तो बाजे बजने लगे। हिमाचल के मन्त्रियों ने जाकर वर और वरातियों से शीघ्र पधारने के लिए प्रार्थना की। तदनन्तर भगवान् शिव को सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर वृषभ की पीठ पर बैठाया गया और जय-जयकार करते हुए सब लोग चले। भगवान् शंकर को आगे करके बाजे बजाते और कौतुक करते हुए सभी बराती हिमालय के घर को गये। उस समय समस्त देवेश्वर हर्षोल्लास के साथ शिव पर फूलों की वर्षा कर रहे थे। इस प्रकार पूजित और अनेक स्तुतियों से प्रशंसित हो परमेश्वर शिव ने यज्ञमण्डप में प्रवेश किया। वहाँ श्रेष्ठ पर्वतों ने शिव को वृषभ से उतारा और महान् उत्सव के साथ उन्हें घर के भीतर ले गये। हिमाचल ने भी भक्तिभाव के साथ उनकी आरती उतारी। इसके बाद हिमालय ने अन्तर्वेदि में जहाँ समस्त आभूषणों से सुसज्जित उनकी कृषाङ्गी कन्या वेदि के ऊपर विराजमान थीं, वहाँ ब्रह्मा और श्रीविष्णु के साथ महादेव जी को ले गये। तदनन्तर गर्ग ने पुण्याहवाचन करते हुए पार्वती जी की अञ्जलि में चावल भरे और शिवजी के ऊपर अक्षत छोड़ा। परम उदार सुमुखी पार्वती ने दही, अक्षत, कुश और जल से रुद्रदेव का पूजन किया, जिनके लिए उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की थीं। फिर ब्रह्मा और गर्गादि मुनियों के कहने से शम्भु ने लोकाचारवश शिवा का पूजन किया।

इसी समय वहाँ गर्गाचार्य से प्रेरित हो मेना सहित हिमवान् ने कन्यादान का कार्य प्रारम्भ किया। उस समय वस्त्राभूषणों से विभूषित

महाभागा मेना सोने का कलश लिये पति हिमवान् के दाहिने बैठीं। तत्पश्चात् शैलराज ने अर्घ्य-पाद्य आदि के द्वारा वर का पूजन करके वस्त्र, चन्दन और आभूषणों द्वारा उनका वरण किया। तत्पश्चात् हिमाचल के कहने पर ब्राह्मण लोग कन्यादान का सङ्कल्प वाक्य बोलने लगे। इसी समय सुन्दर लीला करने वाले परमेश्वर शम्भु के द्वारा मन-ही-मन प्रेरित हो हिमाचल ने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर उनसे कहा— शम्भो! आप अपने गोत्र का परिचय दें। प्रवर, कुल, नाम, वेद और शास्त्र का प्रतिपादन करें। अब अधिक समय न बितायें।

हिमाचल की यह बात सुनकर भगवान् शंकर सुमुख होकर भी विमुख हो गये। अशोचनीय होकर भी शोचनीय अवस्था में पड़ गये। उस समय श्रेष्ठ देवताओं, मुनियों, गन्धर्वों सभी ने देखा कि भगवान् शिव के मुख से कोई उत्तर नहीं निकल रहा है। यह देख नारद हँसते हुए मन-ही-मन भगवान् शंकर का स्मरण कर गिरिराज से इस प्रकार बोले— पर्वतराज! तुम मूढ़ता के वशीभूत होकर कुछ नहीं जानते। वास्तव में तुम बहिर्मुख हो। तुम्हारी यह बात अत्यन्त उपहासजनक है। इनके गोत्र, कुल और नाम को तो विष्णु और ब्रह्मा भी नहीं जानते, फिर दूसरों की क्या चर्चा की जाय। जिनके एक दिन में करोड़ों ब्रह्माओं का लय होता है, उन्हीं भगवान् शंकर को तुम आज उमा के तपोबल से प्रत्यक्ष देख रहे हो। इनका कोई रूप नहीं है, ये प्रकृति से परे निर्गुण, परब्रह्म परमात्मा हैं। निराकार निर्विकार मायाधीश परात्पर हैं। गोत्र, कुल, नाम से रहित स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। साथ ही अपने भक्तों के प्रति बड़े दयालु हैं। भक्तों की इच्छा से ही ये निर्गुण से सगुण हो जाते हैं। निराकार होते हुए भी सुन्दर शरीर धारण कर लेते हैं और अनाम होते हुए भी बहुत से नाम वाले हो जाते हैं। कुलहीन होकर भी कुलीन हैं। पार्वती की तपस्या से ही वे आज तुम्हारे जामाता बन गये हैं, इसमें संशय नहीं है। इन लीलाविहारी परमेश्वर ने चराचर जगत् को मोह में डाल रखा है। इसलिये मेरी बात सुनो और उसे सुनकर अपनी पुत्री शंकर जी के हाथ में दे दो।

लीलापूर्वक रूप धारण करने वाले सगुण परेश्वर का गोत्र और कुल केवल नाद ही है। शिव नादमय हैं और नाद शिवमय है — इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। सृष्टि के प्रारम्भ में लीला के लिए सगुण रूप धारण करने वाले शिव से नाद ही प्रकट हुआ था।

नारद मुनि की यह बात सुनकर गिरिराज हिमालय को सन्तोष प्राप्त हुआ और उनके मन का सारा विस्मय जाता रहा।

तदनन्तर हिमालय ने विधि के द्वारा प्रेरित होकर भगवान् शिव को अपनी कन्या का दान कर दिया। कन्यादान करते समय वे बोले—

इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर।
भार्यार्थं परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर।।

इस मन्त्र का उच्चारण करके हिमाचल ने अपनी पुत्री त्रिलोकजननी पार्वती को उस महान् देवता रुद्र के हाथ में दे दिया। महादेव जी ने भी प्रसन्न हो वेद-मन्त्र के उच्चारणपूर्वक गिरिजा के करकमलों को शीघ्र अपने हाथ में लेकर लोकाचार के पालन की आवश्यकता को देखते हुए उन्होंने पृथिवी का स्पर्श कर 'कोऽदात्' (शु.यजु., ७.४८) कामसम्बन्धी मन्त्र का पाठ किया। उस समय वहाँ महान् आनन्ददायक महोत्सव होने लगा। सबके मुखारविन्द प्रसन्नता से खिल गये। तत्पश्चात् शैलराज हिमाचल ने प्रसन्न हो शिव के लिए कन्यादान की यथोचित साङ्गता प्रदान की। उनके बन्धुजनों ने भी भक्तिपूर्वक शिवा का पाद-पूजन करके नाना विधि-विधान से भगवान् शिव को उत्तम द्रव्य समर्पित किये। हिमाचल ने अनेक प्रकार के द्रव्य, रत्न, पात्र, एक लाख सुसज्जित गौएँ, एक लाख सजे-सजाये घोड़े, करोड़ों हाथी और उतने ही सुवर्णजटित रथ आदि वस्तुएँ दीं। इस प्रकार परमात्मा शिव को विधिपूर्वक अपनी पुत्री कल्याणमयी पार्वती का विपुल संपत्ति के साथ दान करके हिमालय कृतार्थ हो गये। इसके बाद हिमालय की आज्ञा से मुनियों ने शिवा और शिव का अभिषेक किया।

तदनन्तर ब्रह्मा की आज्ञा पाकर महेश्वर ने ब्राह्मणों द्वारा अग्नि की स्थापना करवायी और पार्वती को अपने आगे बिठाकर वहाँ ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के मन्त्रों द्वारा अग्नि में आहुतियाँ दीं। उस समय पार्वती के भाई मैनाक ने लाजा की अञ्जलि दी और शिव-शिवा ने आहुति देकर प्रसन्नतापूर्वक अग्निदेव की परिक्रमा की। फिर दोनों दम्पति के मस्तक पर अभिषेक हुआ। ब्राह्मणों ने उन्हें आदरपूर्वक ध्रुव का दर्शन कराया। तत्पश्चात् हृदयालम्भन का कार्य हुआ। फिर बड़े उत्साह के साथ स्वस्तिवाचन किया गया। इसके पश्चात् ब्राह्मणों की आज्ञा से शिव ने शिवा के मस्तक पर

सिन्दूरदान किया। उस समय गिरिराजनन्दिनी उमा की शोभा अद्भुत और अवर्णनीय हो गयी। संस्रवपान के अनन्तर विधिपूर्वक वैवाहिक यज्ञ पूर्ण हो जाने पर भगवान् शिव ने लोकस्रष्टा ब्रह्मा को पूर्णपात्र का दान किया। फिर शम्भु ने आचार्य को गोदान किया। तत्पश्चात् शम्भु ने बहुत से ब्राह्मणों को पृथक्-पृथक् सौ-सौ सुवर्ण मुद्राएँ दीं। करोड़ों रत्न दान किये और अनेक प्रकार के द्रव्य बाँटे। उस समय सभी देवता तथा दूसरे चराचर जीव प्रसन्न होकर जोर-जोर से जय-जयकार की ध्वनि करने लगे। श्रीविष्णु, ब्रह्मा, ऋषि आदि के अपने-अपने डेरे में चले जाने के बाद हिमालयनगर की स्त्रियाँ आनन्दमग्न हो शिव और पार्वती को कोहबर में ले गयीं। वहाँ उन दोनों से उन लोगों ने लोकाचार का सम्पादन करवाया। इसके बाद गिरिराज के नगर की स्त्रियों ने समीप आकर मङ्गलकृत्य करके उन नवदम्पति को केलिगृह में पहुँचाया और जयध्वनि करती हुई गठबन्धन के गाँठ खोलने आदि का कार्य सम्पन्न किया। उस समय उन लोगों ने शिवजी से विनोदपूर्ण बातें करने लगीं।

इसी अवसर पर अनुकूल समय जानकर रति ने दीनवत्सल भगवान् शंकर से कहा— भगवान्! पार्वती का पाणिग्रहण कर आपने अत्यन्त दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त किया है। सर्वथा स्वार्थरहित मेरे प्राणनाथ को आपने क्यों भस्म कर दिया? अब यहाँ मेरे पति को जीवित कीजिये और अपने अन्त:करण में कामसम्बन्धी व्यापार को जगाइये। आपके इस विवाहोत्सव में सभी लोग सुखी हुए हैं। केवल मैं ही अपने पति के बिना दु:ख में डुबी हूँ। देव! प्रसन्न होइये और मुझे सनाथ कीजिये। ऐसा कहकर रति ने गाँठ में बँधा हुआ कामदेव के शरीर का भस्म शम्भु को देकर हा नाथ! हा नाथ! कह-कहकर रोने लगी। इसके बाद भगवान् शंकर ने रति पर कृपा की। भगवान् शूलपाणि की अमृतमयी दृष्टि पड़ते ही अद्भुत मूर्तिधारी सुन्दर कामदेव उस भस्म से प्रकट हो गये। रति के साथ हाथ जोड़कर भगवान् शिव का स्तवन करने लगे। भगवान् शंकर से वरदान पाकर शिव को प्रणाम कर बाहर आ गया। सभी देवता भी जनवासे में आकर भगवान् शंकर की जय-जयकार करने लगे। ब्राह्मणियों ने देवी पार्वती को पातिव्रत-धर्म का उपदेश दिया, इसके बाद बरात विदाई की रस्म पूरी हुई। इस प्रकार भगवान् शंकर की गौरी- विवाह लीला पूर्ण होती है। (शि.पु., रु.सं., अ.२२-५५)।

लिङ्गपुराण में भी पार्वती के स्वयंवर की कथा वर्णित है, जो इस प्रकार है—

भगवान् शंकर को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती तपस्या कर रही थीं। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शिव बोले— 'कोमलाङ्गि! आज से मैं तपस्या से मोल लिया हुआ तुम्हारा सेवक हूँ।' इतना सुनते ही पार्वती अनिर्वचनीय आनन्द में डूब गयी। तपस्या से उन्हें जितना कष्ट हुआ था, वह सब जाता रहा। मनोवाञ्छित फल मिल जाने के कारण उनके तन-मन दोनों हरे हो गये। तदनन्तर पार्वती ने अपनी सखी के मुख से यह कहलाया कि 'मेरे इस शरीर के स्वामी मेरे पिता हैं, अतः आप उन्हीं के पास सन्देश देकर मेरा वरण करें।' तदनन्तर भगवान् शंकर ने कहा— हे महादेवि! तुम्हारे दिव्य स्वयंवर में ही अपने सौम्य रूप द्वारा तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा—

स्वयंवरे महादेवि तव दिव्यसुशोभने।
आस्थाय रूपं यत्सौम्यं समेष्येऽहं सह त्वया।।

(लि.पु., पूर्वभाग, १०२.१३-१४)

ऐसा कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये। पार्वती भी पूर्ण मनोरथ होकर अपने भवन चली गयीं। कुछ काल के बाद हिमालय के विशाल शिखर पर पार्वती का स्वयंवर रचाया गया। उस समय सम्पूर्ण देवताओं के विमानों से वह स्थान खचाखच भरा हुआ था। इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नरगण मनोहर वेष बनाये वहाँ उपस्थित थे। भगवती उमा माला हाथ में लिये देवसमाज में खड़ी हुईं। इसी समय उनकी परीक्षा लेने के लिए भगवान् शिव पाँच शिखावाले बालक बन कर उनकी गोद में आकर सो गये। देवी ने ध्यान के द्वारा उन्हें पहचान कर बड़े प्रेम के साथ अपनी गोद में ले लिया—

शिशुर्भूत्वा महादेवः क्रीडार्थं वृषभध्वजः।
उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूव भगवान् भवः।।

(लि.पु., पूर्वभाग, १०२.२८)

माता पार्वती का संकल्प शुद्ध था। वे अपना मनोवाञ्छित पति पा गयीं, अतः भगवान् शंकर को हृदय में रखकर स्वयंवर से लौट पड़ीं। इन्द्र

ने उस बालक को अपने मार्ग का कण्टक माना और उसे मार डालने के लिए वज्र को ऊपर उठाया। यह देख शिशुरूपधारी शिव ने उन्हें वज्रसहित स्तम्भित कर दिया। वे अपने स्थान से हिल भी न सके। तब भगदेवता ने एक तेजस्वी शस्त्र चलाना चाहा, किन्तु उनकी भी बाँह जड़वत् हो गयी। इस प्रकार सदाशिव ने अपने ओज द्वारा बारी-बारी से सभी देवताओं के अङ्गों को स्तम्भित एवं अस्त्रों को कुण्ठित कर दिया। देवताओं के इस पराभव को देखकर ब्रह्मा ने ध्यानपूर्वक विचार किया, तो ज्ञात हुआ कि यह बालक स्वयं शिव हैं। तब तो वे भगवान् महादेव के चरणों में लोट गये और इस प्रकार स्तुति करने लगे—

स्रष्टा त्वं सर्वलोकानां प्रकृतेश्च प्रवर्तकः।
बुद्धिस्त्वं सर्वलोकानामहङ्कारस्त्वमीश्वरः।।

भूतानामिन्द्रियाणां च त्वमेवेश प्रवर्तकः।
तवाहं दक्षिणाद्धस्तात् सृष्टेः पूर्वं पुरातनः।।

वामहस्तान्महाबाहो देवो नारायणः प्रभुः।
इयं च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारण।।

पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता।
नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमो नमः।।

प्रसादात् तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः।
देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमोहिताः।।
कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवन्त्विमे।।

(लि.पु., पूर्वभाग, १०२.४२-४७)

ब्रह्मा की इस स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने कृपा करके देवताओं को पूर्ववत् पुष्ट कर दिया। देवता भगवान् शिव के चरणों में गिर पड़े।

उपर्युक्त स्तुति से ज्ञात होता है कि भगवान् शिव की ब्रह्मा जी ने पूर्ण-ब्रह्म परमेश्वर के रूप में आराधना की है। उपर्युक्त श्लोकों में जिस पुरुष की वन्दना की गयी है, उससे श्रेष्ठतर एवं उच्चतर कोई हो ही नहीं सकता। समस्त लोकों का स्रष्टा एवं प्रकृति का प्रवर्तक एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर ही हो सकता है।

तदनन्तर भगवान् शिव अपने साक्षात् स्वरूप में प्रकट हुए। पार्वती ने अपने हाथ की माला उनके चरणों में अर्पित कर दीं।

तत्पश्चात् भगवान् शंकर और पार्वती का विवाह बड़े धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। वरपक्ष की ओर से ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता वारात लेकर आये। हिमवान् ने सबका बड़े प्रेम और आदर के साथ स्वागत-सत्कार किया। तदनन्तर बिदाई का समय आया। उस समय प्रेम और करुणा का समुद्र उमड़ पड़ा। सबके नेत्रों से आँसू बह चले। माता मेना ने अपनी लाड़ली पुत्री को गोद में बिठाकर शिक्षा दी— बेटी! तुम सदा पतिपरमेश्वर भगवान् शिव के चरणों की पूजा करना। नारियों का यही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। उनके लिये पति ही देवता होता है। स्त्री के लिये अन्य कोई देवता नहीं बताया गया है।

इतना कहते माता के नेत्रों में आँसू भर आये। उन्होंने कन्या को छाती से चिपका लिया। उसके बाद पार्वती सबसे मिल-जुलकर विदा हुईं। हिमवान् ने सब बारातियों को भी आदरपूर्वक बिदा किया (लि.पु., पूर्वभाग, अ. १०२)।

कैलास पहुँचकर युगों के बाद दो अनादि दम्पतियों का पुनर्मिलन हुआ। वे सदा ही एकप्राण-एक आत्मा थे और पुनः उसी प्रकार रहने लगे। फिर पार्वती से छः मुखों वाले स्कन्द उत्पन्न हुए। छहों कृत्तिकाएँ भी इन्हें पुत्र मानती थीं, इसीसे इनका नाम **'कार्तिकेय'** भी है। इन्होंने तारकासुर को मार कर देवताओं को निर्भय किया। देवसेना के अध्यक्ष पद पर अभिषिक्त होने से इनका नाम **'सेनानी'** भी हो गया। (यह कथा कुमारजननलीला में वर्णित है)।

पार्वती जी के दूसरे पुत्र **'गणेश'** हैं। ये अनादि देवता माने गये हैं। इनकी उत्पत्ति का वृत्तान्त विभिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न प्रकार से मिलता है। एक समय की बात है, पार्वती ने स्नान करने से पहले अपने शरीर में उबटन लगवाया। उससे जो मैल गिरी, उसको हाथ में लेकर देवी ने कौतूहलवश एक बालक की प्रतिमा बनायी। वह प्रतिमा बड़ी सुन्दर बन गयी। ऐसा जान पड़ा, मानो कोई सुन्दर बालक सो रहा है। यह देख उन्होंने उसमें अपनी शक्ति से प्राण-संचार कर दिया। बालक सजीव हो उठा और बोला— 'मेरे लिये क्या आज्ञा है? यह सुनकर देवी पार्वती ने कहा— 'तुम हाथ में शस्त्र

लेकर इस स्थान पर पहरा दो; मैं स्नान के लिये जाती हूँ। जब तक स्नान करके लौट न आऊँ, तब तक किसी को अन्दर न आने देना।' यह कहकर उमादेवी स्नान के लिये चली गयीं और बालक पहरा देने लगा। कुछ ही देर में भगवान् शिव आये और घर के भीतर प्रवेश करने लगे। बालक ने उन्हें रोका, फिर तो उन दोनों में भयंकर संग्राम छिड़ गया। शिव ने त्रिशूल से बालक का मस्तक काट गिराया। जब पार्वती ने देखा, तो धरती पर लोट कर करुण क्रन्दन करने लगीं। चारों ओर हाहाकार मच गया। भगवान् शिव बालक को जीवित करने की इच्छा से इधर-उधर दृष्टिपात करने लगे, किन्तु उसका कटा हुआ मस्तक कहीं नहीं मिला। इतने में उनकी दृष्टि गजासुर पर पड़ी। उन्होंने तुरन्त उस दैत्य का मस्तक काटकर हाथ में ले लिया और उस बालक के धड़ से जोड़ दिया। बालक जी उठा। तब से उसका नाम **'गजानन'** पड़ा। ये गजानन ही अनादि सिद्ध गणेश के मूर्तिमान् स्वरूप हुए। इन्होंने भगवन्नाम के प्रभाव से समस्त देवादि गणों के अध्यक्षत्व को प्राप्त किया है (शि.पु., रुद्रसंहिता, अ. १३-१८)।

एक बार पार्वती देवी कैलास के समीप प्रवाहित होने वाली गंगा के तट पर स्नान करने गयीं। उस समय वहाँ सम्पूर्ण देवता देवी की स्तुति कर रहे थे। पार्वती ने पूछा— 'आप लोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं? इतने में ही उन्हीं के शरीर से एक कल्याणमयी देवी प्रकट हुईं और बोलीं— 'ये देवता शुम्भ और निशुम्भ नामक दैत्यों से पराजित और पीड़ित होकर यहाँ एकत्रित हुए हैं और मेरी ही स्तुति करते हैं।' वे अम्बिका देवी पार्वती के ही शरीरकोश से प्रकट हुईं थीं, इसलिये उन्हें **'कौशिकी'** कहते हैं। कौशिकी के प्रकट होने के बाद पार्वती जी का शरीर काले रंग का हो गया, अत: वे हिमालय निवासिनी **'कालिका देवी'** के नाम से विख्यात हुईं। इस प्रकार उनके दो रूप हो गये, **'गौरी'** और **'काली'**। इन दोनों ही रूपों से उन्होंने धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, निशुम्भ और शुम्भ आदि बड़े-बड़े दैत्यों का संहार कर सम्पूर्ण जगत् का कल्याण किया। वे कौशिकी देवी ही **'महासरस्वती'** के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार पार्वती देवी ने अन्यान्य भक्तों को भी अपनी कृपा से ही अनुगृहीत किया था। हैहयराज कार्तवीर्य अर्जुन पर कृपा करने वाली आदिशक्ति महामायादेवी ये ही हैं।

एक समय की बात है, देवता असुरों पर विजय पाकर अभिमान से फूल उठे और ऐसा मानने लगे कि हमने अपनी ही शक्ति से विजय पायी है। इतने में ही एक तेजस्वी यक्ष प्रकट हुआ। 'यह कौन है?' इसका पता लगाने के लिये क्रमशः अग्नि और वायु गये। यक्ष ने उनके सामने एक तिनका रख दिया, उसे वे अपनी सारी शक्ति लगाकर भी न जला सके, न उड़ा सके। अन्त में इन्द्र गये। यक्ष अन्तर्धान हो गया, उसकी जगह पार्वती जी खड़ी थीं, उन्होंने बताया 'वह ब्रह्म था। उसी की शक्ति से तुमने विजय पायी है।' देवताओं का अभिमान दूर हो गया। इस प्रकार सबसे पहले ब्रह्मविद्यारूपा उमा से ही ब्रह्म का ज्ञान हुआ। (यह प्रसंग केनोपनिषद् में आया है)।

एक बार देवाधिदेव महेश्वर के पूछने पर गंगा आदि पवित्र नदियों के सामने पतिव्रताशिरोमणि श्री पार्वती उमा ने स्त्रीधर्म का वर्णन करते हुए कहा— देवि! मुझे स्त्रियों के धर्म का जैसा ज्ञान है, उसके अनुसार विधिवत् वर्णन करती हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो। विवाह के समय कन्या के भाई-बन्धु पहले ही उसे स्त्री-धर्म का उपदेश कर देते हैं, जबकि वह अग्नि के समीप अपने पति की सहधर्मिणी बनती है। जिसके स्वभाव, बातचीत और आचरण उत्तम हों, जिसको देखने से भी पति को सुख मिलता हो, जो अपने पति के सिवा दूसरे किसी पुरुष में मन नहीं लगाती और स्वामी के समक्ष सदा प्रसन्नमुख बनी रहती है, वह स्त्री धर्माचरण करने वाली मानी गयी है। जो साध्वी अपने स्वामी को सदा देवतुल्य समझती है, वही धर्मपरायण और वही धर्म के फल की भागिनी होती है। जो पति की देवता के समान सेवा-शुश्रूषा और परिचर्या करती, पति के सिवा और किसी से हार्दिक प्रेम नहीं करती, कभी रंज नहीं होती तथा उत्तम व्रत का पालन करती है, पुत्र के मुख की भाँति स्वामी के मुख की ओर सदा निहारती रहती है और नियमित आहार का सेवन करती है, वह साध्वी स्त्री सहधर्मचारिणी है। पति और पत्नी को एक साथ रहकर धर्म का आचरण करना चाहिये।

इस मंगलमय दाम्पत्यधर्म को सुनकर जो स्त्री धर्म-परायण हो जाती है, वह पति के समान व्रत का पालन करने वाली (पतिव्रता) है। साध्वी स्त्री सदा अपने पति को देवता के समान देखती है, पति और पत्नी का यह

सहधर्म (साथ-साथ रहकर धर्माचरण करना) रूप धर्म परम मंगलमय है। जो अपने हृदय के अनुराग के कारण स्वामी के अधीन रहती है, अपने चित्त को प्रसन्न रखती है, उत्तम व्रत का पालन करती है और देखने में सुखदायक सुन्दर वेषधारण किये रहती है, जिसका चित्त अपने पति के सिवा और किसी का चिन्तन नहीं करता, वह प्रसन्नमुख रहने वाली स्त्री सहधर्मचारिणी मानी गयी हैं जो स्वामी के कठोर वचन कहने या क्रूर दृष्टि से देखने पर भी प्रसन्नता से मुसुकुराती रहती है, वह स्त्री पतिव्रता है। पति के सिवा दूसरे किसी पुरुष की ओर देखना तो दूर रहा, जो पुरुष के समान नाम धारण करने वाले चन्द्रमा, सूर्य और किसी वृक्ष की ओर भी दृष्टि नहीं डालती, वही पतिव्रतधर्म का पालन करने वाली है।

जो नारी अपने दरिद्र, रोगी, दीन अथवा रास्ते की थकावट से खिन्न हुए पति की सेवा पुत्र के समान करती है, उसी को धर्म का पूरा-पूरा फल मिलता है। जो स्त्री अपने हृदय को शुद्ध रखती, गृहकार्य करने में कुशल होती, पति से प्रेम करती और पति को ही अपना प्राण समझती है, वही धर्म का फल पाने की अधिकारिणी है। जो प्रसन्नचित्त होकर पति की सेवा-सुश्रूषा में लगी रहती है, पति के ऊपर पूर्ण विश्वास रखती है और उसके साथ विनययुक्त बर्ताव करती है, वह नारी धर्म का फल पाती है। जिसके हृदय में पति के लिय जैसी चाह होती है, वैसी काम, भोग, ऐश्वर्य और सुख के लिये नहीं होती। जो प्रतिदिन प्रात:काल उठने में रुचि रखती, गृह के काम-काज में योग देती और घर को झाड़-बुहार कर उसे गाय के गोबर से लीप-पोतकर स्वच्छ बनाये रखती है, जो पति के साथ रहकर नित्य अग्निहोत्र करती, देवताओं को पुष्प और बलि अर्पण करती तथा देवता, अतिथि और सास-ससुर आदि पोष्य-वर्ग को भोजन देकर न्याय और विधि के अनुसार शेष अन्न का स्वयं भोजन करती है तथा घर के लोगों को हृष्ट-पुष्ट तथा सन्तुष्ट रखती है, वही नारी-धर्म का पालन करने वाली है।

जो उत्तम गुणों से युक्त होकर सदा सास-ससुर के चरणों की सेवा में संलग्न रहती और माता-पिता के प्रति भक्ति रखती है, वह स्त्री तपस्विनी मानी गयी है। जो ब्राह्मणों, दुर्बलों, अनाथों, दीनों, अन्धों और कंगालों को अन्न देकर उनका पालन-पोषण करती हैं, उसे पातिव्रत धर्म का फल प्राप्त

होता है। जो प्रतिदिन उत्तम व्रत का पालन करती, पति में ही मन लगाती और निरन्तर पति के हित के साधन में लगी रहती है, उसे पतिव्रता समझना चाहिये। जो नारी पातिव्रत धर्म का पालन करती हुई स्वामी की सेवा में तत्पर रहती है, उसका यह कार्य महान् पुण्य, बड़ी भारी तपस्या और अक्षय स्वर्ग का साधन है। पति ही स्त्रियों का देवता, पति ही उनका बन्धु-बान्धव और पति ही उनकी गति है।

नारी के लिये पति के समान न दूसरा कोई सहारा है और न दूसरा कोई देवता। एक ओर पति की प्रसन्नता और दूसरी ओर स्वर्ग, ये दोनों नारी की दृष्टि में समान हो सकते हैं या नहीं, इसमें सन्देह है। मेरे प्राणनाथ महेश्वर! मैं तो आपको अप्रसन्न रखकर स्वर्ग को भी नहीं चाहती। पति दरिद्र हो जाय, किसी रोग से घिर जाय, आपत्ति में फँस जाय, शत्रुओं के बीच में पड़ जाय अथवा ब्राह्मण के शाप से कष्ट पा रहा हो और उस अवस्था में वह न करने योग्य कार्य, अधर्म अथवा प्राणत्याग देने की भी आज्ञा दे, तो उसे आपत्तिकाल का धर्म समझकर निःशङ्क भाव से तुरन्त स्त्री को पूरा करना चाहिये। 'भगवन्! आपकी आज्ञा से मैंने यह स्त्री-धर्म का वर्णन किया है। जो स्त्री ऊपर बतलाये धर्म के अनुसार अपना जीवन बनाती है, वह पातिव्रत धर्म के फल की भागिनी होती है।'

भवानी पार्वती समस्त पतिव्रताओं की शिरोमणि हैं। ये महादेव जी को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। इन्हींके अनुरोध पर महादेव जी ने अनेकानेक उपयोगी तथा गुप्त साधनों का वर्णन किया है, जो भिन्न-भिन्न पुराणों, तन्त्रों, आगमों तथा गुरुपरम्परा से उपलब्ध होते हैं। बहुत से मन्त्रों का प्राकट्य भी इन्हीं की दया से हुआ है। भगवान् के बहुत से शतनाम, सहस्रनाम तथा अन्य स्तोत्र, व्रत आदि माहात्म्य सहित इन्हींके प्रयत्न से प्रकट हुए हैं। इस प्रकार इनके द्वारा लोककल्याण के असंख्य कार्य हुए हैं।

भगवान् सदाशिव ने पराम्बा भगवती पार्वती को ही सर्वप्रथम अमर कथा का श्रवण कराया था। गौरीशंकर की मङ्गलमयी विवाह-लीला कथा का पठन-श्रवण-मनन और चिन्तन सबके लिये कल्याणकारी है।



१९. कुमारजनन लीला

भगवान् शंकर का विवाह पर्वतराजपुत्री पार्वती से सम्पन्न हो गया और वहाँ से बिदा होकर पार्वती के साथ सदाशिव अपने भवन कैलास पर आ गये, तो देवताओं को यह विश्वास हो गया कि अब तारकासुर के वध का मार्ग प्रशस्त हो गया। वे लोग भी बिदा होकर अपने-अपने भवनों को चले गये। विवाह के बहुत दिन बीत जान पर जब कोई बात प्रकट नहीं हुई, तो एक समय सभी देवता, मुनि आदि एक स्थान पर एकत्रित होकर विचार-विमर्श करके कहने लगे कि बड़े आश्चर्य की बात है कि विवाह के इतने दिन बीत गये, परन्तु हम लोगों का कार्य सिद्ध नहीं हो रहा है; क्योंकि भगवान् शिव के वीर्य से उत्पन्न पुत्र ही तारकासुर को मार सकता है।

इसके बाद देवताओं ने अग्नि से कहा कि तुम चतुरता से शिवजी के समीप जाकर देखो कि वे क्या कर रहे हैं, क्योंकि इतना समय व्यतीत हो गया, किन्तु शिवजी ने हमारी सुधि न ली। इस प्रकार आज्ञा पाकर अग्नि देवताओं से बिदा होकर कपोत का रूप धारण कर शिवजी के निवास स्थान पर पहुँचे। इधर विष्णु जी भी ब्रह्मा आदि सभी देवताओं को साथ लेकर कैलास पर्वत पर गये, क्योंकि सभी लोग अतिचिन्तित और दुःखी थे। वहाँ शिवजी को जब वटवृक्ष के नीचे न देखा, तो सभी लोगों ने उनके गणों से पूछा कि महाराज शिवजी कहाँ हैं, तब गणों ने उत्तर दिया कि वे तो बहुत समय से अन्तःपुर में गिरिजा के पास हैं, बाहर नहीं आये। यह सुनकर विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी देवता आशुतोष भगवान् शंकर के द्वार पर गये और बहुत ऊँचे स्वर से पुकारने लगे। देवताओं की पुकार को सुनकर शूलपाणि शिव गिरिजा को छोड़कर शीघ्र बाहर आये। जब देवताओं ने उनका दर्शन किया, तो प्रेमविभोर होकर उनकी स्तुति करने लगे। इसके बाद देवताओं ने भगवान् शंकर से कहा— भगवन्! हम सब आपकी शरण में आये हैं और आशा रखते हैं कि आप कृपा करके हमारे दुःख को दूर करेंगे। आपके कृपाकटाक्ष से ही हमारा कार्य सुधरता है। आपकी महिमा का बखान करते-

करते नारद, शारद, शेष, वेद भी थक जाते हैं, हम आपकी महिमा कहाँ तक वर्णन कर सकते हैं। आप सगुण स्वरूप हम भक्तों के उपकार के लिए धारण करते हैं।

इस प्रकार देवताओं की स्तुति सुनकर प्रसन्नता और हर्ष से हँसते हुए शिवजी ने कहा कि तुम सब जिस कार्य के निमित्त आये हो, वह विस्तार से वर्णन करो। यह सुन सब देवताओं ने हाथ जोड़कर विनय करते हुए कहा कि भगवन्! आप अपना सभी विहार-आनन्द छोड़कर देवताओं का कार्य पूर्ण करें। तत्पश्चात् शिवजी ने कहा कि अच्छा, हमारा वीर्य जा रहा है, जिसको शक्ति हो, वह उसे धारण कर ले। तब विष्णु ने अग्नि को संकेत किया। तदनन्तर विष्णु की इच्छा जानकर शिवजी ने वह वीर्य पृथिवी पर डाल दिया। इसके बाद अग्नि ने देवताओं की आज्ञा पाकर शीघ्र ही उसको धारण कर लिया, अर्थात् अग्नि कपोत का रूप धारण कर अपनी चोंच से वीर्य को निगल गये। तदनन्तर अपने घर की ओर उड़ चले। शिव की माया धन्य है, जिसके वश में सम्पूर्ण संसार है।

जब शंकर के लौटने में विलम्ब हुआ, तो गिरिजा चिन्तित होकर जहाँ सभी देवता शिवजी के पास खड़े थे आईं और इतना क्रोध प्रकट किया कि सभी देवता भयभीत हो गये। गिरिजा ने क्रोध से होंठ चबाते हुए कहा कि हे देवताओं! तुम सब अपने मतलब के मित्र हो। तुमलोगों ने अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए मुझे बाँझ कर दिया। कदाचित् मुझे अप्रसन्न कर अपना मनोरथ पूर्ण हुआ मानते हो, तो यह स्वप्न में भी नहीं हो सकता। तुमलोग हमारे विहार के विघ्नकर्ता हुए, इससे तुम्हारी सभी स्त्रियाँ बाँझ होंगी। इस प्रकार देवताओं को शाप देती हुई पार्वती ने अग्नि से कहा— भाग्यहीन वह्नि! तुम इतना दुष्ट हो कि तुमने भक्ष्याभक्ष्य का भी कुछ विचार नहीं किया। अब तुम सर्वभक्षी हो जाओ। इस प्रकार गिरिजा के शाप को सुनकर सभी देवता बहुत दुःखित हुये। इसके बाद शिव और पार्वती अन्तःपुर में चले गये। सभी देवताओं ने गर्भ धारण किया। अपने उदर को गर्भ से पूरित देख सभी लोग बहुत लज्जित और दुःखी हुए। इसके बाद सभी देवता मिलकर पुनः शिवजी की शरण में गये और शिवजी की स्तुति करते हुए देवताओं ने कहा— हे देवाधिदेव, दीनजनरक्षक! हमारे ऊपर कृपा करें, आप ही तीनों

देवता, त्रिनेत्र, तीनों भुवन के रक्षक और तीनों वेद हैं। आप त्रिमूर्ति, तीनों पद, तीनों धाम, तीनों अग्नि, तीनों गुण और त्रिशूल धारण करने वाले हैं, अब हमें मुक्त करें। इस प्रकार की देवों की स्तुति सुनकर शिवजी प्रकट हुए, जिनको देखकर देवता अतिप्रसन्न हुए और पुनः स्तुति करते हुए बोले— हे विश्वम्भर! हमारी सहायता करें, हमारे दुःख को दूर करें, हम आपके सेवक हैं। हमारे प्राणों की रक्षा करें, अब हमारी लोक में निन्दा हो रही है, जब से हमने गर्भ धारण किया है, तब से महादुःखी हैं, हमारे हृदय जले जाते हैं। यह सुनकर शिवजी हँस पड़े और बोले— हे विष्णु आदि देवताओं! तुम शीघ्र वीर्य को मुख के मार्ग से बाहर निकाल दो। यह आज्ञा पाकर देवताओं ने शीघ्र ही उसे निकाल दिया, जिसका वर्ण स्वर्ण के समान था, आकाश को छूने वाले पर्वत के आकार का हो गया।

इस प्रकार देवता तो गर्भ धारण के दुःख से छूट गये, परन्तु अग्नि को शिवजी ने यह आज्ञा न दी, इस लिए उसको कुछ भी आनन्द न मिला। तब अनल बहुत दुःखी होकर शिवजी की स्तुति करने लगा। अग्नि ने कहा— हे देवाधिदेव शंकर! अब आपको मेरी सहायता करनी चाहिये। मेरे इस कष्ट को दूर कीजिये और आज्ञा दीजिये कि अब मैं क्या करूँ? आपके चरण को छोड़कर कहाँ जाऊँ, अब वह उपाय बतलाइये, जिससे मेरा दाह दूर हो। इसके बाद शंकर ने कहा— हमारे वीर्य को तुम स्त्रियों को दे दो, जिससे तुमको आनन्द मिले। तत्पश्चात् अग्नि ने धैर्य धारण कर विनयपूर्वक कहा कि आपके वीर्य की ज्योति को स्त्रियाँ कैसे धारण कर सकेंगी। तदनन्तर नारद ने शिवजी की आज्ञा पाकर अग्नि से कहा— हे पावक! जो स्त्रियाँ माघ मास में आग तापती हों, उनके शरीर में तेज को विभक्त कर दो। यह सुनकर अग्नि प्रसन्न होकर प्रभात में उठकर नदी के किनारे आग जलाकर बैठ गये। उस समय बहुत सी स्त्रियाँ स्नान करने के लिए उस स्थान पर आयीं। ठंढी से बहुत दुःखित स्त्रियाँ जलती हुई आग देखकर आग तापने लगीं, हालाँकि वसिष्ठपत्नी अरुन्धती ने स्त्रियों को आग तापने से मना किया, पर किसी ने न माना और आग के पास बैठकर तापने लगीं। तब वह वीर्य धीरे-धीरे निकल कर रोम के मार्ग से स्त्रियों के शरीर में प्रवेश करने लगा। जिससे अग्नि का बोझ हलका हुआ और वह अति प्रसन्न होकर दाह को दूर हुआ देख मग्न हो गया। इसके बाद वे स्त्रियाँ शीघ्र ही गर्भवती हो गयीं, जिससे

दुःखी होकर अपने घरों को गयीं। वहाँ श्रेष्ठ ऋषियों ने स्त्रियों की यह दशा देखकर अति क्रोधित हुए। उनके क्रोध के वेग से स्त्रियाँ पक्षियों के समान उड़ने लगीं। अपनी यह अवस्था देख अति दुखित होकर उन लोगों ने हिमगिरि की पीठ में वीर्य को त्याग दिया, उसका तेज स्वर्णवत् चमकने लगा, तब उन लोगों ने उसे उठाकर गंगा नदी में डाल दिया।

जब यह अमोघ वीर्य देवनदी में पड़ा, तो नदी काँप कर बहने से रुक गयी और शिवजी के तेज को न सहकर दुःखी हो बड़ा नाद करने लगी। तत्पश्चात् उस तेज को अपनी लहरों के माध्यम से बाहर लाकर किनारे फेंक दिया। उस जगह पर सरपत के बोझ पड़े हुए थे, वहीं तेज जाकर रुक गया और लड़के के स्वरूप में प्रकट हुआ। तब आकाश में जय-जयकार के शब्द होने लगे। उस लड़के का स्वरूप अति सुन्दर, मुख, नाक और कान तथा हाथ बहुत ही सुडौल तथा जलती हुई अग्नि के समान वर्ण, सुन्दर चरण थे, जिसको देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित हो सकते हैं। उसी समय गिरिजा के दोनों स्तनों से दुग्ध की धारा बह निकली, जिसको देखकर शिव और पार्वती अतिप्रसन्न हुए। गिरिजा ने शिवजी से कहा— हमारी छाती से यह दूध क्यों निकला है। यह सुनकर शिवजी ने मुसुकुरा कर कुछ न कहा।

उस समय सभी देवता, सिद्ध, मुनि आदि एकत्रित होकर बहुत आनन्द मनाते हुए फूलों की वर्षा करने लगे। कैलास पर पहुँच कर अप्सराएँ नाचने लगीं, किन्नर गाने-बजाने में लग गये और प्रसन्न होकर गन्धर्वों ने आनन्द के बाजे-बजाये। इसी प्रकार बड़े धूम-धाम से उत्सव होने लगा और तीनों लोकों में सबको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। सबके दुःख एक साथ दूर हो गये। उसी समय गाधि के पुत्र विश्वामित्र वहाँ आये और उन्होंने उस बालक की स्तुति कर आदर सम्मान किया। वह बालक विश्वामित्र की स्तुति सुनकर प्रसन्न हो कहने लगा— हे गाधिनन्दन! हमारा संस्कार करो, आज से आप हमारे पुरोहित हुए। तुम तीनों लोगों के मान्य होगे।

इसके बाद कुछ विचार कर विश्वामित्र ने कहा हम ब्राह्मण के घर नहीं उत्पन्न हैं, संस्कार कराने का अधिकार ब्राह्मण को ही है। मैं क्षत्रिय हूँ। गाधि का पुत्र हूँ और मेरा नाम विश्वामित्र है। कृपया आप अपना वृत्तान्त बतलायें, आप बालकरूप धारण किये हुए कौन हैं? आपके माता-पिता कौन हैं और

वे दोनों आपको छोड़कर कहाँ चले गये, क्योंकि आप यहाँ अकेले दिखाई पड़ रहे हैं। आपका तेज अद्भुत है। आप ब्रह्मचारी या गृहस्थ हैं या आप तीनों देवों में कोई एक हैं। आप ब्रह्मस्वरूप बालरूप में तो प्रकट नहीं हुए हैं। हमने आज तक ऐसा बालक नहीं देखा है, जो उत्पन्न होते ही बातें करते हुए आनन्द प्रदान कर रहा हो और अपने संस्कार के लिए आज्ञा दे रहा हो।

यह सुनकर हँसते हुए उस बालक ने कहा— हे विश्वामित्र! यद्यपि यह अभी गोपनीय है, फिर भी आपसे अपना चरित्र कहता हूँ। आप भी इसे छिपाकर रखना। हम गिरिजा और शिव के पुत्र हैं और दैत्यों को मार कर तीनों लोकों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। इसके बाद बालक ने अपना प्रताप विस्तार से कह सुनाया। हे गाधिनन्दन! तुम शिव और पार्वती की लीला को अप्रमेय समझ कर हमारे संस्कार में विचार और विलम्ब न करो। विश्वामित्र ने तुरन्त आज्ञा मानकर उनका संस्कार किया। तब शिवजी के पुत्र ने प्रसन्न होकर उन्हे वरदान देकर अपना पुरोहित बना लिया। उन्होंने कहा कि हे विश्वामित्र! तुम ब्रह्मर्षि होकर सब ब्राह्मणों में प्रतिष्ठा प्राप्त करोगे, यहाँ तक कि वसिष्ठ भी तुमको **'ब्रह्मर्षि'** कहेंगे, यह हमारा वर है।

उसी समय अग्नि भी वहाँ आ गये और शिवजी के पुत्र को देखकर बहुत आनन्दित हुए। लड़के को प्रणाम किया। उस बालक ने अपनी सब कथा अनल से वर्णन की। अग्नि और विश्वामित्र उस लड़के में पूर्ण बल और प्रताप देखकर बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद अग्नि ने अपना लड़का समझ कर उसको अपनी गोद में उठाकर छाती से लिपटा लिया, मुख चूमा और अति प्रीति से उस लड़के को अपना पुत्र मान कर अति प्रसन्न होकर बहुत प्रकार का अपना शस्त्र प्रदान किया। उस बालक में शिवजी का पूर्ण तेज स्थापन करके उसके असंख्य वरदान दिये, उसे एक शक्ति भी प्रदान की और अपना हाथ उसके सिर पर फेरा। इसके बाद लड़के ने कहा कि अब आप दोनों जायें; क्योंकि अभी हमको बहुत से चरित्र करना है। यह कहकर दोनों को बिदा कर आप अनल की दी हुई शक्ति को हाथ में लेकर श्वेतगिरि पर चले गये। वहाँ अति भयानक शब्द से नाद किया, जिससे प्रलयकालीन दृश्य उपस्थित हो गया। पुन: देवताओं का मनोरथ पूर्ण करने के लिए अपनी शक्ति से पर्वत के शृङ्ग पर प्रहार किया। तीनों लोकों में हाहाकार मच गया और वह पर्वत

फटकर गिर पड़ा और उसके दो टुकड़े हो गये और बड़ा भयंकर शब्द हुआ, जिससे उस समय महाबलशाली दश पद्म राक्षस काल के वश में हो गये, जो पहले वहाँ रहते थे। वे सभी उनको मारने के लिए चल पड़े, धरती काँप उठी, तीनों लोक हिल गये। देवता और मुनि चिन्ता करने लगे। इन्द्र आदि देवता देखने के लिए चल पड़े। वहाँ उन लोगों ने देखा कि वही लड़का पर्वत पर खड़ा है। उस पर्वत ने मनुष्यों के समान अपना रूप बनाकर इन्द्र से भेंट कर हाथ जोड़ कर उनकी प्रार्थना करने लगा। हे इन्द्र! आप तीनों लोकों के राजा हैं, सृष्टि का पालन आपका धर्म है। इस समय मुझे बड़ा दुःख हुआ है। इस बालक ने मुझ पर शक्ति से प्रहार कर ऐसा भयानक शब्द किया कि सभी जीवों को दुःख पहुँचा, धरती काँप उठी, सभी पर्वत, वन, नदी भी काँप उठे, असंख्य जीव मर गये। यह सब इस बालक ने किया है, जो खड़ा है। नहीं मालूम यह कौन है और किसका पुत्र है? हे इन्द्र! आप मुझे कष्ट देने वाले इस बालक का शीघ्र ही वध कर डालें, अन्यथा यह बालक प्रलय कर डालेगा।

पर्वत की बात सुनकर इन्द्र उस लड़के पर बहुत अधिक क्रोधित हुए। बालक के रहस्य को न जानने के कारण उस बालक को मार डालने की दृढ़ इच्छा की। शिव की लीला से विमोहित इन्द्र ने दाहिने काँख में वज्र का प्रहार कर ही दिया, जिससे उस स्थान से एक मनुष्य उत्पन्न हो गया, जो बल और पराक्रम में उसीके समान था, जिसका नाम **साष्य** रखा गया, जो सबका मनोरथ पूर्ण करने वाला हुआ। साष्य ने क्रोधित होकर उसके बायीं काँख में अपने वज्र का प्रहार कर दिया, जिससे एक दूसरा मनुष्य उत्पन्न हो गया, जिसे **विसाष्य** कहते हैं। उत्पन्न होते ही वह भी नाद करने लगा। तब इन्द्र ने क्रोधित होकर उस बालक के हृदय में अपने वज्र का प्रहार किया, परन्तु कुछ भी फलदायक नहीं हुआ और एक मनुष्य और प्रकट होकर खड़ा हो गया, जिसे **नैगमेय** कहते हैं। वे तीनों पहिले बालक के सहायक हो गये। इस प्रकार चारों प्रलय काल की अग्नि के समान प्रतीत होने लगे।

इसके बाद तीनों गणों समेत उस बालक ने इन्द्र पर धावा बोल दिया। इन्द्र उनके प्रलयकालीन तेज को देखकर निर्बल हो काँप उठा और हाथ जोड़कर उनकी शरण में आया। उसने अपने सब शस्त्र फेंक कर दण्डवत्

किया। इन्द्र की सेना भी उनके तेज को देखकर हतप्रभ हो गयी। उस बालक ने इन्द्र की यह दशा देखकर उनको ढाढ़स बँधाया और अभय प्रदान किया। तदनन्तर इन्द्र निर्भय होकर प्रसन्न हुए और सभी देवताओं ने हाथ जोड़कर स्तुति की। देवताओं ने कहा— तुम बालक नहीं, वरन् तुम ब्रह्म हो। हमने तुम्हारा प्रताप नहीं जाना और अहङ्कार के कारण हमारी यह दशा हुई। कृपा करके हमारा सब अपराध क्षमा कर दें। हम आपकी शरण में हैं। हमें इस बात का निश्चय हो गया है कि तुम ब्रह्मरूप हो, किसी भक्त पर प्रसन्न होकर तुमने अवतार धारण किया है। अब सत्य-सत्य बतलायें कि आप कौन हैं और किसके पुत्र हैं तथा आपके जन्म धारण करने का प्रयोजन क्या है?

इस प्रकार देवताओं की प्रार्थना को सुनकर बालक ने कहा— हे इन्द्र! शीघ्र ही तुम यहाँ से बिदा होकर प्रसन्नतापूर्वक अपना राज्य करो। यह कहकर इन्द्र आदि देवताओं को बिदा किया, परन्तु कुछ भी भेद नहीं बतलाया। इन्द्र अपने राज्य स्वर्गलोक चले गये। उसी समय स्नान के निमित्त उस नदी के तट पर वे स्त्रियाँ आ पहुँची, जिनका वर्णन पूर्व में किया गया है। सुन्दर बालक को देखकर उसके निकट चली आयीं। उसे सुन्दर देखकर प्रत्येक स्त्री का मन चाहा कि इसको पुत्र रूप में ग्रहण करना चाहिये। इसके बाद सभी ने उठा लेने की इच्छा की। सभी कहने लगीं कि यह बालक मेरा है, हम इसे ग्रहण करेंगी, यह हमारे गर्भ से उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार आपस में झगड़ने लगीं।

इसके बाद बालक ने उनके झगड़े को इस प्रकार दूर किया। मैंने सबके स्तन का दूध पिया है, इस लिए सभी माता हैं। तब बालक के असंख्य नाम रखे गये। पार्वती को पुत्र रूप में आनन्द देने के कारण **पार्वतीनन्दन**, अग्नि से उत्पन्न होने के कारण **अग्निभू**, गङ्गा के द्वारा धारण किये जाने के कारण **गङ्गापुत्र**, शरकण्डे में उत्पत्ति होने के कारण **शरजन्मा**, कृत्तिकाओं के द्वारा पालित होने के कारण **कार्तिकेय**, छः मुख से दुग्ध पान करने के कारण **षडानन** कहलाये। इसी प्रकार स्कन्द, सेनानी, गुह आदि भी इनके नाम प्रसिद्ध हुए। उन स्त्रियों ने बालक को अपने घर ले जाकर बड़ा उत्सव मनाया। वेद की रीति के अनुसार जातकर्म आदि संस्कार किये, वेद पढ़ाया। उनके जन्म का महीना कार्तिक की षष्ठी तिथि थी। उन्होंने शुभ लग्न और

मुहूर्त में जन्म लिया था। स्कन्द ने अपनी माताओं को विचित्र चरित्र दिखलाया।

एक दिन ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि सभी इन्द्र की सभा में विराजमान थे। उचित समय जानकर नारदमुनि ने शिव का ध्यान करते हुए स्कन्द के जन्म का वृत्तान्त वर्णन किया। देवता बोले— प्रतीत होता है कि शिव ने हम पर कृपा कर पुत्र को उत्पन्न किया है। अब हमारे मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे। हमारी प्रसन्नता का समय आ गया है। ऐसी बातें हो रही थीं, उसी समय स्कन्द अपने मित्र बालकों के साथ खेलते-खेलते उस स्थान पर पहुँच गये। तेजस्वी बालक को देखकर मुनि और देवताओं ने पूछा कि यह बालक कौन है? किसका लड़का है? इसे बुलाकर पूछना चाहिए, इस सुन्दररूप को देखकर तृप्ति नहीं होती है। उन लोगों के पूछने पर स्कन्द बोले— हे देवताओं! हम लड़के के स्वरूप में शिव हैं। शिव वही है, जो लोक का हित चाहने वाला है। जिनको योगीजन ध्यान करके भी नहीं प्राप्त कर पाते। मैं वही शिवस्वरूप हूँ। हमको लोक **गुह** कहते हैं।

तदनन्तर विष्णु ने कहा कि यदि तुम शिव हो, तो अपना स्वरूप दिखाओ। यह सुनकर स्कन्द ने अपने भयानक स्वरूप में विराट् स्वरूप को दिखाया, जिसमें करोड़ों ब्रह्माण्ड, इन्द्र, उपेन्द्र वर्तमान थे। इस प्रकार सम्पूर्ण सभा उनके रोम-रोम में ब्रह्माण्ड को देखकर काँप उठी। घबड़ा कर विष्णु और ब्रह्मा शरणागत हो स्वीकार किया कि वास्तव में आप शिवजी का ही रूप हैं। अब आप अपना वही रूप धारण कर लीजिये। इसके बाद विष्णु जी हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। विष्णु ने कहा— हे षणमुख! गिरिजानन्दन! वास्तव में तुम शिवस्वरूप हो। आज हमने अपना स्वामी प्राप्त कर लिया है। तुम तो अनादि निर्गुण होते हुए सगुण स्वरूप हो। तुमने स्कन्द का अवतार धारण किया है।

इस प्रकार विष्णु ने स्कन्द की स्तुति कर विमान पर चढ़ा कर सभी देवताओं के साथ शिवजी के भवन की ओर चले। उस समय सभी देवता जय-जयकार कर रहे थे। सभी प्रकार के बाजे बज रहे थे। कोई दान कर रहा था। कोई गाना गा रहा था। इस प्रकार आनन्द मनाते हुए कैलास पर पहुँचे। स्कन्द को ले जाकर शिव जी के पास खड़ा किया। उस समय शिव एवं

गिरिजा को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय गिरिजा के स्तन से दूध निकल पड़ा। उनकी वही दशा हो गयी, जो पुत्रोत्पत्ति के समय होती है। तदनन्तर शिवजी ने पूछा कि यह किसका पुत्र है? तब नारद जी ने यह समझ कर कि शिवजी यह चरित्र लीला के निमित्त करते हैं, उत्तर में आरम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर पार्वती ने बहुत प्यार करते हुए उस बालक को गोद में लेकर दूध पिलाया और शिव-पार्वती दोनों बहुत प्रसन्न हुए। शिवजी के गण भी लड़के को गोद में लिये हुए देखकर बहुत प्रसन्न हो गये। इसके बाद स्कन्द को सभी गणों ने प्रणाम किया। वीरभद्र, भैरव और नन्दी ने भी सेवकों के समान उनको प्रणाम किया।

इसके बाद सभी देवताओं ने सिर झुकाकर आदर दिया। विष्णु जी ने स्कन्द का नीराजन किया। इसके बाद सभी देवताओं ने भी उनका नीराजन किया। सभी प्रकार के आनन्दोत्सव होने लगे। स्कन्द जी भी शिवजी की गोद में खेलने लगे। वे वासुकि नाग का गला अपने दोनों हाथों से जोर से पकड़ कर उसके साथ खेलने लगे। वासुकि नाग स्कन्द के चरणों पर लोटता था। शिवजी ने स्कन्द का यह चरित्र देखकर हँसते हुए पार्वती की ओर देखा। गिरिजा भी हँसने लगीं। हँसते हुए शिव एवं पार्वती आप सभी के मनोरथों को पूर्ण करें (शिवपुराणभाषा, चतुर्थ खण्ड, अ. १-५)।

एक समय नारद ने ब्रह्मा जी से पूछा— देवताओं का मंगल करने वाले देव! परमात्मा शिव तो सर्वसमर्थ हैं। आत्माराम होकर भी उन्होंने जिस पुत्र की उत्पत्ति के लिये पार्वती के साथ विवाह किया था, उस तारकासुर का वध कैसे हुआ? ब्रह्मन्! मुझ पर कृपा करके यह सारा वृत्तान्त पूर्णरूप से वर्णन कीजिये। महर्षि नारद के इस प्रकार पूछने पर ब्रह्मा जी ने कहा— हे नारद! जब भगवान् शंकर और गिरिजा को पुत्र की प्राप्ति हुई, उस समय भगवान् शिव ने कुमार को गोद में बैठा कर अत्यन्त स्नेह किया। देवताओं ने उन्हें नाना प्रकार के पदार्थ, विद्याएँ, शक्ति और अस्त्र-शस्त्रादि प्रदान किये। पार्वती के हृदय में प्रेम नहीं समा रहा था। उन्होंने हर्षपूर्वक मुसुकुरा कर कुमार को परमोत्तम ऐश्वर्य प्रदान किया, साथ ही चिरंजीवी भी बना दिया। लक्ष्मी ने दिव्य सम्पत् तथा एक विशाल एवं मनोहर हार अर्पित किया। सावित्री ने प्रसन्न होकर सारी सिद्ध विद्याएँ प्रदान कीं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार वहाँ महोत्सव

मनाया गया। सभी के मन प्रसन्न थे। विशेषत: शिव और पार्वती के आनन्द का पार नहीं था। इसी बीच देवताओं ने भगवान् शंकर से कहा— महादेव! तारकासुर के उपद्रव से हम लोग अत्यन्त त्रस्त हैं। यह तारक नामक असुर वज्राङ्गी का पुत्र है। जब भगवान् विष्णु ने कनकाक्ष और हिरण्यकशिपु का वध कर दिया, तब दिति ने अतिदु:खी होकर कश्यप जी से सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया और उनकी सेवा-सुश्रूषा से प्रसन्न कर आनन्द देने वाले एक पुत्र की याचना की। इस पर कश्यप ने कहा कि तुम एक सहस्त्रवर्षपर्यन्त तप करो, तप:सिद्धि के अनन्तर भाग्यवान् पुत्र की प्राप्ति होगी। उसने वैसा ही किया। उस समय इन्द्र उसके समीप रहकर उसकी सेवा करने लगे। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर दिति ने वर माँगने के लिये कहा। तब इन्द्र ने कहा कि तुम जिस पुत्र के लिये तप कर रही हो, वह मेरे भाई के समान होकर मेरा हितैषी हो। इससे दिति के मन में पश्चात्ताप हुआ। छल से इन्द्र ने उसके गर्भ में प्रवेश कर उसके सात टुकड़े किये, पुन: उनके भी सात-सात टुकड़े कर दिये, वही उनचास पवन होकर इन्द्र के हितैषी हो गये।

इसके बाद दिति ने कश्यप की पुन: सेवा की और कहा कि इस बार मुझको एक ऐसा वज्राङ्गी पुत्र दीजिये, जिस पर कोई शस्त्र लग न सके। तब कश्यप ने कहा कि तुम दश सहस्त्र वर्ष तक तप करो, तो निस्सन्देह तुमको ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा। दिति ने अतिप्रसन्न होकर वैसा ही किया। जब तप की अवधि पूरी हुई, तो वैसा ही पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम वज्राङ्गी रखा गया, जो महाप्रतापवान्, पुष्ट, वीर, धीर और तेजवान् हुआ, मानों वह विष्णु का चौथा अवतार हो। उसने अपनी माता दिति की आज्ञा से इन्द्र को पकड़ कर सामने किया और उसको मार-मारकर अच्छी तरह पृथिवी पर पटक कर घसीटा और बन्दी बना लिया। पुन: ब्रह्मा एवं कश्यप जी के कहने से उन्हें मुक्त किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने उसे एक बराङ्गी नामक स्त्री प्रदान की।

इसके बाद वज्राङ्गी समुद्र में बैठकर तप करने लगा और उसी समुद्र के तह पर पर्वत के निकट वराङ्गी भी तप करने लगी। उस समय इन्द्र ने अपने गणों को भेज कर उसके तप में विघ्न डालने का प्रयास करते हुए भय उत्पन्न करने की कोशिश किये। परन्तु उस स्त्री पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। तदनन्तर ब्रह्मा जी वज्राङ्गी के तप से प्रसन्न होकर वर देने के लिये वहाँ गये। तब वज्राङ्गी ने कहा कि मैं राज्य नहीं चाहता हूँ, क्योंकि न तो उसमें कुछ

आनन्द है और न परलोक बनता है, मुझे अपना सेवक समझकर यह वरदान दीजिये कि मुझमें आसुरी भाव न हो और मेरा मन सदा धर्म और तप में लगा रहे। ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त कर वज्राङ्गी जल से बाहर निकल कर अपनी स्त्री वराङ्गी को बुलाया। वह उसके सामने आकर रोने लगी। जब वज्राङ्गी ने रोने का कारण पूछा, तो स्त्री ने सम्पूर्ण दुःख का कारण बताया। वज्राङ्गी ने उसे बहुत समझाने का प्रयास किया, परन्तु उसके मन में उसकी एक भी बात समझ में नहीं आयी; क्योंकि वह बहुत क्रोधित थी।

इसके बाद वह अपने पति की सेवा उत्तम रीति से करती रही। एक दिन समय पाकर विनयपूर्वक उसने पति से कहा— हे पतिदेव! इन्द्र हमारा बहुत बड़ा शत्रु है, वह बहुत दुःख देता है, आप बदला लेने वाला एक पुत्र मुझे दीजिये और मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये, यह कहकर अपने पति के चरणों पर गिर पड़ी।

वज्राङ्गी अपनी पत्नी की ऐसी बात सुनकर अत्यन्त दुःखी हुआ। बहुत सोच-विचार के अनन्तर तप करने के लिये चला गया। बहुत कालतक तप करने के बाद ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे वर माँगने के लिये कहा। तब वज्राङ्गी ने कहा— हे देव! हमें एक ऐसा पुत्र उत्पन्न हो, जो अपनी माता को आनन्द देने वाला हो। वह बड़ा बलवान् और तेजवान् हो। इस प्रकार ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर वज्राङ्गी अपने घर आकर अपनी स्त्री से सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। कुछ दिनों के बाद वह वराङ्गी गर्भवती हुई। वह लड़का गर्भ में ही अत्यन्त भयानक हुआ। उसके उत्पन्न होते ही संसार में बहुत उपद्रव होने लगा। धरती में भूकम्प होने लगा, तारे आकाश से गिरने लगे। समुद्र पहाड़ पर चढ़ने लगे।

उसके उत्पन्न होने के बाद पिता ने समस्त जातकर्म पूर्ण किया। उसकी माता अति प्रसन्न हुई। वह माता के दुःख दूर करने वाला उत्पन्न हुआ, इसलिये उसका नाम **तारक** रखा गया। वही तारक माता की आज्ञा से पारिजात पर्वत पर जाकर विजय की इच्छा से तप किया। अत्यन्त कठिन तप करने के बाद भी जब भगवान् शिव प्रसन्न न हुए, तब तारक ने आसुरी तप प्रारम्भ किया। अपने शरीर के अङ्गों को काट-काट कर अग्नि में हवन करने लगा। उसके इस कठोर तप से तीनों लोक जलने लगा। तब सभी देवता ब्रह्मा

और विष्णु को आगे कर शिव के शरण में गये और उन लोगों ने अपना कष्ट निवेदन किया।

इसके बाद भगवान् शिव ने हँस कर कहा— हे देवगण! तारक के कठिन तप से तीनों लोक की यह अवस्था है। वह देवताओं को दु:ख देने के लिये तप कर रहा है, इसीलिये हम उसे वरदान देने में संकोच कर रहे हैं। यह सुनकर देवताओं ने आश्चर्यचकित होकर कहा कि आप तारक को वरदान दें, क्योंकि आपके वरदान देने से इतनी जल्दी हम नष्ट नहीं हो जायेंगे। तदनन्तर शिव के कहने से विष्णु ने उसके तप को भंग करने के लिये अनेक उपाय किये, परन्तु उनकी एक न चली। अन्त में भगवान् शिव वरदान देने के लिये उसके समीप गये और ऊँचे शब्दों में वर माँगने के लिये कहा। तब तारक ने प्रसन्न हो नेत्र खोलकर शिव को प्रणाम किया और यह वरदान माँगा कि मैं आपके पुत्र के अतिरिक्त किसी अन्य के मारे न मरूँ और करोड़ों वर्ष तक लोक में राज्य करूँ। इस प्रकार शिव से वर प्राप्त कर तारक अति प्रसन्न हुआ और अपने घर गया और अपनी स्त्री से सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।

इसके बाद सभी असुरों ने एकत्रित होकर उसको राज्य पर प्रतिष्ठित किया। असुरों की भारी सेना एकत्रित हो गयी, जिसमें करोड़ों वीर थे, असुरसेना के कुम्भक, कुञ्ज, महिष, कुञ्जर, कालनेमि, निमि, कृष्णजठर, प्रजाम्बुक, शुम्भ कालकेतु ये दशों बड़े प्रसिद्ध सेनाधिप थे। इस सेना को लेकर तारक ने सबसे पहले इन्द्र पर चढ़ाई की। इन्द्रपुरी को घेर लिया, देवता और दैत्यों का घोर युद्ध हुआ। युद्ध में तारक ने इन्द्र को परास्त कर क्रमश: सभी देवताओं को अपने वश में कर लिया। तारक निर्भय होकर सम्पूर्ण देश को अलग-अलग भागों में विभक्त कर उनका राज्य असुरों को प्रदान कर दिया, जहाँ वे अपने परिवार के साथ आनन्दमग्न रहने लगे। तारक स्वयं तीनों लोकों का स्वामी विष्णु के स्थान पर अधिष्ठित हो गया। इस प्रकार सभी देवताओं के स्थान पर दैत्य-दानव नियुक्त हुए और सब असुर संसार का स्वामी होकर राज्य करने लगे। उसके राज्य में देवताओं के अतिरिक्त अन्य कोई मनुष्य दु:खी नहीं था। उसके राज्य में सूर्य भी ठंढ़े होकर गरमी प्रकट करते हैं और चन्द्रमा भी अपनी समस्त कलाओं से विद्यमान रहकर भयभीत रहते हैं। उसके उद्यान में पवन इसलिये तेज नहीं चलता कि उसके

पुष्प न गिर पड़े। वासुकिनाग मानों दीपक बनकर अपने शीश की मणि से मन्दिर में प्रकाश करते हैं। इन्द्र स्वयं उसकी सेवा में जुटे रहते हैं। यद्यपि सभी देवता उसकी सेवा में जुटे रहते हैं, तथापि वह कुछ भी कृपा नहीं करता।

देवपत्नियाँ उसके शयन के समय स्तुति कर अपना अश्रु पृथिवी पर छोड़ती हैं। तारक ने पर्वतों के शिखर काट कर वहाँ विहार-स्थान और अन्त:पुर बना दिया है। इस स्थिति में देवताओं का कोई उपाय नहीं चलता, जिस प्रकार सन्निपात के हो जाने पर कोई औषधि काम नहीं करती। हम लोगों को विष्णु के चक्र पर बड़ा भरोसा था, पर वह भी व्यर्थ हो गया।

हे प्रभो! यह तारकासुर कुमार के हाथों ही मारा जाने वाला है, इसीलिये यह पार्वती-परिणय तथा कुमारोत्पत्ति आदि उत्तम चरित घटित हुआ है। अत: हमलोगों के सुखार्थ उसका काम तमाम करने के लिये कुमार को आज्ञा दीजिये। हमलोग आज ही अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर तारक को मारने के लिए रण-यात्रा करेंगे।

यह सुनकर भगवान् शंकर का हृदय दयार्द्र हो गया। उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उसी समय तारक का वध करने के लिए अपने पुत्र कुमार को देवताओं को सौंप दिया। फिर तो शिवजी की आज्ञा मिल जाने पर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता एकत्र होकर गुह को आगे करके तुरन्त ही उस पर्वत पर चल दिये। उस समय श्रीहरि आदि सभी देवताओं के मन में पूर्ण विश्वास था कि वे अवश्य तारक का वध कर डालेंगे। वे भगवान् शंकर के तेज से भावित हो कुमार के सेनापतित्व में तारक का संहार करने के लिए रणक्षेत्र में आये। उधर महाबली तारक ने जब देवताओं के इस युद्धोद्योग को सुना, तब वह भी एक विशाल सेना के साथ देवों से युद्ध करने के लिये तत्काल ही चल पड़ा। उसकी उस विशाल वाहिनी को आते देख देवताओं को परम विस्मय हुआ। फिर तो वे बलपूर्वक बारंबार सिंहनाद करने लगे। उसी समय तुरन्त ही भगवान् शंकर की प्रेरणा से विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओं के प्रति आकाशवाणी हुई।

आकाशवाणी ने कहा— देवगण! तुमलोग जिस कुमार के अधिनायकत्व में युद्ध करने के लिये उद्यत हुए हो, इससे तुम लोग संग्राम में दैत्यों को जीत कर विजयी होओगे।

ब्रह्मा जी कहते हैं— हे मुने! उस आकाशवाणी को सुनकर सभी देवताओं का उत्साह बढ़ गया। उनका भय जाता रहा और वे वीरोचित गर्जना करने लगे। उनकी युद्ध कामना बलवती हो उठी और वे सब-के-सब कुमार को अग्रणी बनाकर बड़ी उतावली के साथ महीसागर-संगम को गये। उधर बहुसंख्यक असुरों से घिरा हुआ वह तारक भी बहुत बड़ी सेना के साथ शीघ्र ही वहाँ आ धमका, जहाँ वे सभी देवता खड़े थे। उस असुर के आगमन काल में प्रलयकालीन मेघों के समान गर्जना करने वाली रणभेरियाँ तथा अन्यान्य कर्कश शब्द करने वाले रणवाद्य बज रहे थे। उस समय तारकासुर के साथ आने वाले दैत्य ताल ठोंकते हुए गर्जना कर रहे थे। उनके पदाघात से पृथिवी काँप उठती थी। उस अत्यन्त भयंकर कोलाहल को सुनकर भी सभी देवता निर्भय ही बने रहे। वे एक साथ मिलकर तारकासुर से लोहा लेने के लिए डटकर खड़े हो गये। उस समय देवराज इन्द्र कुमार को गजराज पर बैठाकर सबसे आगे खड़े हुए। वे लोकपालों से घिरे हुए थे और उनके साथ देवताओं की महती सेना थी। तत्पश्चात् कुमार ने उस गजराज को तो महेन्द्र को ही दे दिया और वे स्वयं एक ऐसे विमान पर आरूढ हुए, जो परमाश्चर्यजनक तथा नाना प्रकार के रत्नों से सुशोभित था। उस समय उस विमान पर सवार होने से सर्वगुणसम्पन्न महायशस्वी शंकरपुत्र कुमार उत्कृष्ट शोभा से संयुक्त होकर सुशोभित हो रहे थे। उनपर परम प्रकाशमान चँवर डुलाये जा रहे थे। इसी बीच बलाभिमानी एवं महावीर देवता और दैत्य क्रोध से विह्वल होकर परस्पर युद्ध करने लगे। उस समय देवताओं और दैत्यों में बड़ा घमासान युद्ध हुआ। क्षणभर में सारी रणभूमि रुण्ड-मुण्डों से व्याप्त हो गयी।

तब महाबली तारकासुर बहुत बड़ी सेना के साथ देवताओं से युद्ध करने के लिये वेगपूर्वक आगे बढ़ा। उस रणदुर्मद तारक को युद्ध की कामना से आगे बढ़ते हुए देखकर इन्द्र आदि देवता तुरन्त ही उसके सामने आये। फिर तो दोनों सेनाओं में महान् कोलाहल होने लगा। तत्पश्चात् देवों तथा असुरों का विनाश करने वाला ऐसा द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसे देखकर वीर लोग हर्षोत्फुल्ल हो गये और कायरों के मन में भय व्याप्त हो गया। इसी समय वीरभद्र कुपित होकर महाबली प्रथमगणों के साथ वीराभिमानी तारक के समीप आ पहुँचे। वे बलवान् गणनायक भगवान् शिव के कोप से उत्पन्न हुए थे, अतः समस्त देवताओं को पीछे करके युद्ध की अभिलाषा से तारक के सम्मुख डट गये। उस समय प्रमथगणों तथा सारे असुरों के मन में परमोल्लास था,

अत: वे उस महासागर में परस्पर गुत्थमगुत्थ होकर जूझने लगे। तदनन्तर वीरभद्र से तारक का भयानक युद्ध हुआ। इसी बीच असुरों की सेना रण से विमुख हो भाग चली।

इस प्रकार अपनी सेना को तितर-बितर हुई देख उसका नायक तारकासुर क्रोध से भर गया और दस हजार भुजाएँ धारण करके सिंह पर सवार हो देवगणों को मार डालने के लिये वेगपूर्वक उनकी ओर झपटा। वह युद्ध के मुहाने पर देवों तथा प्रमथगणों को मार-मार कर गिराने लगा। तब प्रमथगणों के नेता महाबली वीरभद्र उसके उस कर्म को देखकर उसका वध करने के लिये अत्यन्त कुपित हो उठे। फिर तो उन्होंने भगवान् शिव के चरण-कमल का ध्यान करके एक ऐसा श्रेष्ठ त्रिशूल हाथ में लिया, जिसके तेज से सारी दिशाएँ और आकाश प्रकाशित हो उठे। इसी अवसर पर कौतुक प्रदर्शन करने वाले स्वामी कार्तिकेय ने तुरन्त ही वीरबाहु द्वारा कहलाकर उस युद्ध को रोक दिया। तब स्वामी की आज्ञा से वीरभद्र उस युद्ध से हट गये। यह देखकर असुर सेनापति महावीर तारक कुपित हो उठा। वह युद्धकुशल तथा नाना-प्रकार के अस्त्रों का जानकार था, अत: देवताओं को ललकार-ललकार कर उनपर बाणों की वृष्टि करने लगा। उस समय बलवानों में श्रेष्ठ असुरराज तारक ने ऐसा महान् कर्म किया कि सारे देवता मिलकर भी उसका सामना न कर सके। उन भयभीत देवताओं को यों पिटते हुए देखकर भगवान् अच्युत को क्रोध हो आया और वे शीघ्र ही युद्ध करने के लिये तैयार हो गये। उन भगवान् श्रीहरि ने अपने आयुध सुदर्शन चक्र और शार्ङ्ग धनुष को लेकर युद्धस्थल में महादैत्य तारक पर आक्रमण किया। तदनन्तर सबके देखते-देखते श्रीहरि और तारकासुर में अत्यन्त भयंकर एवं रोमांचकारी महायुद्ध छिड़ गया। इसी बीच अच्युत ने कुपित होकर महान् सिंहनाद किया और धधकती हुई ज्वाला के समान प्रकाश वाले अपने चक्र को उठाया। फिर तो श्रीहरि ने उसी चक्र से दैत्यराज तारक पर प्रहार किया। उसकी चोट से अत्यन्त व्यथित होकर वह असुर पृथिवी पर गिर पड़ा। परन्तु वह असुरनायक तारक अत्यन्त बलवान् था, अत: तुरन्त ही उठकर उस दैत्यराज ने अपनी शक्ति से चक्र के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। भगवान् विष्णु और तारकासुर दोनों बलवान् थे और दोनों में अगाध बल था, अत: युद्धस्थल में दोनों परस्पर जूझने लगे—

एवमन्योन्यमसुरो विष्णुश्च बलवानुभौ।
युयुधाते रणे भूरि तत्राक्षतबलौ मुने।।

(शि.पु., रु.सं., कुमारखण्ड, ८.५२)

इस प्रकार के भयानक युद्ध को देखकर ब्रह्मा ने सुरसेनानी कार्तिकेय से कहा— शंकरपुत्र स्वामी कार्तिक! आप तो देवाधिदेव हैं। पार्वतीसुत! विष्णु और तारक का यह व्यर्थ युद्ध शोभा नहीं दे रहा है; क्योंकि विष्णु के हाथों इस तारक की मृत्यु नहीं होगी। यह मुझसे वरदान पाकर अत्यन्त बलवान् हो गया है। यह मैं बिल्कुल सत्य कहता हूँ। पार्वतीनन्दन! तुम्हारे अतिरिक्त इस पापी को मारने वाला दूसरा कोई नहीं है, इसलिये आपको मेरे कथनानुसार ही करना चाहिये। हे परन्तप! आप शीघ्र ही उस दैत्य का वध करने के लिये तैयार हो जायें; क्योंकि तारक के संहार करने के निमित्त ही आप भगवान् शंकर से उत्पन्न हुए हैं—

तस्मात्त्वया निहन्तव्यस्तारकः पापपूरुषः।
अन्यवध्यो न चैवायं मद्वराच्छङ्करात्मज।।

(शि.पु.,रु.सं., कुमार खण्ड, ९/९)

इस प्रकार ब्रह्मा के वचन को सुनकर शंकरनन्दन कुमार कार्तिकेय ठठाकर हँस पड़े और प्रसन्नतापूर्वक बोले— 'तथास्तु — ऐसा ही होगा।' तब महान् ऐश्वर्यशाली शंकरसुवन कुमार तारकासुर के वध का निश्चय करके विमान से उतर पड़े और पैदल हो गये। जिस समय महाबली शिवपुत्र कुमार अपनी अत्यन्त चमकीली शक्ति को, जो लपटों से दमकती हुई एक बड़ी उल्का-सी जान पड़ती थी, हाथ में लेकर पैदल ही दौड़ रहे थे, उस समय उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी। उनके मन में तनिक भी व्याकुलता नहीं थी। वे परम प्रचण्ड और अप्रमेय बलशाली थे। उन षण्मुख को अपनी ओर आते देखकर तारक सुरश्रेष्ठों से बोला—

कुमारो मेऽग्रतश्चाद्य भवद्भिश्च कथं कृतः।
यूयं गतत्रपा देवा विशेषाच्छक्रमेश्वरौ।।

(शि.पु., रु.सं., कुमारखण्ड, ९.१६)

अर्थात् हे देवों! तुम लोगों ने आज मेरे सामने इस छोटे से बच्चे को युद्ध के लिये क्यों कर दिया है। तुम लोग अत्यन्त निर्लज्ज हो। विशेष कर इन्द्र और विष्णु तो अति निर्लज्ज हैं।

क्या यही कुमार शत्रुओं का संहार करेगा? मैं अकेला वीर इसके साथ युद्ध करूँगा और मैं ही समस्त वीरों, प्रमथगणों, लोकपालों तथा श्रीहरि जिनके नायक हैं, उन देवों को भी मार डालूँगा।

तदनन्तर देवताओं को दुर्वचन कहकर वह असुर तारक भीषण युद्ध करने लगा। उस समय बड़ा विकट संग्राम हुआ। तब शत्रु-वीरों का संहार करने वाले कुमार ने भगवान् शिव के चरण-कमल का स्मरण करके तारक वध का विचार किया। फिर तो महातेजस्वी एवं बलशाली कुमार रोषावेश में आकर गर्जना करने लगे और बहुत बड़ी सेना के साथ युद्ध के लिये डट कर खड़े हो गये। उस समय समस्त देवताओं ने जय-जयकार का शब्द किया और देवर्षियों ने इष्टवाणी द्वारा उनकी स्तुति की। तब तारक और कुमार कार्तिकेय का संग्राम प्रारम्भ हुआ, जो अत्यन्त दुस्सह, महान् भयंकर और सम्पूर्ण प्राणियों को भयभीत करने वाला था। कुमार और तारक दोनों ही शक्तियुद्ध में परम प्रवीण थे। अत: अत्यन्त रोषावेश में वे परस्पर एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। परम पराक्रमी वे दोनों नाना प्रकार के पैंतरे बदलते हुए गर्जना कर रहे थे और अनेक प्रकार से दाँव-पेंच से एक-दूसरे पर आघात कर रहे थे। उस समय देवता, गन्धर्व और किन्नर सभी चुपचाप खड़े होकर वह दृश्य देख रहे थे। उन्हें परम विस्मय हुआ— यहाँ तक कि वायु का चलना बन्द हो गया, सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गयी और पर्वत एवं वन-काननों सहित सारी पृथिवी काँप उठी।

इसी अवसर पर हिमालय आदि पर्वत स्नेहाभिभूत होकर कुमार की रक्षा के लिये वहाँ आये। तब उन सभी पर्वतों को भयभीत देखकर शंकर एवं गिरिजा के पुत्र कुमार उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले— 'महाभाग पर्वतों! आप लोग खेद मत करें। आप लोगों की आँखों के सामने ही इस पापी का काम तमाम कर दूँगा।' इस प्रकार उन पर्वतों और देवगणों को ढाढ़स बँधा कर कुमार ने गिरिजा और शम्भु को प्रणाम किया तथा अपनी कान्तिमयी शक्ति को हाथ में लिया। शम्भुपुत्र कुमार महाबली तथा महान् ऐश्वर्यशाली तो थे ही। जब उन्होंने तारक का वध करने की इच्छा से शक्ति हाथ में ली, उस समय उनकी अद्भुत शोभा हुई। तदनन्तर शंकर जी के तेज से सम्पन्न कुमार ने उस शक्ति से समस्त लोकों को कष्ट देने वाले तारकासुर पर प्रहार किया। उस शक्ति के आघात से तारकासुर के सभी अङ्ग छिन्न-

भिन्न हो गये और सम्पूर्ण असुरगणों का अधिपति वह महावीर सहसा धराशायी हो गया। सबके देखते देखते वहीं कुमार द्वारा मारे गये तारक के प्राणपखेरू उड़ गये। उस उत्कृष्ट वीर तारक को महासमर में प्राणरहित होकर गिरा हुआ देखकर वीरवर कुमार ने पुनः उस पर प्रहार नहीं किया। उस दैत्यराज तारक के मारे जाने पर देवताओं ने बहुत से असुरों को मौत के घाट उतार दिया। उस युद्ध में कुछ असुरों ने भयभीत होकर हाथ जोड़ लिये, कुछ के शरीर छिन्न-भिन्न हो गये और हजारों दैत्य मृत्यु के अतिथि बन गये। कुछ शरणार्थी दैत्य यह पुकारते हुए कुमार के शरणापन्न हो गये। कुछ मार डाले गये और कुछ मैदान छोड़कर भाग गये। सहस्रों दैत्य जीवन की आशा से भागकर पाताल में घुस गये। उन सबकी आशाएँ भग्न हो गयी थीं और मुख पर दीनता छायी हुई थी।

इस प्रकार वह सारी दैत्यसेना विनष्ट हो गयी। देवगणों के भय से कोई भी वहाँ ठहर न सका। उस दुरात्मा तारक के मारे जाने पर सभी लोक निष्कण्टक हो गये और इन्द्र आदि सभी देवता आनन्दमग्न हो गये। इस प्रकार कुमार को विजयी देखकर एक साथ ही सम्पूर्ण देवताओं तथा त्रिलोकी के समस्त प्राणियों को महान् आनन्द प्राप्त हुआ। उस समय भगवान् शंकर भी कार्तिकेय की विजय का समाचार सुनकर प्रसन्नता से भर गये और पार्वती के साथ गणों से घिरे हुए वहाँ पधारे। प्रेमपूरित हृदयवाली पार्वती जी सूर्य के समान तेजस्वी अपने पुत्र कुमार को अपनी गोद में लेकर लाड़-प्यार करने लगीं। उसी अवसर पर अपने पुत्रों से घिरे हुए हिमालय ने बन्धु-बान्धवों तथा अनुयायियों के साथ आकर शम्भु, पार्वती और कुमार का स्तवन किया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवगण, मुनि, सिद्ध और चारणों ने शिवनन्दन कुमार, शम्भु और परम प्रसन्न पार्वती की स्तुति की। उस समय वहाँ एक महान् विजयोत्सव मनाया गया। समस्त देवगणों ने प्रसन्नतापूर्वक गा-बजाकर तथा हाथ जोड़कर भगवान् जगन्नाथ की स्तुति की। तत्पश्चात् सबसे प्रशंसित तथा अपने गणों से घिरे हुए भगवान् रुद्र जगज्जननी भवानी के साथ अपने निवास स्थान कैलास पर्वत को चले गये।

इधर तारक को मारा गया देखकर सभी देवताओं तथा अन्य समस्त प्राणियों के चेहरे पर हँसी खेलने लगी। वे भक्तिपूर्वक शंकरसुवन की स्तुति करने लगे।

जब विष्णु आदि देवों ने इस प्रकार की स्तुति की, तब उन्होंने सभी देवों को क्रमश; नया-नया वर प्रदान किया। तत्पश्चात् पर्वतों को स्तुति करते देखकर वे शंकरतनय परम प्रसन्न हुए और उन्हें वर देते हुए बोले— भूधरों! तुम सभी पर्वत तपस्वियों द्वारा पूजनीय तथा कर्मठ और ज्ञानियों के लिये सेवनीय होओगे। ये जो मेरे मातामह पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् हैं, ये महाभाग आज से तपस्वियों के लिये फलदाता होंगे।

इस प्रकार असुरराज तारक को मारकर तथा देवता आदि को वर प्रदान करके देवताओं के कहने से अपने माता-पिता पार्वती और शंकर का दर्शन करने के लिये विमान पर चढ़कर कुमार स्कन्द भगवान् शिव के समीप कैलास पर पहुँच गये। उस समय शिव-शिवा ने बड़ा आनन्द मनाया। देवताओं ने भगवान् शिव की स्तुति की। भगवान् शिव ने उन्हें वरदान तथा अभय दान देकर बिदा किया। उस अवसर पर देवताओं को परम आनन्द प्राप्त हुआ। वे शिव, पार्वती तथा शिवनन्दन कुमार के रमणीय यश का बखान करते हुए अपने-अपने लोक को चले गये। इधर परमेश्वर शिव भी शिवा, कुमार तथा गणों के साथ आनन्दपूर्वक कैलास पर्वत पर निकास करने लगे। (शि.पु., रु.सं., कुमार खण्ड, अ. १-१२)।

इसके बाद शिव और पार्वती अपने दोनों पुत्रों कार्तिकेय और गणेश (गणेश की उत्पत्ति विवाहलीला में वर्णित है) की बाललीला देख-देखकर महान् प्रेम में मग्न रहने लगे। पुत्रों का लाड़ प्यार करने के कारण माता-पिता का सुख दिनों-दिन बढ़ने लगा और वे दोनों कुमार प्रीतिपूर्वक आनन्द के साथ तरह तरह की लीलाएँ करते रहे। वे दोनों बालक स्वामी कार्तिकेय और गणेश भक्तिपूरित चित्त से सदा माता-पिता की परिचर्या किया करते थे। इससे माता-पिता का महान् स्नेह षण्मुख और गणेश पर शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। एक समय शिव और शिवा दोनों प्रेमपूर्वक एकान्त में बैठकर यह विचार करने लगे कि 'हमारे ये दोनों पुत्र विवाह के योग्य हो गये, अब इन दोनों का शुभ विवाह कैसे सम्पन्न हो। हमें तो जैसे षडानन प्यारा है, वैसे ही गणेश भी है।' ऐसी चिन्ता में पड़ कर वे दोनों लीलावश आनन्दमग्न हो गये। माता-पिता के विचार को जानकर उन दोनों पुत्रों के मन में भी विवाह की इच्छा जाग उठी। वे दोनों 'पहले मैं विवाह करूँगा, पहले मैं विवाह करूँगा' इस

प्रकार बारंबार कहते हुए परस्पर विवाद करने लगे। तब जगत् के अधीश्वर वे दोनों दम्पती पुत्रों की बात सुनकर लौकिक आचार का आश्रय ले परम विस्मय को प्राप्त हुए। कुछ समय बाद उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलाया और उनसे कहा— सुपुत्रों! हमलोगों ने पहले से ही एक ऐसा नियम बना रखा है, जो तुमदोनों के लिये सुखदायक होगा। अब हम यथार्थरूप से उसका वर्णन करते हैं, तुमलोग प्रेमपूर्वक सुनो। प्यारे बच्चों! हमें तो तुमदोनों पुत्र समान ही प्यारे हो, किसी पर विशेष प्रेम हो— ऐसी बात नहीं है, अत: हमने तुमदोनों के विवाह के विषय में एक ऐसी शर्त बनायी है, जो दोनों के लिये कल्याणकारिणी है, वह शर्त यह है कि जो सारी पृथिवी की परिक्रमा करके पहले लौट आयेगा, उसी का शुभ विवाह पहले किया जायेगा।

माता-पिता की यह बात सुनकर शरजन्मा महाबली कार्तिकेय तुरन्त ही अपने स्थान से पृथिवी की परिक्रमा करने के लिये चल पड़े। परन्तु अगाध बुद्धिसम्पन्न गणेश वहीं खड़े रह गये। वे अपनी उत्तम बुद्धि का आश्रय ले बारंबार मन में विचार करने लगे कि अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? परिक्रमा तो मुझसे हो नहीं सकेगी, क्योंकि कोस भर चलने के बाद आगे मुझसे चला जायेगा नहीं। फिर सारी पृथिवी की परिक्रमा करके मैं कैसे सुख प्राप्त कर सकूँगा? ऐसा विचार कर गणेश ने अपने घर लौट कर विधिपूर्वक स्नान किया और माता-पिता से इस प्रकार कहा— पिताजी एवं माताजी! मैंने आपलोगों की पूजा करने के लिए यहाँ दो आसन स्थापित किये हैं। आप दोनों इस पर विराजिये और मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।

गणेश की बात सुनकर पार्वती और परमेश्वर उनकी पूजा ग्रहण करने के लिये आसन पर विराजमान हो गये। तब गणेश ने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और बारंबार प्रणाम करते हुए उनकी सात बार प्रदक्षिणा की। गणेश तो बुद्धिसागर थे ही, वे हाथ जोड़कर प्रेममग्न होकर माता-पिता की बहुत प्रकार से स्तुति करके बोले— हे मेरे माता-पिता! आप लोग मेरी उत्तम बात सुनिये और शीघ्र ही मेरा विवाह कर दीजिये; क्योंकि मैंने सात बार पृथिवी की परिक्रमा की है, फिर आप लोग ऐसी बात क्यों कर रहे हैं? मैंने अपनी बुद्धि से आप दोनों शिव-पार्वती की पूजा करके प्रदक्षिणा कर ली है, अत: मेरी समुद्रपर्यन्त पृथिवी की परिक्रमा पूरी हो गयी। धर्म के संग्रहभूत वेदों और

शास्त्रों में जो ऐसे वचन मिलते हैं, वे सत्य हैं अथवा असत्य? वेदों का कथन है कि जो पुत्र माता-पिता की पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथिवी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता-पिता को घर पर छोड़कर तीर्थ-यात्रा के लिये जाता है, वह माता-पिता की हत्या से मिलने वाले पाप का भागी होता है; क्योंकि पुत्र के लिये माता-पिता का चरणसरोज ही महान् तीर्थ है—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यं फलं भवति निश्चितम्।।
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा।।
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।।

(शि.पु., रु.सं., कुमारखण्ड, १९।३९-४१)

अन्य तीर्थ तो दूर जाने पर प्राप्त होते हैं, परन्तु धर्म का साधनभूत यह तीर्थ तो पास में ही सुलभ है। पुत्र के लिये माता-पिता और स्त्री के लिये पति ये दोनों सुन्दर तीर्थ घर में ही वर्तमान हैं। ऐसा जो वेद-शास्त्र निरन्तर उद्घोषित करते रहते हैं, उसे फिर आपलोग असत्य कर दीजिये। यदि यह असत्य हो जायेगा, तो निस्सन्देह वेद भी असत्य हो जायेगा और वेद द्वारा वर्णित आपका यह स्वरूप भी असत्य समझा जायेगा। इसलिये या तो शीघ्र ही मेरा विवाह कर दीजिये अथवा यह कह दीजिये कि वेद-शास्त्र झूठे हैं। आप-दोनों धर्मरूप हैं, अतः भली-भाँति न दोनों में जो परमोत्तम प्रतीत हो, उसे प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये।

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, उत्तम बुद्धिसम्पन्न तथा महान् ज्ञानी पार्वतीनन्दन गणेश इतना कहकर चुप हो गये। उधर वे दोनों जगदीश्वर शिव-पार्वती गणेश के वचन सुनकर परम विस्मित हुए। तदनन्तर वे यथार्थभाषी एवं अद्भुत बुद्धिवाले अपने पुत्र गणेश की प्रशंसा करते हुए बोले— पुत्र! तुम महान् आत्मबल से सम्पन्न हो, इसीसे तुममें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है। तुमने जो बात कही है, वह बिल्कुल सत्य है, अन्यथा नहीं है। दुःख का अवसर आने पर जिसकी बुद्धि विशिष्ट हो जाती है, उसका दुःख उसी प्रकार विनष्ट

हो जाता है, जैसे सूर्य के उदय होते ही अन्धकार। जिसके पास बुद्धि है, वही बलवान् है, बुद्धिहीन के पास बल कहाँ—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
कूपे सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः।।

(शि.पु., रु.सं., कुमारखण्ड, १९.५२)

वेदशास्त्र और पुराणों में बालक के लिये धर्म-पालन जैसी बात कही गयी है, वह सब तुमने पूरी कर ली। यह कहकर उन दोनों ने बुद्धिसागर गणेश को सान्त्वना दी और फिर वे उनके विवाह के सम्बन्ध में उत्तम विचार करने लगे। इसी समय जब प्रसन्न बुद्धिवाले प्रजापति विश्वरूप को भगवान् शिव के उद्योग का पता चला, तब उस पर विचार करके परम सुख प्राप्त हुआ। उन प्रजापति विश्वरूप के दिव्य रूपसम्पन्न एवं सर्वाङ्गशोभना दो सुन्दरी कन्यायें थीं, जिनका नाम **सिद्धि** और **बुद्धि** था। भगवान् शंकर और जगदम्बा उमा ने उनदोनों के साथ हर्षपूर्वक गणेश का विवाह-संस्कार सम्पन्न कराया। उस विवाह के अवसर पर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होकर पधारे। उस समय शिव और पार्वती का जैसा मनोरथ था, उसी के अनुसार विश्वकर्मा ने वह विवाह किया। उसे देखकर ऋषियों तथा देवताओं को परम हर्ष प्राप्त हुआ। गणेश को भी उन दोनों पत्नियों के मिलने से जो सुख प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कुछ काल के पश्चात् महात्मा गणेश के उन दोनों पत्नियों से दो दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें गणेशपत्नी सिद्धि के गर्भ से **'क्षेम'** नामक पुत्र पैदा हुआ और बुद्धि के गर्भ से जिस परम सुन्दर पुत्र ने जन्म लिया, उसका नाम **'लाभ'** हुआ। इस प्रकार जब गणेश अचिन्त्य सुख का भोग करते हुए निवास करने लगे, तब दूसरे पुत्र स्वामी कार्तिकेय पृथिवी की परिक्रमा करके लौटे। उस समय नारद मुनि के मुख से सब समाचार सुनकर कुमार के मन में बड़ा क्षोभ हुआ और वे माता-पिता शिव-पार्वती के द्वारा बार-बार रोके जाने पर भी न रुककर क्रौञ्चपर्वत की ओर चले गये।

उसी दिन से शिव-पुत्र स्वामी कार्तिकेय का कुमारत्व प्रसिद्ध हो गया, उनका **'कुमार'** नाम त्रिलोकी में विख्यात हो गया। यह प्रसङ्ग शुभदायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य की शक्ति प्रदान करने वाला है। कार्तिक की पूर्णिमा को सभी देवता, ऋषि, तीर्थ और मुनीश्वर सदा

कुमार का दर्शन करने के लिये क्रौञ्च पर्वत पर जाते हैं। जो मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमा के दिन कृत्तिका नक्षत्र का योग होने पर स्वामी कार्तिकेय का दर्शन करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है—

कार्तिक्यां च सदा देवा ऋषयश्च सतीर्थकाः।
दर्शनार्थं कुमारस्य गच्छन्ति च मुनीश्वराः।।
कार्तिक्यां कृत्तिकासङ्गे कुर्याद्यः स्वामिदर्शनम्।
तस्य पापं दहेत्सर्वं चित्तेप्सितफलं लभेत्।।

(शि.पु., रु.सं., कुमारखण्ड, २०.२९-३०)।

इस तरह स्कन्द का विछोह हो जाने पर उमा को महान् दुःख हुआ। उन्होंने दीन-भाव से अपने स्वामी भगवान् पशुपति से कहा— 'प्रभो! आप मुझे साथ लेकर वहाँ चलिये।' तब प्रिया को सुख देने के लिये स्वयं भगवान् शंकर अपने एक अंश से उस पर्वत पर गये और सुखदायक **'मल्लिकार्जुन'** नामक ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। वे सत्पुरुषों की गति तथा अपने सभी भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं। वे आज भी शिवा के सहित उस पर्वत पर विराजमान हैं।

वे दोनों शिव और शिवा भी पुत्र-स्नेह से विह्वल होकर प्रत्येक पर्व पर कुमार को देखने के लिये जाते हैं। अमावस्या के दिन वहाँ शम्भु पधारते हैं और पूर्णिमा के दिन पार्वती जी जाती हैं—

पुत्रस्नेहातुरौ तौ वै शिवौ पर्वणि पर्वणि।
दर्शनार्थं कुमारस्य तस्य नारद गच्छतः।।
अमावस्यादिने शम्भुः स्वयं गच्छति तत्र ह।
पूर्णमासीदिने तत्र पार्वती गच्छति ध्रुवम्।।

(शि.पु., रु.सं., कुमारखण्ड, अ. २०.३६-३७)

इस प्रकार भगवान् शंकर की कुमारजनन लीला आप लोगों का कल्याण करने वाली हो।



२०. त्रिपुरदहन लीला

जब शिवकुमार स्कन्द ने तारकासुर का वध कर डाला, तब उसके तीनों पुत्रों को महान् सन्ताप हुआ। उनमें तारकाक्ष ज्येष्ठ था, विन्द्युन्माली मझला था और छोटे का नाम कमलाक्ष था। उन तीनों में समान बल था। वे जितेन्द्रिय, कार्य के लिए सदा उद्यत, संयमी, सत्यवादी, दृढ़चित्त, महान् वीर और देवों से द्रोह करने वाले थे। उन तीनों ने सभी उत्तमोत्तम एवं मनोहर भोगों का परित्याग कर मेरुपर्वत की एक कन्दरा में जाकर परम अद्भुत तपस्या प्रारम्भ की। वहाँ उन लोगों ने हजारों वर्षों तक ब्रह्माजी की प्रसन्नता के लिये अत्यन्त उग्र तप किया। तब सुर और असुरों के गुरु महायशस्वी ब्रह्मा जी उनकी तपस्या से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्हें वर देने के लिए प्रकट हुए।

ब्रह्माजी ने कहा— महादैत्यों! मैं तुम लोगों की तपस्या से प्रसन्न हो गया हूँ। अत: तुम्हारी कामना के अनुसार तुम्हें सभी वर प्रदान करूँगा। अत: तुम लोगों ने इतना घोर तप किसलिये किया है? बतलाओ। ब्रह्मा की यह बात सुनकर उन सबने अञ्जलि बाँधकर पितामह के चरणों में प्रणिपात किया और फिर धीरे धीरे अपने मन की बात कहना प्रारम्भ किया। दैत्य बोले— देवेश! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं और हमें वर देना चाहते हैं, तो यह दीजिये कि समस्त प्राणियों के लिये हम सब अवध्य हो जायँ। जगन्नाथ! आप हमें स्थिर कर दें और जरा, रोग आदि हमारे सभी शत्रु नष्ट हो जायँ तथा कभी भी मृत्यु हमारे सामने न फटके। हम लोग अजर-अमर होकर त्रिलोकी के अन्य प्राणियों को मौत के घाट उतारते रहें, क्योंकि यदि पाँच ही दिनों में काल के गाल में चला जाना निश्चित है, तो अतुल लक्ष्मी, अन्यान्य भोग-सामग्री, उत्कृष्ट पद और ऐश्वर्य से क्या प्रयोजन है।

उन तपस्वी दैत्यों की यह बात सुनकर ब्रह्मा अपने स्वामी गिरिशायी भगवान् शंकर का ध्यान करके बोले— असुरों! अमरत्व सभी को नहीं मिल

सकता। अतः तुम लोग अपना यह विचार छोड़ दो। इसके अतिरिक्त अन्य कोई वर, जो तुम्हें अच्छा लगता हो, माँग लो, क्योंकि इस भूतल पर जहाँ कहीं भी जो प्राणी जन्मा है अथवा जन्म लेगा, वह जगत् में अजर-अमर नहीं हो सकता। इसलिए तुम लोग स्वयं अपनी बुद्धि से विचार कर मृत्यु की वञ्चना करते हुए कोई ऐसा दुर्लभ वर माँग लो, जो देवताओं और असुरों के लिए अशक्य हो।

ब्रह्मा जी के ऐसे वचन को सुनकर वे दो घड़ी तक ध्यानस्थ हो गये, फिर कुछ सोच-विचार कर पितामह ब्रह्मा से बोले— भगवन्! यद्यपि हमलोग प्रबल पराक्रमी हैं, तथापि हमारे पास ऐसा घर नहीं है, जहाँ हमलोग शत्रुओं से सुरक्षित रहकर सुखपूर्वक निवास कर सकें, अतः आप हमारे लिए ऐसे तीन नगरों का निर्माण करा दीजिये, जो अत्यन्त अद्भुत और सम्पूर्ण सम्पत्तियों से सम्पन्न हों तथा देवता जिनका प्रधर्षण न कर सकें। उसी बीच तारकाक्ष ने कहा कि विश्वकर्मा मेरे लिए स्वर्णमय नगर का निर्माण करें, जिसका भेदन देवता भी न कर सकें। तत्पश्चात् कमलाक्ष ने चाँदी के बने हुए अत्यन्त विशाल नगर की याचना की और विद्युन्माली ने प्रसन्न होकर वज्र के समान कठोर लोहे का बना हुआ बड़ा नगर माँगा। ब्रह्मन्! ये तीनों पुर मध्याह्न के समय अभिजित् मुहूर्त में चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र पर होने पर एक स्थान पर मिला करें और आकाश में नीले बादलों पर स्थित होकर ये क्रमशः एक के ऊपर एक रहते हुए लोगों की दृष्टि से ओझल रहे।

उन दैत्यों का कथन सुनकर स्वीकारोक्तिपूर्वक मय को आदेश देते हुए ब्रह्मा ने कहा— मय! तुम सोने, चाँदी और लोहे के तीन नगर बना दो। इस प्रकार मय को आदेश देकर ब्रह्मा जी उन तारक-पुत्रों के देखते-देखते अपने धाम स्वर्गलोक चले गये। तदनन्तर धैर्यशाली मय ने तारकाक्ष के लिए स्वर्णमय, कमलाक्ष के लिए रजतमय और विद्युन्माली के लिए लौहमय तीन प्रकार का उत्तम दुर्ग तैयार किया। वे पुर क्रमशः स्वर्ग अन्तरिक्ष और भूतल पर निर्मित हुए थे। तीनों पुर उनको प्रदान कर स्वयं भी उसी में प्रवेश कर गया। इस प्रकार उन तीनों पुरों को पाकर वे तारकासुर के लड़के उनमें प्रविष्ट होकर समस्त भोगों का उपभोग करने लगे। वे नगर कल्पवृक्षों से व्याप्त थे।

उनमें मणिनिर्मित जालियों से आच्छादित बहुतेरे महल बने थे। वे पद्मराग के बने हुए एवं सूर्य मण्डल के समान चमकीले विमानों से, जिनमें चारों ओर दरवाजे लगे हुए थे, शोभायमान थे। कैलास-शिखर के समान ऊँचे तथा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल दिव्य प्रासादों तथा गोपुरों से उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी। वे अप्सराओं, गन्धर्वों, सिद्धों तथा चारणों से खचाखच भरे थे। प्रत्येक महल में शिवालय तथा अग्निहोत्रशाला की प्रतिष्ठा हुई थी। उनमें शिवभक्ति-परायण शास्त्रज्ञ ब्राह्मण सदा निवास करते थे। वे बावली, कूप, तालाब और बड़ी-बड़ी तलैयों से तथा समूह-के-समूह स्वर्ग से च्युत हुए वृक्षों से युक्त उद्यानों और वनों से सुशोभित थे। बड़ी-बड़ी नदियों, नदों और छोटी-छोटी सरिताओं से, जिनमें कमल खिले हुए थे, उनकी शोभा और बढ़ रही थी। उनमें सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले अनेकों फलों के भार से लदे हुए वृक्ष लगे थे, जिनसे वे नगर विशेष मनोहर लगते थे। वे झुण्ड के झुण्ड मदमत्त गजराजों से, सुन्दर-सुन्दर घोड़ों से, नाना प्रकार के आकार-प्रकार वाले रथों एवं शिबिकाओं से अलंकृत थे। उनमें समयानुसार पृथक्-पृथक् क्रीडास्थल बने थे और वेदाध्ययन की पाठशालाएँ भी भिन्न-भिन्न निर्मित हुई थीं।

वे नगर पापी पुरुषों के लिये मन-वाणी से भी अगोचर थे। उन्हें सदाचारी पुण्यशाली महात्मा ही देख सकते थे। पतिसेवापरायण तथा कुधर्म से विमुख रहने वाली पतिव्रता नारियों ने उन नगरों के उत्तम स्थलों को सर्वत्र पवित्र कर रखा था। उनमें महाभाग शूर-वीर दैत्य और श्रुति-स्मृति के अर्थ के तत्त्वज्ञ एवं स्वधर्मपरायण ब्राह्मण अपनी स्त्रियों तथा पुत्रों के साथ निवास करते थे। उन नगरों में मय द्वारा सुरक्षित ऐसे सुदृढ़ पराक्रमी वीर भरे हुए थे, जिनके केश नीलकमल के समान नीले और घुँघराले थे। वे सभी सुशिक्षित थे, जिससे उनमें सदा युद्ध की लालसा भरी रहती थी। वे बड़े-बड़े समरों से प्रेम करने वाले थे, ब्रह्मा और शिव का पूजन करने से उनके पराक्रम विशुद्ध थे। वे सूर्य, मरुद्गण और महेन्द्र के समान बली थे और देवताओं का मथन करने वाले थे। वेदों, शास्त्रों और पुराणों में जिन-जिन धर्मों का वर्णन किया गया है, वे सभी धर्म और शिव के प्रेमी देवता वहाँ चारों ओर व्याप्त थे। उन नगरों में प्रवेश करके वे दैत्य सदा शिवभक्तिनिरत होकर सारी त्रिलोकी को बाधित करके विशाल राज्य का उपभोग करने लगे।

सम्पूर्ण भोगसामग्रियों से युक्त उस नगर में निवास करने वाले उन लोगों का सुखपूर्वक उत्तम राज्य का पालन करते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया।

तदनन्तर तारकपुत्रों के प्रभाव से दग्ध हुए इन्द्र आदि सभी देवता दुःखी हो ब्रह्मा जी की शरण में जाकर बोले— ब्रह्मन्! त्रिपुरों के स्वामी तारकपुत्रों ने तथा मयासुर ने समस्त स्वर्गवासियों को सन्तप्त कर दिया है। आप उनके वध का कोई उपाय कीजिये। तब ब्रह्मा ने कहा— देवगण! मैं उनके वध का उपाय बतलाता हूँ। भगवान् शिव आप लोगों का कल्याण करेंगे। मैंने ही इन दैत्यों को बढ़ाया है, अत: मेरे हाथों इनका वध उचित नहीं है। अत: आप लोग शिवजी से प्रार्थना करें। तुमलोगों का कार्य वे ही पूर्ण करेंगे। ब्रह्मा जी की यह वाणी सुनकर स्वकार्य साधनतत्पर देवताओं ने कल्याणकर्ता शंकर का स्तवन किया। उनके प्रसन्न होने पर देवताओं ने त्रिपुरासुरों के वध के लिए निवेदन किया। उनकी बातों को सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया कि देवगण! इस समय वे त्रिपुराधीश महान् पुण्यकार्य में लगे हुए हैं और ऐसा नियम है कि जो पुण्यात्मा हो, उस पर विद्वानों को किसी प्रकार भी प्रहार नहीं करना चाहिये।

मैं देवताओं के सारे महान् कष्टों को जानता हूँ, फिर भी वे दैत्य बड़े प्रबल हैं, अत: देवता और असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते। वे तारकपुत्र सब-के-सब पुण्य से सम्पन्न हैं। इसलिये उन सभी त्रिपुरवासियों का वध दुस्साध्य है, यद्यपि मैं रणकर्कश हूँ, तथापि जानबूझकर मैं मित्र-द्रोह कैसे कर सकता हूँ, क्योंकि पहले किसी समय ब्रह्मा जी ने कहा था कि मित्र-द्रोह से बढ़कर दूसरा कोई बड़ा पाप नहीं है। सत्पुरुषों ने ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा व्रत-भङ्ग करने वाले के लिये प्रायश्चित्त का विधान किया है, परन्तु कृतघ्न के उद्धार का कोई उपाय नहीं बतलाया। जैसा कि कहा गया है—

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च स्तेने भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।।

(शि.पु., रु.सं., युद्धखण्ड, ३.५)

हे देवताओं! आप लोग भी तो धर्मज्ञ हैं, अतः धर्मदृष्टि से विचार कर आप लोग ही बतलायें कि जब वे दैत्य मेरे भक्त हैं, तब मैं उन्हें कैसे मार सकता हूँ। हे देवों! इसलिये जब तक वे दैत्य मेरी भक्ति में तत्पर हैं, तब तक उनका वध असम्भव है। तथापि आप लोग विष्णु के पास जाकर उनसे यह कारण निवेदन करें।

शिव की आज्ञानुसार सभी देवता भगवान् विष्णु के समीप जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर विष्णु ने भगवान् शिव की आज्ञा का विचार कर सोचा कि किसी उपाय से देवताओं का दुःख दूर करना उचित है और पुनः शिव का ध्यान कर यज्ञगण का स्मरण किया, तो यज्ञ के अन्दर से मखपति उत्पन्न हुए और विष्णु की स्तुति करने लगे। विष्णु ने देवताओं से कहा कि आप लोग इस मखपति की पूजा करें, तब देवताओं ने तुरन्त प्रसन्न होकर शङ्खनाद किया और मख अर्थात् यज्ञ करके मखपति के ध्यान में लग गये। उन लोगों ने अति पवित्र स्तुति की। विष्णु ने देवताओं से कहा कि आपलोगों के ऐसे उपायों से त्रिपुर मारे नहीं जा सकते, जिनके देखने से पाप नष्ट हो जाते हैं, उनका मखपति क्या कर सकता है। वे भगवान् शिव के वरदान से इतना आनन्द कर रहे हैं कि संसार में कोई उनके समान नहीं है।

हे देवताओं! संसार में कौन है, जो शिव के भक्त का विनाश कर सके, वे शिव की आज्ञा के बिना नहीं मारे जा सकते हैं, शिव की आज्ञा के बिना ब्रह्मा, हम, देवता यज्ञ, मुनीश्वर आदि उनका कोई कुछ भी नहीं कर सकते, शिवजी ने केवल संसार की भलाई के लिये अवतार लिया है, उनके एक अंश की पूजा करके देवताओं ने कैसा पद पाया है, ब्रह्मा ने भी उनकी पूजा कर यह पद पाया और हमको भी संसार के पालन करने की बड़ाई उन्हींके कृपाप्रसाद से प्राप्त है। शिवपूजा के बिना किसी को कोई कुछ सिद्धि नहीं मिली है। इस लिये हम कहते हैं कि त्रिपुर केवल शिव की सेवा करने से ही मारे जा सकते हैं, हमको निश्चय है कि हम सब भगवान् शंकर की पूजा करके त्रिपुर विजय प्राप्त करेंगे।

यह कहकर सम्पूर्ण देवताओं समेत विष्णु ने शिवपूजन आरम्भ किया और एक करोड़ पार्थिव लिङ्ग बनाकर आवाहन करके अक्षत और सुगन्धमय पुष्प और बिल्वपत्र से पूजन किया और विष्णु भगवान् शिव के ध्यान में मग्न

हो गये। इससे शिव के प्रसन्न होने से असंख्य भूतों की सेना त्रिशूल, शक्ति, गदा आदि लिये हुए प्रकट हुई। विष्णु ने उनको देखकर कहा कि तुम शीघ्र ही त्रिपुर का नाश करो, अर्थात् तीनों पुरों को जलाकर अपने मकान में लौट आओ, इससे संसार में तुम्हारा यश फैलेगा। यह सुनकर वह भूतों की सेना पवन के समान चलकर त्रिपुर में पहुँच गयी और फैल गयी, परन्तु शिव की लीला से वह सेना तुरन्त जलकर भस्म हो गयी; क्योंकि जिनको शिव की भक्ति दृढ़ है, उनके समीप संकट आकर आप ही नष्ट हो जाता है।

इसके बाद देवताओं ने पुनः विष्णु के समीप जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। तब विष्णु विचार करने लगे कि किस उपाय से त्रिपुर विनाश को प्राप्त होंगे, अभिचार कर्म से भी शिव के भक्तों पर कुछ कष्ट नहीं पहुँच सकता, वास्तव में शिव की भक्ति के कारण ये दैत्य बच गये हैं। इसके बाद भगवान् शिव का स्मरण करते हुए विष्णु ने देवताओं से कहा— हे देवों! आप लोग अपने-अपने घरों में जाकर शिव के नाम का स्मरण करें और अहर्निश शिव का पार्थिवपूजन किया करें और उनकी स्तुति करें, यह सुनकर सभी देवता सन्तुष्ट होकर अपने-अपने घरों को चले गये।

देवताओं के बिदा होने के उपरान्त विष्णु ने माया करके शिवपूजन के अनन्तर अपने शरीर से एक मनुष्य को उत्पन्न किया, जो सारा सिर मुड़ाए हुए मैले और अपवित्र वस्त्र पहने, वस्त्र से मुख को ढ़के विष्णु के सामने आ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर कहा— हे देव! मुझे क्या आदेश है। यह सुनकर विष्णु ने कहा— तुम हमारे शरीर से उत्पन्न हो, इसलिये हमारा कार्य पूर्ण करो। सोलह हजार श्लोक से युक्त एक बहुत बड़ा ग्रन्थ उसे प्रदान किया। उस ग्रन्थ में वेदविरुद्ध बातें लिखी थीं, उसमें वेद, पुराण और शास्त्र की बहुत निन्दा लिखी थी, वर्णाश्रम धर्म का निषेध किया गया था, उसमें आँखों से देखी हुई वस्तु के सिवाय परोक्ष या आनुमानिक वस्तु का विश्वास न करने की बातें लिखी थीं। उसमें सब बातें कुमति और संशय को उत्पन्न करने वाले नाना प्रकार के वितण्डावाद से पूर्ण थीं। उसमें पातिव्रत धर्म और देवता वरन् भगवान् शिव की पूजा के लिये भी निषेध किया गया था। उनके वचन के मानने से शौच, तप सब नष्ट हो जा सकते थे। जैसा कि कहा गया है—

मायिन् मायामयं शास्त्रं तत् षोडशसहस्त्रकम्।
श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम्।।
अपभ्रंशमयं शास्त्रं कर्मवादमयं तथा।
रचयेति प्रयत्नेन तद्विस्तारो भविष्यति।।

(शि.पु.,रु.सं.,यु.का.४.१०-११)

ऐसी पुस्तक को उसे देते हुए भगवान् विष्णु ने कहा कि तुम त्रिपुर में जाकर सबको यह पुस्तक पढ़ा दो। वहाँ के निवासी वेद और पुराण के अनुकूल आचरण करते हैं, तुम वहाँ जाकर अपने धर्म का उपदेश करो, जिससे उनका धर्म नष्ट हो जाय और वे शिव की पूजा छोड़ दें। जब तुम अपना कार्य पूर्ण कर लेना, तब अपने शिष्य एवं सेवक समेत मरुस्थल में जाकर स्थित हो जाना, जब तक पृथिवी पर कलियुग का पदार्पण नहीं हो जाता। वहाँ गुप्त रूप से रहकर जब कलियुग का प्रारम्भ हो, तब तुम अपना उपदेश भली-भाँति प्रचारित करना।

इस प्रकार विष्णु की आज्ञा प्राप्त कर उस मुण्डी ने अपने अनेक शिष्य बनाये। पुन: विष्णु ने उससे कहा— अब तुम लोग जाओ और हमारा जो एक अर्हन् नाम है, उसका स्मरण करते रहना, तुमको कभी कुछ भय न होगा। तदनन्तर वह मुण्डी अपने शिष्यों समेत चलकर त्रिपुर में पहुँचा और बहुत माया-जाल करके उन्होंने बहुत से मनुष्यों को अपना शिष्य बना लिया। ऐसा कोई न था, जो मुण्डी के समीप जाकर बिना शिष्य बने अपना धर्म लेकर घर लौटा हो। यहाँ तक कि शाश्वत विष्णु भक्त महर्षि नारद ने भी शिव की लीला से उस मुण्डी का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया; क्योंकि देवताओं का कार्य सम्पन्न करना था। पुन: मुण्डी के शिष्य नारद त्रिपुर के समीप जाकर इस प्रकार मुण्डी की प्रशंसा की कि त्रिपुर भी मुण्डी के शिष्य हो गये और मुण्डी ने त्रिपुर से यह प्रण करा लिया कि किसी दशा में भी हमारी आज्ञा भङ्ग न की जावे, इस बात के मानने के उपरान्त मुण्डी ने मुख से वस्त्र उठाकर त्रिपुर को शिष्य बनाया और मन्त्र दिया। फिर नाना प्रकार के करणीय और अकरणीय कार्यों का उपदेश प्रदान किया। जब त्रिपुर उस मुण्डी के शिष्य हो गये, तब कोई मनुष्य न रह गया, जो उनका शिष्य न हुआ हो।

त्रिपुर के शिष्य बन जाने के उपरान्त मुण्डी ने कई आज्ञायें त्रिपुर को सुना दीं और कहा कि हमारा मत सभी अन्य मतों से श्रेष्ठ है, क्योंकि इसे नारद ने भी स्वीकार कर लिया है। इस मत का सिद्धान्त है कि यह संसार अनादि है, इसका कोई कर्ता नहीं है, यह सनातन से इसी प्रकार चला आ रहा है, समय पर आप ही प्रकट होता है और इसी तरह समय पाकर अन्तर्धान हो जाता है। ब्रह्मा से लेकर घास मिट्टी तक जितने प्राणीमात्र हैं, मरने के समय सब बराबर हैं। जो अपने शरीर में वर्तमान है, वही जीव ईश्वर है, इसके सिवाय कोई संसार का स्वामी नहीं है। वेद और शास्त्र आदि सब झूठे तथा फलरहित हैं, केवल सब धर्मों से उत्तम धर्म हिंसा का त्याग करना है। अन्यों को दुःख देने से बड़ा कोई पाप नहीं है। चार प्रकार के दान सब दानों से बड़े हैं— पहला रोगी के लिये औषध देना, दूसरा भयभीत को शरण में लेकर निर्भय करना, तीसरे भूखे को भोजन देना और चौथे विद्यार्थी को विद्या पढ़ाना। अच्छी चिकित्सा और औषधों के सेवन से शरीर को आरोग्य रखना चाहिये तथा धन-द्रव्य इकट्ठा कर अपने शरीर का लालन-पालन करना चाहिये।

नरक और स्वर्ग इसी संसार में हैं। जो आनन्द है, वह स्वर्ग है और दुःख नरक है। दूसरे के वश में रहना बन्धन है और इससे छूट जाना ही मुक्ति या मोक्ष है। दुःख से वासना समेत छूट जाना ही परम मोक्ष है। इसी प्रकार की बहुत बातें सुनकर त्रिपुर में वेद के विपरीत आचरण करने वाले सब मनुष्य हो गये और सभी स्त्रियाँ पातिव्रत धर्म छोड़कर स्वतन्त्र और कुमार्गी हो गयीं। जिसने जिसके साथ चाहा, भोग-विलास किया। सब कर्मों से अधिक चेटक ने प्रचार पाया, किसी स्त्री को बाँझ से सन्तानयुक्त कर दिया, किसी स्त्री के पुरुष को जिला दिया, सिद्ध अञ्जन आँखों में दिलवाकर सब चीजें दिखा दी, यहाँ तक कि सिद्धों के देश को प्रकट कर दिखा दिया। इसी प्रकार हर प्रकार की माया और छल फैलाकर सब स्त्री और पुरुष को अपने वश में कर लिया। यहाँ तक कि त्रिपुरासुर से लेकर छोटे मनुष्य तक प्राचीन धर्म छोड़कर अर्हन् के धर्म पर स्थिर हो गये और देवयजन, पितृकर्म भूल ही गये और सब धर्म, तीर्थ, व्रत, यज्ञ और इसी प्रकार जो वैदिक कर्म थे, वे सब छूट गये, केवल यह धर्म रह गया कि सबने रात को भोजन करना बन्द कर दिया।

वे असुर शैव सनातन धर्म से विमुख होकर सर्वथा अनाचारपरायण हो गये। अब वहाँ देवताराधन, श्राद्ध, यज्ञ, व्रत, तीर्थ, शिव-विष्णु-सूर्य-गणेश आदि का पूजन, स्नान, दान आदि सभी शुभ आचरण नष्ट हो गये। शिवेच्छा से भाइयों सहित उस दैत्यराज की तथा मय की भी शक्ति कुण्ठित हो गयी। दैत्यों ने शिवार्चन का भी परित्याग कर दिया। इसके बाद विष्णु एवं ब्रह्मा के साथ सभी देवता कैलास पर जाकर भगवान् शिव की स्तुति करने लगे। वे लोग दीनभाव से अञ्जलि बाँधकर सामने खड़े हो गये। तब सर्वेश्वर भगवान् शिव प्रसन्न होकर वृषभ पर सवार वहीं प्रकट हुए। तत्पश्चात् गम्भीर वाणी में श्रीहरि से बोले— हरे! अब त्रिपुर को नष्ट हुआ ही समझो। मेरे लिए एक दिव्य रथ तैयार करो, जिसमें सम्राट् के योग्य सारा उपकरण प्रस्तुत हो। परमात्मा शिव की यह बात सुनकर सभी देवता परम प्रसन्न हुए और ब्रह्मा तथा विष्णु को तो विशेष आनन्द प्राप्त हुआ।

उस समय विश्वकर्मा ने शिव की आज्ञा के अनुसार विश्व के हित के लिए एक सर्वदेवमय तथा परम शोभन दिव्य रथ का निर्माण किया। वह सर्वसम्मत सर्वभूतमय रथ सुवर्ण का बना हुआ था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में जो कुछ वस्तु थी, वह सब उस रथ में विद्यमान थी। इस प्रकार के महान् दिव्य रथ में, जो अनेकविध आश्चर्यों से युक्त था, वेदरूपी अश्वों को जोत कर ब्रह्मा ने उसे शिव को समर्पित कर दिया। तब महान् ऐश्वर्यशाली सर्वदेवमय शम्भु, सर्वसामग्री से युक्त उस दिव्य रथ पर आरूढ हुए। सारथि के स्थान पर ब्रह्मा को देखकर शम्भु की विशेष शोभा हुई।

लोक की सारी वस्तुओं से कल्पित उस रथ पर शिवजी चढ़ ही रहे थे कि वेदसम्भूत वे घोड़े सिर के बल भूमि पर गिर पड़े। पृथिवी में भूकम्प आ गया। सारे पर्वत डगमगाने लगे। सहसा शेषनाग शिवजी का भार न सह सकने के कारण आतुर हो काँप उठे। नन्दीश्वर ने रथ को उठाने का प्रयास किया, किन्तु वे भी महेश के उत्तम तेज को न सह सके। उन्होंने भी पृथिवी पर घुटने टेक दिये। तदनन्तर महेश द्वारा अधिष्ठित उस रथ पर बैठे हुए ब्रह्माजी ने मन और वायु के समान वेगशाली वेदमय अश्वों को तीनों पुरों को लक्ष्य कर आगे बढ़ाया। तत्पश्चात् भगवान् रुद्र देवों की ओर दृष्टिपात करके कहने लगे— सुरश्रेष्ठों! यदि तुम लोग देवों तथा अन्य प्राणियों के विषय

में पृथक्-पृथक् पशुत्व की कल्पना करके उन पशुओं का आधिपत्य मुझे प्रदान करोगे, तभी मैं उन असुरों का संहार करूँगा, क्योंकि वे दैत्यश्रेष्ठ तभी मारे जा सकते हैं, अन्यथा उनका वध असम्भव है। भगवान् शंकर की यह बात सुनकर सभी देवता, सशंकित हो उठे, उनका मन विवश हो गया। तब उनके भाव को समझ कर देवाधिदेव शम्भु ने कहा— देवश्रेष्ठों! पशुभाव प्राप्त होने पर भी तुम लोगों का पतन नहीं होगा। मैं उस पशुभाव से विमुख होने का उपाय बतलाता हूँ, सुनो और ऐसा ही करो। जो इस दिव्य पाशुपत व्रत का पालन करेगा, वह पशुतत्त्व से मुक्त हो जायेगा। सुरश्रेष्ठों! तुम्हारे अतिरिक्त जो अन्य प्राणी भी मेरे पाशुपतव्रत का पालन करेंगे, वे भी निस्सन्देह पशुत्व से छूट जायेंगे। जो नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए बारह वर्ष तक, छः वर्ष तक अथवा तीन वर्ष तक मेरी सेवा करेगा, अथवा करायेगा वह पशुत्व से विमुक्त हो जायेगा। परमात्मा महेश्वर का वचन सुनकर विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं ने बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा।

इसलिए बड़े बड़े देवता तथा असुर भगवान् शंकर के पशु बने और पशुत्वरूपी पाश से विमुक्त करने वाले रुद्र **पशुपति** हुए। तभी से महेश्वर का **'पशुपति'** यह नाम विश्व में विख्यात हो गया। यह नाम समस्त लोकों में कल्याण प्रदान करने वाला है। उस समय सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि हर्ष से मग्न होकर जय-जयकार करने लगे। तदनन्तर महेश्वर पूर्ण रूप से सुसज्जित होकर त्रिपुर का संहार करने के लिए प्रस्थित हुए। उस अवसर पर देवराज आदि सभी देवताओं ने भी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो उनके साथ प्रस्थान किया। अगणित गणेश्वर भी जो अप्रमेय बलशाली थे, महेश्वर को घेर कर चल रहे थे।

तदनन्तर महादेव शम्भु सम्पूर्ण सामग्रियों सहित उस रथ पर स्थित हो उन सुरद्रोहियों के तीनों पुरों को पूर्णतया दग्ध करने के लिए उद्यत हुए। उन्होंने रथ के शीर्ष-स्थान पर स्थित हो, उस महान् अद्भुत धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और उस पर उत्तम बाण का सन्धान करके वे रोषावेश से होंठ को चाटने लगे। परन्तु उनके अँगूठे के अग्रभाग में स्थित होकर गणेश निरन्तर पीड़ा ही पहुँचाते रहे, जिससे वे तीनों पुर त्रिशूलधारी शंकर का लक्ष्य न बन सके। तब धनुषबाणधारी मुञ्जकेश विरूपाक्ष शंकर ने आकाशवाणी सुनी। उस

व्योमवाणी ने कहा— जगदीश्वर! जब तक आप गणेश की अर्चना नहीं कर लेंगे, तब तक इन तीनों पुरों का संहार नहीं कर सकेंगे। ऐसी आकाशवाणी सुनकर भगवान् शिव ने गजानन का पूजन किया। तब विनायक प्रसन्न हो गये। फिर तो भगवान् शंकर को उन तारकपुत्रों के तीनों नगर यथोक्त रूप से आकाश में स्थित दिखाई पड़ने लगा। उन तीनों पुरों की विशेषता थी कि एक विशिष्ट योग में ही एक साथ होते थे। भगवान् शंकर ही एक अनोखे बाण से तीनों पुरों का भेदन कर सकते थे।

इस प्रकार जब गणाधिप का पूजन कर महादेव स्थित हुए, तब वे तीनों पुर कालवश शीघ्र ही एकता को प्राप्त हो गये। उन तीनों पुरों के परस्पर मिलकर एक हो जाने पर देवताओं को महान् हर्ष हुआ। उस समय ब्रह्मा और जगदीश्वर विष्णु ने कहा— महेश्वर! तारक के पुत्र उन त्रिपुरनिवासी दैत्यों के वध का समय आ गया है। इसलिये ये पुर एकता को प्राप्त हो गये हैं। अतः देवेश! जब तक ये त्रिपुर पुनः विलग न हों, उसके पहले ही आप बाण छोड़कर इन्हें भस्म कर डालिये और देवताओं का कार्य सिद्ध कीजिये।

तदनन्तर भगवान् शिव ने धनुष की डोरी चढ़ाकर उस पर पूज्य पाशुपतास्त्र नामक बाण का सन्धान किया और उसे वे त्रिपुर पर छोड़ने का विचार करने लगे। शंकर जी ने जिस समय अपने अद्भुत धनुष को खींचा था, उस समय अभिजित् मुहूर्त्त चल रहा था। उन्होंने धनुष की टङ्कार तथा दुस्सह सिंहनाद करके अपना नाम घोषित किया और उन महासुरों को ललकार कर करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान उस भीषण बाण को उन पर छोड़ दिया। जिस बाण के नोक पर अग्निदेव प्रतिष्ठित थे और जो विशेष रूप से पाप का विनाशक तथा विष्णुमय था, उस महान् जाज्वल्यमान शीघ्रगामी बाण ने उन त्रिपुरनिवासी दैत्यों को दग्ध कर दिया। तत्पश्चात् वे तीनों पुर भी भस्म हो गये और एक साथ ही चारों समुद्र रूपी मेखला वाली भूमि पर गिर पड़े। उस समय शिवजी की पूजा का अतिक्रमण करने वाले सैकड़ों दैत्य उस बाण स्थित अग्नि से जलकर हाहाकार मचा रहे थे। जब भाइयों सहित तारकाक्ष जलने लगा, तब उसने अपने स्वामी भक्तवत्सल भगवान् शंकर का स्मरण किया और मन-ही-मन महादेव को देखकर परम भक्तिपूर्वक नाना प्रकार से विलाप करता हुआ वह उनसे कहने लगा।

तारकाक्ष बोला— भव! आप हम पर प्रसन्न हैं, यह हमें ज्ञात हो गया। जो देवता और सुरों के लिए अप्राप्य हैं, वह (आपके हाथ से मरणरूप) दुर्लभ लाभ हमें प्राप्त हो गया। अब हमारी बुद्धि आपकी भक्ति से भावित रहे।' इस प्रकार वे दैत्य विलाप कर ही रहे थे कि शिवजी की आज्ञा से उस अग्नि ने उन्हें अद्भुत रीति से जलाकर राख की ढेरी बना दिया। शिव की आज्ञानुसार उन त्रिपुरों में रहने वाले सभी स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध सभी उस अग्नि से उसी प्रकार दग्ध हो गये, जिस प्रकार कल्पान्त में जगत् भस्म हो जाता है। केवल असुरों का विश्वकर्मा अविनाशी मय बच गया, क्योंकि वह देवों का अविरोधी शम्भु के तेज से सुरक्षित और सद्भक्त था। विपत्ति के समय भी वह महेश्वर के शरणागत बना रहता था।

इसलिए सत्पुरुषों को अत्यन्त सम्भावित उत्तम कर्म के लिए प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि निन्दित कर्म करने से प्राणी का विनाश हो जाता है। अतः गर्हित कर्म का आचरण भूलकर भी नहीं करना चाहिये—

तस्माद् यत्नः सुसम्भाव्यः सद्भिः कर्तव्य एव हि।
गर्हणात् क्षीयते लोको न तत्कर्म समाचरेत्।।

(शि.पु., रु.सं., युद्धखण्ड १०.४२)

उस समय भी जो दैत्य बन्धु-बान्धवों सहित शिव जी की पूजा में तत्पर थे, वे सब-के-सब शिवपूजा के प्रभाव से दूसरे जन्म में गणों के अधिपति हो गये (शि.पु., रु.सं., युद्धकाण्ड अ. १-१०)।

जिस समय भगवान् शंकर ने त्रिपुर को भस्म किया, उस समय उनका स्वरूप अत्यन्त भयानक था। लगता था कि अब प्रलय में कुछ विलम्ब नहीं है और उस महातेज के कारण ब्रह्मा, विष्णु आदि कोई उनको आँख भर देख नहीं सकते थे, सभी काँप रहे थे, कोई उनके समीप तक न जा सका। तब ब्रह्मा और विष्णु ने दूर से ही स्तुति की। इसी प्रकार सब देवताओं ने दूर से ही मधुर स्वर से भगवान् शिव की स्तुति की। लोकपाल, सिद्ध, नाग, मुनि और वेदों ने भी भगवान् शिव की स्तुति की। ऐसी बहुत सी स्तुति सुनकर शिव जी प्रसन्न हुए और सबको दया तथा कृपा की दृष्टि से देखा, जिससे सभी लोग शिव को प्रसन्न पाकर उनकी सेवा करने लगे और चारों ओर जय-जयकार होने लगा।

तदनन्तर भगवान् शिव अतिप्रसन्न होकर कहने लगे कि आप लोग हमसे अपनी इच्छा के अनुसार वरदान माँग लें। देवताओं ने कहा कि आपने त्रिपुर को नष्ट कर हमलोगों को बड़ा आनन्द दिया है, आपकी कृपा से हमलोग कृतार्थ हो गये। जब-जब हम पर कोई कष्ट पड़े, तब उसको दूर करने की कृपा किया कीजिये और अपनी भक्ति हमको दीजिये हमको अपना सेवक समझिये। जो कोई अपराध हमसे होता रहे, उसको क्षमा करते रहे। आप हम सबके पिता और रक्षक हैं। भगवान् शंकर ने 'ॐ' कहकर सबको कृतार्थ किया। तब नृत्य और गान का बड़ा उत्सव होने लगा। ऐसे आनन्द के समय में अर्हन् ने अपने चारों शिष्यों समेत आकर भगवान् आशुतोष को प्रणाम किया और सब देवताओं को भी दण्डवत् प्रणाम किया। वे सभी मुण्ड मुड़ाये हुए थे, इसलिये **मुण्डी** कहलाये। हाथ में पात्र धारण करने के कारण **कपाली**, तुण्डवस्त्र को धारण करने के कारण **तुण्डी** तथा वस्त्र के खण्ड के बने हुए मार्जनी को हाथ में लेकर चलने के कारण **मार्जनी**, नाम उनका पड़ गया। मौन रहने के कारण **मौनी** कहलाये। इस तरह उनका नाम कपाली, तुण्डी, मार्जनी और मौनी पड़ गया। इसके अतिरिक्त भी ऋषि, यति, आकीर्य आदि इनके नाम विख्यात हुए। यथा—

ऋषिर्यतिस्तथाकीर्य उपाध्याय इति स्वयम्।
इमान्यपि तु नामानि प्रसिद्धानि भवन्तु वः।।

(शि.पु.,रु.सं.,यु.का., ४.३४)

उसने नम्र होकर भगवान् शिव से कहा कि आपकी आज्ञा से मैंने इस मत का प्रचार बिना सोचे-विचारे किया है, मुझ पर ऐसी कृपा हो कि मुझे ऐसे अनिष्ट कर्म का कोई पाप न लगे और मुझे आज्ञा दीजिये कि अब मैं क्या करूँ? कहाँ और किस स्थान पर स्थित रहूँ तथा सोलह सहस्त्र श्लोकों वाली अपनी पुस्तक को क्या करूँ और मेरे शिष्यों के लिये क्या आज्ञा है?

अर्हन् की इस प्रकार की जिज्ञासा को सुनकर विष्णु ने भगवान् शिव की आज्ञा के अनुसार कहा कि हे अर्हन्! तुम शिष्यों समेत मरुस्थल में जाकर निवास करो और शिव के स्मरण को मत भूलना तथा कलियुग के आने तक अपना मत प्रकट न करना। यह जो घटित हुआ है, वह सब भगवान् पशुपति की आज्ञा के अनुसार हुआ है। तुमको कुछ पाप नहीं लगेगा। जब कलियुग

का आरम्भ हो, तो इधर-उधर अपने मत को फैलना, सब स्त्री-पुरुषों का मन अपने अधीन करना, जिससे सब लोग महापापी हो जायेंगे, क्योंकि कलियुग पापों का भण्डार है। तुम्हारा मत कलियुग में भली-भाँति फले-फूले। सब लोग सन्मार्ग से हट जायेंगे। यह कह कर विष्णु ने चारों शिष्यों समेत अर्हन् को विदा किया—

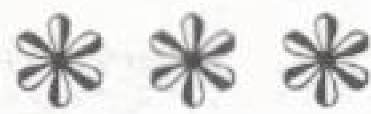
भवद्भिर्मुण्डिनो धीरा गुप्तभावान् ममाज्ञया।
तावन्मरुस्थली सेव्या कलिर्यावत् समाव्रजेत्।।
आगते च कलौ यूयं स्वमतं स्थापयिष्यथ।
कलौ तु मोहिता मूढाः सङ्ग्रहीष्यन्ति वो मतम्।।
इत्याज्ञप्ताः सुरेशैश्च मुण्डिनस्ते मुनीश्वर।
नमस्कृत्य गतास्तत्र यथोद्दिष्टं स्वमाश्रमम्।।

(शि.पु., रु.सं., युद्धकाण्ड, १२.३१-३३)

यहाँ कलियुग को पापों का भण्डार कहा गया है। इस युग में अर्हन् पुनः अपने धर्म के प्रचार-प्रसार में लग गया है। आज आवश्यकता है कि हम अर्हन् की सोलह हजार श्लोकों से युक्त पुस्तक के अनुसार न चलकर भगवान् शिव का कृपापात्र बनने के लिये उनके बतलाये मार्ग का अनुसरण करें, जिससे त्रिपुर जलकर भस्म हो जाय और हम कल्याणमय जीवन व्यतीत करें। आइये, इस त्रिपुरदाह लीला पर थोड़ा विचार किया जाय।

यह जीव ही तारकासुर है और मय को स्वयं ईश्वर स्वीकार करें। ईश्वर की कृपा से 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इस सिद्धान्त के अनुसार जीव पुत्र में स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के रूप में शरीर धारण कर सत्त्व, रज, तम रूप, स्वर्ण, रजत और लौहमय नगर में निवास करता है। जीव जब अर्हन् रूप मन का ही शिष्यत्व स्वीकार कर लेता है, तब वह अपने शिष्य बुद्धि, चित्त और अहङ्कार के साथ सोलह हजार श्लोकों वाले ग्रन्थ का उपदेश देने लगता है। वे सोलह सांख्यशास्त्र के अनुसार विकार माने गये हैं। वे हैं— पञ्च तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), पञ्च ज्ञानेन्द्रिय (श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण), पञ्च कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ) और मन का व्यापार। जब इनका उपदेश ग्रहण किया जाता है, तो जीव अपने मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है और पशुपति की भक्ति को छोड़कर मात्र पशु

बन जाता है। तब भगवान् पाशुपतशास्त्ररूपी पाशुपतास्त्र से इन विकारों को जलाकर भस्म करते हैं। तब पुर सत्त्व, रज, तम का नाश हो जाता है। इस तरह आज इस कलियुग में अर्हन् के मार्ग से बचने के लिये पाशुपतशास्त्र का आश्रयण ही एकमात्र सम्बल है। जिससे मनुष्य की बुद्धि कभी भ्रष्ट नहीं हो सकती है और वह अपने सम्पूर्ण पापों का प्रक्षालन करते हुए अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है।



२१. गङ्गाधारण लीला

भगवान् शंकर ने गंगा के वेग को धारण करने के लिये ही अपने जटामण्डल में समेट लिया था। जैसा कि गंगाधारणलीला की स्तुति में वर्णित है। पुनः राजा भगीरथ अपने पूर्वजों के उद्धार के लिये भगवान् शिव की आराधना कर पृथिवी लोक में लाये। सर्वप्रथम यहाँ गंगा के प्रादुर्भाव का प्रसंग उपस्थित किया जा रहा है।

जब राजा बलि की यज्ञशाला में भगवान् वामन ने दक्षिण पैर से पृथ्वी को नापकर बायाँ पैर ऊपर लोकों की ओर बढ़ाया, तब उनके अंगुष्ठ-नख के आघात से ब्रह्माण्ड का ऊपरी भाग फट गया, जिससे बाहर की चिन्मयी जलधारा ने भीतर प्रविष्ट होकर त्रिविक्रम भगवान् के किञ्जल्करंजित चरण कमल धोये। इसी कारण उस धारा का नाम **विष्णुपदी** पड़ गया। वह धीरे-धीरे बहती पाँच हजार वर्षों में स्वर्ग के शिरोभाग ध्रुवलोक में अवतीर्ण हुई। ध्रुव ने उसे अपने कुलदेवता का चरणोदक जानकर बड़ी श्रद्धा और भक्ति से प्रणाम किया। जिससे ध्रुव आनन्द-विभोर हो उठे, उनके शरीर में रोमाञ्च छा गया तथा नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। वह गद्गद कण्ठ से चिरकाल तक हाथ जोड़कर भगवती गंगा की स्तुति करते रहे। बाद में सप्तर्षियों ने उसे अपनी तपस्या का साक्षात् फल समझ कर अपने जटामण्डल में धारण किया। वह निर्मल जलधारा आकाशमार्ग से नीचे उतर कर चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती हुई सुमेरु के ऊपर ब्रह्मलोक में आ गिरी। वहाँ से वह **सीता, अलकनन्दा, चक्षु** और **भद्रा** इन चार धाराओं में विभक्त होकर चारों दिशाओं के समुद्रों में जा मिली। **सीता** नाम की धारा ब्रह्मलोक से गन्धमादन पर्वत पर आकर भद्राश्वखण्ड के भीतर से होती हुई पूर्व दिशा के क्षार समुद्र में जा मिली। **चक्षु** नाम की धारा माल्यवान् पर्वत से उतर कर केतुमालखण्ड के भीतर से होती हुई पश्चिम दिशा के समुद्र में जा मिली। **भद्रा** नाम की धारा शृंगवान् पर्वत से उतर कर उत्तरकुरुखण्ड के भीतर से होती हुई उत्तर दिशा

के समुद्र में जा मिली। इसी प्रकार **अलकनन्दा** नाम की चौथी धारा ब्रह्मसदन के दक्षिण से हेमकूट पर्वत को लाँघकर भरतखण्ड के भीतर से होती हुई दक्षिण दिशा के समुद्र में जा मिली।

इस धारा में स्नानार्थ आनेवाले प्राणी को पद-पद पर अश्वमेध, राजसूय आदि यज्ञों का फल दुर्लभ नहीं है (भाग., ५/१७ अ.)।

गंगा की मृत्तिका और उसके जल की महिमा

ललाटे या लोकैरिह खलु सलीलं तिलकिता
तमो हन्तुं धत्ते तरुणतरमार्तण्डतुलनाम्।
विलुम्पन्ती सद्यो विधिलिखितदुर्वर्णसरणिं
त्वदीया सा मृत्स्ना मम हरतु कृत्स्नामपि शुचम्।।

लोगों द्वारा तिलक के रूप में धारण की गयी माँ गंगा की मृत्तिका अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करमें में मध्याह्नकालीन प्रखर सूर्य के समान है एवं मस्तक में लिखित ब्रह्मा के दुर्लेखों को शीघ्र मिटाने वाली है, ऐसी आपकी मृत्तिका हमारे शोक-सन्ताप को शीघ्र दूर करे।

यदा यदा यान्ति नरा हि जाह्नवीं
रुदन्ति पापानि वदन्ति चाप्रियम्।
अरे कृतघ्ना नितरां नराधमाः
स्वयं समुत्पाद्य निहन्तुमुद्यताः।।

जिस समय मनुष्य स्नान करने के लिये माता गंगा की ओर चलता है, उस समय उनके शरीर में स्थित पाप रोने लगते हैं और स्नान करने वालों को कोसते हुए कहते हैं— अरे! तुम बड़े कृतघ्न हो, नराधम हो, जो स्वयं हमें उत्पन्न कर हमारे नाश के लिये उद्यत हुए हो।

इदं गाङ्गं त्यजतामिहाङ्गं
पुनर्न चाङ्गं यदि चापि चाङ्गम्।
करे रथाङ्गं शयने भुजङ्गं
याने विहङ्गं चरणेऽम्बु गाङ्गम्।।

गङ्गा जल में यदि किसी प्रकार से शरीर का त्याग हो जाय, तो फिर मनुष्य को शरीर धारण करना नहीं पड़ता। यदि कदाचित् शरीर प्राप्त होगा

भी तो उसके हाथ में चक्र, शयन के लिये शेषनाग की शय्या, चढ़ने के लिये गरुड़ एवं चरण में गंगा जल होगा, अर्थात् वह विष्णु स्वरूप ही हो जायेगा। उनका पार्षद बन जायेगा।

देशरत्न महाकवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र माता गंगा की स्तुति में अपनी मनोभिलाषा व्यक्त करते हुए कहते हैं—

अच्युतचरणतरङ्गिणि शिवशिरमालतिमाल।
हरि न बनायो सुरसरि कीजौ इन्दुवभाल।।

अर्थात् हे सुरसरि! आप तो भगवान् विष्णु के चरण में तरङ्गित होती हैं। परन्तु यदि आप मुझे अपना सायुज्य प्रदान करें, तो मुझे विष्णु न बनाइयेगा, क्योंकि आप मेरे चरणों में आ जायेंगी। इसलिये कृपा कर मुझे चन्द्रमौलि शंकर ही बनाइयेगा, जिससे मैं भी उन्हीं के समान अपने सिर पर सदा आपको धारण करता रहूँ।

एक समय विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा ली, जिसमें हरिश्चन्द्र स्त्री-पुत्र सहित बिक गये, किन्तु उन्होंने सत्य नहीं छोड़ा। राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित थे। रोहित के पुत्र हरित हुए, जिनके वंश में राजा बाहुक का जन्म हुआ। बाहुक का राज्य शत्रुओं ने छीन लिया था। बाहुक अपनी रानियों सहित वन में चले गये और वार्धक्य के कारण वहीं उनका शरीरान्त हो गया। उनकी बड़ी रानी सती होना चाहती थी, किन्तु और्वऋषि ने उसे गर्भवती जानकर सती होने से रोक दिया।

आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह।
सह तेनैव सञ्जातः सगराख्यो महायश।।

(भाग., ९/८/४)

बड़ी रानी को सौतों ने द्वेषवश भोजन के साथ विष दे दिया था। उस विष के साथ ही बालक का जन्म होने से उसका नाम **सगर** हुआ। सगर चक्रवर्ती राजा हुए। इनकी सुमति और केशिनी नामक दो पटरानियाँ थीं। इन दोनों रानियों ने अपनी सेवा से और्व मुनि को अति प्रसन्न किया। एक दिन मुनि ने अति प्रसन्न होकर कहा कि तुम दोनों की जो इच्छा हो, हमसे माँगो। यह सुन सुमति बोली कि मुझको साठ हजार पुत्र प्रदान करें। लेकिन केशिनी ने कहा कि मैं केवल एक ही पुत्र चाहती हूँ। मुनि ने कहा कि यही

होगा। इसके बाद सुमति से एक तुम्बी प्रकट हुई, जो छोटे-छोटे बीजों से पूर्ण थी। उस तुम्बी को घृत के कुण्ड में डाल दिया, जिससे निर्दोष उत्तम साठ हजार बालक उत्पन्न हुए। जो कपिल मुनि के क्रोध से जलकर भस्म हो गये थे। केशिनी से एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम असमञ्जस था। वह पूर्व जन्म का योगी था, किन्तु सङ्गदोष से योगभ्रष्ट हो गया था। सङ्गनिवृत्ति के लिये ही वह मनुष्यों को उद्विग्न किया करता था, खेलते बालकों को ले जाकर सरयू में डुबा देता था। सगर ने उसे दुश्चरित्र समझ कर देश से निकाल दिया, किन्तु असमञ्जस ने अपने योग बल से उन डुबोये बालकों को पुनः सरयू से निकाल कर दे दिया और स्वयं पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर राज्य से निकल अन्यत्र चला गया। उसके चले जाने पर राजा सगर को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। असमञ्जस के पुत्र अंशुमान् हुए, जो पाञ्चजन्य अंशुमान् नाम से विख्यात हुए।

राजा सगर ने और्व ऋषि के आदेश से निन्यानबे अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण किये। सौवें यज्ञ में इनका अश्व इन्द्र चुरा ले गये। पिता सगर की आज्ञा से सुमति के साठ हजार पुत्र अश्व खोजने निकले। उसकी खोज में उन्होंने चारों ओर से पृथिवी खोद डाली और कपिल मुनि के आश्रम तक जा पहुँचे। उनके द्वारा खोदी गयी पृथिवी से ही **चार सागर** बन गये। कपिलमुनि के आश्रम में अपना यज्ञीय अश्व बँधा देखकर उन्होंने कहा— 'अरे! अश्व का अपहरण करने वाला यह कैसे नेत्र बन्द किये बैठा है। यह बड़ा पापी है, इसे मारो' इस प्रकार कोलाहल करते हुए वे शस्त्र उठाकर ज्यों ही कपिल मुनि को मारने दौड़े, त्यों ही उन्होंने नेत्र खोले। उनकी नेत्रज्वाला से वे साठों हजार सगर-पुत्र तत्काल भस्म की ढेरी हो पृथिवी पर गिर पड़े।

भस्मसादभवन् क्षणात्।

(भाग., ९.८.१२)

इसके बाद असमञ्जस के पुत्र अंशुमान् पितामह सगर की आज्ञा से अश्वमेध के अश्व की खोज में निकला और साठ हजार सगर-पुत्रों द्वारा निर्मित पृथिवी के मार्ग से कपिलाश्रम में जा पहुँचे, जहाँ उनके पितर भस्मीभूत होकर पड़े थे। वहाँ समाधिस्थ कपिल को देखकर अंशुमान् ने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करते हुए कहा—

प्रशान्तमायागुणकर्मलिङ्गमनामरूपं सदसद्विमुक्तम्।
ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम्।।

(भाग., ९.८.२५)

हे भगवन्! आप मायागुणों से परे हैं। आपमें नामरूप की कल्पना मिथ्या है। ज्ञानोपदेश के लिये ही आपने यह दिव्य विग्रह धारण किया है। मैं पुराणपुरुष आपको प्रणाम करता हूँ। इस पर भगवान् कपिल अंशुमान् से बोले— वत्स! तुम्हारे अश्वमेध का घोड़ा यह है, इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे पितर भस्म हो गये हैं। उनके उद्धारार्थ तुम भगवती गंगा को लाने का प्रयत्न करो; क्योंकि ब्राह्मण की अवज्ञा से मारे गये लोगों के उद्धार के लिये धर्मशास्त्रों में गंगाजल के अतिरिक्त अन्य कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है—

ब्रह्मावज्ञाहतानां च शुद्धिर्नेह कथञ्चन।
विना गङ्गाम्भसो राजन् प्रायश्चित्तशतैरपि।।

तदनन्तर अंशुमान् कपिल मुनि की परिक्रमा कर अश्व के साथ लौट आये। सगर ने उस यज्ञीय पशु से यज्ञ की शेष क्रिया पूर्ण की और अंशुमान् को राज्य देकर और्व ऋषि की कृपा से उत्तम गति को प्राप्त हुए।

अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया।
कालं महान्तं नाशक्नोत्ततः कालेन संस्थितः।।

(भाग., ९.९.१)

अंशुमान् ने गंगा को पृथिवी पर लाने के लिये बहुत काल तक तपस्या की। किन्तु भगवती गंगा को ला न सके और तप करते-करते ही परलोक को प्रस्थान कर गये। उनके पुत्र दिलीप हुए। वे भी गंगा को पृथिवी पर लाने में समर्थ नहीं हुए और तप करते-करते उनका भी शरीरान्त हो गया। दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए, जिन्होंने 'गोकर्ण-तीर्थ' में गंगा को पृथिवी पर लाने के लिये एक पैर से खड़े होकर अन्न-जल का त्यागकर एक हजार वर्ष तक कठिन तपस्या के उपरान्त ब्रह्मा को प्रसन्न किया। वे प्रसन्न होकर वर देने के लिये देवताओं को साथ लेकर महात्मा भगीरथ के समीप आये और उनसे वर माँगने के लिये कहने लगे।

भगीरथ ने हाथ जोड़कर कहा— 'भगवन्! मेरे पूर्वज इस समय न जाने किस दशा में पड़े हैं, उनका उद्धार करना मेरा परम कर्तव्य है। हे देव! आप ऐसा प्रयत्न कीजिये कि भगवती गंगा इस भूलोक में आकर अपने पावन जल से मेरे पूर्वजों का उद्धार करें।'

तदनन्तर ब्रह्माजी ने कहा— महाभाग! मैं गंगा को तो भूलोक में भेज दूँगा, परन्तु उनके प्रवाह को रोकने की शक्ति पृथ्वी में नहीं है। इसके लिये दयासिन्धु भगवान् शिव जबतक कृपा नहीं करेंगे, तबतक कार्य सिद्ध नहीं होगा। वे ही गंगा के प्रवाह के वेग को रोक सकते हैं। इसलिये हे भगीरथ! तुम उनकी आराधना करो।

ब्रह्मा जी के उपदेश के अनुसार महात्मा भगीरथ ने भगवान् शिव की आराधना प्रारम्भ कर दी। वे अन्न-जल का परित्याग कर पैर के एक अंगूठे पर खड़े होकर एक वर्ष तक भगवान् शंकर का ध्यान करते रहे। उनकी अनन्य शरणागति से प्रसन्न होकर भगवान् उमापति प्रकट हुए और कहने लगे— नरश्रेष्ठ! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ और तुम्हारी कामनापूर्ति करने के लिये आया हूँ। मैं गिरिराजकुमारी गंगादेवी को अपने मस्तक पर धारण कर तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा—

प्रीतस्तेऽहं नरश्रेष्ठ करिष्यामि तव प्रियम्।
शिरसा धारयिष्यामि शैलराजसुतामहम्।।

(वा.रा., बाल. ४३.३)

भगवती गंगा को अपने वेग का बड़ा गर्व था। इससे उन्होंने शिवजी को बहाते हुए पाताल में प्रवेश कर जाने का निश्चय किया और विशाल रूप धारण कर बड़े दुःसह वेग से भगवान् शिव के मस्तक पर गिरीं।

भगवान् शिव को उनके अभिमान का पता लग गया। इसलिये उन्होंने गंगा जी को अपने जटाजूट में बाँध रखने का निश्चय कर लिया। गंगा जी पूरे वेग से शिव की जटा पर गिरीं और उसी में समा गयीं। उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया कि किसी प्रकार पृथ्वी पर उतर जायें, परन्तु किसी भी तरह भगवान् शिव के जटा-मण्डल से नहीं निकल सकीं। वहीं पर वे कई वर्षों तक चक्कर लगाती रहीं।

मनस्वी भगीरथ को इस बात का बड़ा दु:ख हुआ और वे पुन: भगवान् शिव की आराधना करने लगे। भगवान् शिव ने भगीरथ की प्रार्थना पर गंगाजी को अपनी जटा से मुक्त कर दिया। उस समय गंगा की सात धाराएँ हो गयीं। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी नाम की गंगा की मंगलमयी तीन धाराएँ पूर्व दिशा की ओर बह पड़ीं। सुचक्षु, सीता और सिन्धु नाम की तीन धाराएँ पश्चिम दिशा को प्रवाहित हुईं और सातवीं धारा के रूप में पतितपावनी भगवती गंगा महाराज भगीरथ के पीछे-पीछे उनका अनुसरण कर रही थीं। भगीरथ के पथ का अनुसरण करने के कारण उनका नाम **भागीरथी** पड़ा।

अनेक देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध आदि इस अद्भुत दृश्य को देखकर मुग्ध हो गये। देवता लोक भी आकर इस गंगावतरण के दृश्य को देखने लगे। भूतलवासी ऋषिगण उस जल को शिव जी के अङ्ग से निकलते देखकर बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उसका स्पर्श कर परमानन्द को प्राप्त हुए। गंगा की वह धारा भूलोक के प्राणियों का उद्धार करती हुई रसातल तक चली गयीं और वहाँ पहुँच कर उसने भगीरथ के भस्मीभूत पितरों का उद्धार किया। यह सब विलक्षण कार्य महाराज भगीरथ की शिव-भक्ति का ही परिणाम था। (वा.रा., बा., ४३.४३)।

इस प्रकार भगवान् शंकर ने भगवती गंगा का गर्वापहरण कर अपने मस्तक में धारण कर उनको सम्मान भी प्रदान किया। यह है भगवान् आशुतोष की गंगाधारण-लीला। इसके स्मरण-मनन से सभी मलीमस दूर होते हैं। ऐसे गर्वापहारी भगवान् आशुतोष को शतश: नमन है—

गङ्गातरङ्गरमणीयजटाकलापं
गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम् ।
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्।।



२२. अन्धकासुरवध लीला

पूर्वकाल की बात है, एक समय भक्तों पर कृपा करने वाले तथा देवताओं के चक्रवर्ती भगवान् शंकर को विहार करने की इच्छा हुई। तब वे पार्वती और गणेश को साथ ले अपने निवास स्थान कैलास पर्वत से चलकर काशीपुरी में आये। उन्होंने पुरी को अपनी राजधानी बनाया और भैरव नामक वीर को उसका रक्षक नियुक्त किया। फिर पार्वती के साथ रहते हुए वे भक्त-जनों का सुख देने वाली अनेक प्रकार की लीलाएँ करने लगे।

एक समय अनेकों वीराग्रगण्य गणेश्वरों और शिवा के साथ मन्दराचल पर गये और वहाँ भी तरह-तरह की क्रीडाएँ करने लगे। एक दिन कपर्दी शिव मन्दराचल की पूर्व दिशा में बैठे थे, उसी समय गिरिजा ने नर्मक्रीडावश उनके नेत्र बन्द कर दिये। इस प्रकार जब पार्वती ने कमल की प्रभावाले अपने करकमलों से हर के नेत्र बन्द कर दिये, तब उनके नेत्रों के ढक जाने के कारण वहाँ क्षणभर में ही घोर अन्धकार फैल गया। पार्वती के हाथों का महेश्वर के शरीर से स्पर्श होने के कारण शम्भु के ललाट में स्थित अग्नि से सन्तप्त होकर मद-जल प्रकट हो गया और जल की बहुत-सी बूँदे टपक पड़ी। तदनन्तर उन बूँदों ने एक गर्भ का रूप धारण कर लिया। उससे एक ऐसा जीव प्रकट हुआ, जिसका मुख विकराल था। वह अत्यन्त भयंकर, क्रोधी, कृतघ्न, अन्धा, कुरूप, जटाधारी, काले रंग का, मनुष्य से भिन्न, बेडौल और सुन्दर बालों वाला था। उसके कण्ठ से घोर घर-घर शब्द निकल रहा था। वह कभी गाता, कभी हँसता और कभी रोने लगता था तथा अपने जबड़ों को चाटते हुए नाच रहा था। उस अद्भुत दृश्य वाले जीव के प्रकट होने पर शिव जी मुस्करा कर पार्वती से बोले— प्रिये! मेरे नेत्रों को मूँदकर तुमने ही यह कर्म किया है, फिर तुम उससे भय क्यों कर रही हो? शंकर जी के उस वचन को सुनकर गौरी हँस पड़ी और उनके नेत्रों पर से अपने हाथ हटा लिये। फिर तो वहाँ प्रकाश छा गया। परन्तु उस प्राणी का रूप भयंकर

ही बना रहा और अन्धकार से उत्पन्न होने के कारण उसके नेत्र से दिखाई नहीं दे रहा था।

जब लीला रचने वाली तथा तीनों लोकों की जननी माहेश्वरी ने सृष्टिकर्ता की उस अन्धी सृष्टि के विषय में प्रश्न किया, तब लीलाविहारी भगवान् शंकर ने अपनी प्रिया के उस वचन को सुनकर कुछ मुसुकुराये और इस प्रकार बोले। महेश्वर ने कहा— अम्बिके! सुनो। जब तुमने मेरे नेत्र मूँद लिये थे, उसी समय यह अद्भुत एवं प्रचण्ड पराक्रमी प्राणी मेरे पसीने से प्रकट हुआ। इसका नाम **अन्धक** है। तुम्ही इसको उत्पन्न करने वाली हो, अत: तुम्हें करुणापूर्वक इसकी रक्षा करते रहना चाहिये। अपने स्वामी के ऐसे वचन सुनकर गौरी का हृदय करुणार्द्र हो गया। वे अपनी सखियों सहित अन्धक की अपने पुत्र की भाँति नाना प्रकार के उपायों द्वारा रक्षा करने लगीं।

इसके बाद शिशिर-ऋतु आने पर दैत्य हिरण्याक्ष पुत्र की कामना से वन में आया, क्योंकि उसकी पत्नी ने उसके ज्येष्ठ भाई की सन्तान परम्परा को देखकर उसे सन्तान प्राप्ति के लिए तपस्या करने के लिए प्रेरित किया था। वहाँ वह कश्यपनन्दन हिरण्याक्ष वन का आश्रय ले पुत्र प्राप्ति के लिए घोर तप करने लगा। वह क्रोध आदि दोषों को वश में करके ठूँठ वृक्ष की भाँति निश्चल होकर समाधिस्थ हो गया। तब उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उसे वर प्रदान के लिये भगवान् चन्द्रमौलि उस स्थान पर पहुँच कर दैत्यप्रवर हिरण्याक्ष से बोले— दैत्यराज! अब तुम अपनी इन्द्रियों का विनाश मत करो। तुम अपना मनोरथ प्रकट करो, जिसके लिऐ तपस्या कर रहे हो। मैं वर देने के लिए उपस्थित हूँ। महेश्वर के इस सरस वचन को सुनकर दैत्यराज हिरण्याक्ष ने उनके चरणों में नमस्कार करके, अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की। फिर अञ्जलि बाँधे सिर झुकाकर कहने लगा। हिरण्याक्ष ने कहा— चन्द्रभाल! मेरे उत्तम पराक्रम सम्पन्न तथा दैत्यकुल के अनुकूल कोई पुत्र नहीं है, इसीलिए मैंने इस व्रत का अनुष्ठान किया है। देवेश! मुझे परम बलशाली पुत्र दीजिये।

दैत्यराज के उस वचन को सुनकर कृपालु शंकर प्रसन्न हो गये और उससे बोले— दैत्याधिप! तुम्हारे भाग्य में तुम्हारे वीर्य से उत्पन्न होने वाला पुत्र होना नहीं लिखा है, किन्तु मै तुम्हें एक पुत्र देता हूँ। मेरा एक पुत्र है,

जिसका नाम अन्धक है। वह तुम्हारे ही समान पराक्रमी और अजेय है। तुम सम्पूर्ण दु:खों को त्यागकर उसीका पुत्र के रूप में वरण कर लो और इस प्रकार पुत्र प्राप्त कर लो। यह कहकर गौरी के साथ विराजमान भूतनाथ त्रिपुरारि ने प्रसन्न होकर हिरण्याक्ष को वह पुत्र दे दिया। शिवजी से पुत्र प्राप्त कर वह महामनस्वी दैत्य भी परम प्रसन्न हुआ। इस प्रकार हिरण्याक्ष का पुत्र हुआ **अन्धकासुर**।

एक समय हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप के मारे जाने के बाद हिरण्याक्ष का पुत्र अन्धक अपने चचेरे भाइयों के साथ विहार में संलग्न था। उसी समय कामासक्त मदान्ध उसके भाइयों ने उससे कहा— अरे अन्धे! तुम्हें अब राज्य से क्या प्रयोजन है? हिरण्याक्ष तो मूर्ख था, जो उसने घोर तपस्या कर तुम जैसे कुरूप, बेड़ौल, नेत्रहीन पुत्र को प्राप्त किया। ऐसे तुम राज्य के भागी तो हो नहीं सकते, क्योंकि भला दूसरे से उत्पन्न हुआ पुत्र भी राज्य पाता है? सच पूछो, तो निश्चय ही इस राज्य के भागी हम लोग ही हैं।

भाइयों की यह बात सुनकर अन्धक दीन हो गया। फिर उसने स्वयं ही बुद्धिपूर्वक विचार कर तरह-तरह की बातों से उन्हें शान्त किया और एक दिन रात के समय वह निर्जन वन में चला गया। वहाँ उसने हजारों वर्षों तक घोर तपस्या कर अपने शरीर को सूखा डाला और अन्त में उस शरीर को अग्नि में होम कर देना चाहा। उस समय ब्रह्माजी ने उसे वैसा करने से रोककर कहा— दानव! सारे संसार में जिस दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने की तुम्हारी अभिलाषा हो, उसे तुम मुझसे माँग लो। मैं वर देना चाहता हूँ। पद्मयोनि ब्रह्मा के वचन को सुनकर वह दैत्य दीनता एवं नम्रतापूर्वक कहने लगा— भगवन्! जिन निष्ठुर भाइयों ने मेरा राज्य छीन लिया है, वे सब दैत्य मेरे भृत्य हो जायँ, मुझ अन्धे को दिव्य चक्षु प्राप्त हो जाय, इन्द्र आदि देवता मुझे कर दिया करें और देवता, दैत्य, गन्धर्व, नाग, मनुष्य, दैत्यों के शत्रु नारायण, सर्वमय शंकर तथा अन्यान्य किसी भी प्राणियों से मेरी मृत्यु न हो।

अन्धक के उस अत्यन्त दारुण वचन को सुनकर ब्रह्माजी सशंकित हो उठे और उससे अपने विनाश का कोई दूसरा कारण भी स्वीकार करने के लिये कहा। तब अन्धक ने कहा— प्रभो! तीनों कालों में जो उत्तम, मध्यम

और नीच नारियाँ होती हैं, उन्हीं नारियों में कोई रत्नभूता नारी मेरी भी जननी होगी। वह मनुष्यलोक के लिए दुर्लभ तथा शरीर, मन और वचन से भी अगम्य है। उसमें राक्षस-भाव के कारण जब मेरी कामभावना उत्पन्न हो जाय, तब मेरा नाश हो। उसकी बात सुनकर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा को महान् आश्चर्य हुआ। वे शंकर जी के चरणकमलों का स्मरण करते हुए उससे बोले— दैत्यवर! तुम जो कुछ चाहते हो, तुम्हारे वे सभी सकाम वचन पूर्ण होंगे। दैत्येन्द्र अब तुम उठो, अपना अभीष्ट प्राप्त करो और सद्वीरों के साथ युद्ध करते रहो। इसके बाद ब्रह्मा जी ने अपने हाथ से उसके शरीर का स्पर्श किया, जिससे उसका शरीर पूर्णतः स्वस्थ और मांसल बन गया; क्योंकि अन्धक के शरीर में केवल नसें और हड्डियाँ ही शेष रह गयी थीं।

ब्रह्मा जी के अपने धाम चले जाने के बाद अन्धक ने प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर में प्रवेश किया। उस समय प्रह्लाद आदि श्रेष्ठ दानवों ने जब उसे वरदान प्राप्त करके आया हुआ जाना, तब वे सारा राज्य उसे समर्पित करके उसके वशवर्ती भृत्य बन गये। तदनन्तर अन्धक सेना और भृत्यवर्ग को साथ ले स्वर्ग को जीतने के लिए गया। वहाँ संग्राम में समस्त देवताओं को पराजित कर उसने वज्रधारी इन्द्र को अपना करद बना लिया। उसने यत्र-तत्र बहुत सी लड़ाइयाँ लड़कर चराचर त्रिलोकी को अपने वश में कर लिया। हजारों सुन्दर रूप वाली नारियों को साथ लेकर विभिन्न पर्वतों तथा नदियों के रमणीय तटों पर विहार करने लगा। दैत्यराज अन्धक सदा दुष्टों का ही सङ्ग करता था। उसकी बुद्धि मद से अन्धी हो गयी थी, जिससे उस मूढ को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया कि परलोक के आत्मा को सुख देने वाला भी कोई कर्म है। इस प्रकार वह दैत्य उन्मत्त होकर अपने सारे प्रधान-प्रधान पुत्रों को कुतर्कवाद से पराजित करके दैत्यों सहित सम्पूर्ण वैदिक धर्मों का विनाश करता हुआ विचरण करने लगा। प्रारब्धवश उसकी आयु समाप्त हो चुकी थी, इसीसे वह स्वेच्छाचार में प्रवृत्त हो व्यर्थ में अपने आयु के शेष दिन गँवाता हुआ रमण कर रहा था।

दानवश्रेष्ठ अन्धक के तीन मन्त्री थे, जिनका नाम था— दुर्योधन, वैधस और हस्ती। एक समय उन तीनों ने उस पर्वत के किसी रमणीय स्थान पर एक परम रूपवती नारी को देखा। उसे देखकर वे दैत्य हर्षमग्न हो शीघ्र आकर महादैत्याधिपति अन्धक से उस देखी हुई घटना का वर्णन करने लगे।

मन्त्रियों ने कहा— दैत्येन्द्र! यहाँ एक गुफा के भीतर हमने एक मुनि को देखा है। ध्यानस्थ होने के कारण उसके नेत्र बन्द हैं। वह बड़ा रूपवान् है। उसके मस्तक पर अर्धचन्द्र की कला अपनी छटा बिखेर रही है। उसके सारे सम्पूर्ण शरीर में बड़े-बड़े नाग लिपटे हुए हैं। उसके हाथ में त्रिशूल है तथा एक विशाल धनुष बाण और तूणीर भी वह धारण किये हुए है। उसके शरीर पर भस्म अनुलेप लगा हुआ है। उससे थोड़ी दूर पर हमने एक और पुरुष को देखा, जो विकराल वानर सा है। उसका मुख बड़ा भयंकर है। वह अनेक आयुध धारण कर उस तपस्वी की रक्षा में तत्पर है। उसके पास ही एक बूढ़ा सफेद रंग का बैल भी बैठा है। उस बैठे हुए तपस्वी के पार्श्वभाग में हमने एक शुभलक्षणसम्पन्न नारी को भी देखा है। वह तीनों लोकों में रत्नस्वरूपा है। उसका रूप बड़ा मनोरम है और तरुणी होने के नाते वह मन को मोह लेती है। कहाँ तक कहें। वह इतनी सुन्दरी है कि जिसने उसे एक बार देख लिया, उसीका नेत्र धारण करना सफल है। दैत्येन्द्र! आप तो उत्तमोत्तम रत्नों का उपभोग करने वाले हैं। अत: उसे आप यहाँ बुलवा कर देखिये। वह आपके देखने योग्य है।

मन्त्रियों की उन बातों को सुनकर दैत्यराज अन्धक कामातुर हो उठा। उसके सारे शरीर में कम्प छा गया। फिर तो वह तुरन्त ही दुर्योधन आदि को उस मुनि के पास भेजा। मन्त्रियों ने वहाँ जाकर मुनीश्वर को प्रणाम कर उनसे अन्धकासुर का सन्देश कहा तथा बदले में शिवजी का उत्तर सुनकर वे लौटकर अन्धक से बोले— उस तपस्वी मुनि ने अपनी बुद्धि से त्रिलोकी को तृण के समान समझ कर हँसते हुए आपके लिये ऐसी बातें कही है— उस निशाचर का शौर्य और धैर्य अस्थिर है। वह दानव कृतघ्न और सदा ही पाप करने वाला है। क्या उसे सूर्यपुत्र यम का भय नहीं है? यदि तुझमें कोई सामर्थ्य है, तो युद्ध के लिये तैयार हो जाओ और आकर कुछ अपनी करतूत दिखलाओ। मेरे पास तुम जैसे पापियों का विनाश करने वाला भयंकर शस्त्र है, उसके सामने तुम्हारा शरीर तो कमल के समान कोमल है। ऐसी दशा में विचार करके तुझे जो रुचिकर प्रतीत हो, वह करो।

मन्त्रियों के द्वारा शंकर की बात सुनकर माता पार्वती पर मोहित हुआ वह कामान्ध राक्षस विशाल सेना लेकर वहाँ पहुँचकर नन्दीश्वर से युद्ध करने

लगा। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उस समय थोड़ी ही देर में युद्धस्थल से दैत्य भाग खड़े हुए। तब भगवान् शंकर दक्षकन्या सती को धीरज बँधाते हुए कहा— अब मैं पुन: किसी निर्जन वन में जाकर उस परम अद्भुत दिव्य पाशुपत व्रत का अनुष्ठान करूँगा। सुन्दरि! तुम्हारा शोक और भय दूर हो जाना चाहिये। इतना कहकर उग्र प्रभावशाली शंकर धीरे से अपना सिंगा बजाकर एक अत्यन्त भयंकर पावन गुफा में चले गये। वहाँ वे एक हजार वर्षों के लिए पाशुपत-व्रत के अनुष्ठान में तत्पर हो गये। इस पर शीलगुण से सम्पन्न पतिव्रता देवी पार्वती मन्दराचल पर ही रह कर शिवजी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगीं। पुत्रस्थानीय वीरकगण उनकी सुरक्षा में तत्पर थे।

इसी बीच वरदान के प्रभाव से उन्मत्त वह दैत्य अन्धक, जिसका धैर्य कामदेव के बाणों से छिन्न-भिन्न हो गया था, अपने मुख्य-मुख्य योद्धाओं को साथ ले पुन: उस गुफा पर चढ़ आया। वहाँ सैनिकों सहित उसने वीरकगण के साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध किया। वह युद्ध लगातार पाँच सौ पाँच दिन-रात दिन चलता रहा। अन्त में वीरकगण के परास्त हो जाने पर पार्वती ने ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों का स्मरण किया। उस युद्ध में भगवान् शंकर भी आ गये। अनेकविध युद्ध हुआ। भगवान् शंकर ने त्रिशूल भोंककर उसे स्थाणु के समान ऊपर को उठा दिया। उसका जर्जर शरीर नीचे की ओर लटक रहा था। फिर भी उस दैत्यराज ने अपने प्राणों का परित्याग नहीं किया। तब करुणा के सागर शंकर प्रसन्न होकर उसे प्रेमपूर्वक गणाध्यक्ष का पद प्रदान कर दिया। स्वयं गिरिराजकुमारी पार्वती के साथ उत्तमोत्तम लीलायें करने लगे।

युद्ध के समय जब त्रिपुरारि शंकर ने अपने त्रिशूल से अन्धक के शरीर को बुरी तरह छेद डाला, तब भूतल पर गिरे हुए उसके रक्तकणों से यूथ के यूथ अनेक राक्षस प्रकट हो रहे थे। उस समय भगवान् विष्णु ने योगबल से एक विकराल, विकृतमुख स्त्री का रूप धारण कर लिया। वह स्त्रीरूप शम्भु के कान से निकला था। भगवान् से प्रेरित होकर वे देवी क्षुधार्त होकर रण के मुहाने पर उन सैनिकों तथा दैत्यराज के शरीर से निकले हुए अत्यन्त गरम-गरम रुधिर का पान करने लगीं, जिससे राक्षसों का उत्पन्न होना बन्द हो गया। जब अन्धक के साथ रोमांचकारी संग्राम चल रहा था, उस समय त्रिपुरारि शंकर दैत्यगुरु, विद्वान् शुक्राचार्य को भी निगल गये थे; क्योंकि वे

संजीवनी विद्या के द्वारा युद्ध में मरे हुए दैत्यों को जीवित कर देते थे। भृगुनन्दन भगवान् शंकर के विश्वरूप उदर में सौ वर्षों तक निकलने का मार्ग ढूँढते रहे। वहीं उन्होंने शैवयोग का आश्रय ले एक मन्त्र का जप किया। तब उस मन्त्र के प्रभाव से शम्भु के जठरपञ्जर से शुक्ररूप में लिङ्ग-मार्ग से प्रकट हुए। गौरी ने उन्हें पुत्ररूप में स्वीकार किया। भगवान् महेश्वर ने कहा— भृगुनन्दन! चूँकि तुम मेरे लिङ्गमार्ग से शुक्र की तरह निकले हो, इसलिये अब तुम **शुक्र** कहलाओगे। जाओ, अब तुम मेरे पुत्र हो गये।

इसके बाद शुक्र ने शिवजी की स्तुति कर उन्हें नमस्कार किया और उनकी आज्ञा से पुन: दानवों की सेना में प्रविष्ट हुए, तब तक तीन हजार वर्ष व्यतीत हो चुके थे। उस समय उन्होंने धैर्यशाली एवं तपस्वी दानवराज अन्धक को देखा। उसका शरीर सूख गया था और वह त्रिशूल पर लटका हुआ परमेश्वर शिव का ध्यान कर रहा था। वह शिव का स्मरण कर रहा था।

यहाँ पाठकों के लाभार्थ वह शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र विनियोग आदि के साथ मूल रूप में दिया जा रहा है, न्यासध्यानपूर्वक इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करना चाहिये। इस स्तोत्र का पाठ करने से मनुष्य भवबन्धन से मुक्त हो जाता है। इस मन्त्र का जप दैत्याचार्य शुक्र ने भगवान् शिव के उदर में किया था।

विनियोग:— **ॐ अस्य श्रीशिवाष्टोत्तरशतदिव्यनामामृतस्तोत्रमालामन्त्रस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्रीसदाशिवपरमात्मा देवता श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थं जपे विनयोगः।**

न्यास:— **शिवसङ्कल्प इति हृदयम्। पुरुषसूक्तमिति शिरः। उत्तरनारायणेति शिखा। अप्रतिरथेति कवचम्। ॐ विभ्राडिति नेत्रम्। शतरुद्रियमित्यस्त्रम्। आत्मानं रुद्ररूपं ध्यायेत्।** इन सूक्तों का पाठ करते हुए न्यास करे।

ध्यानम्

धवलवपुषमिन्दोर्मण्डले सन्निविष्टं
भुजगवलयहारं भस्मदिव्याङ्गमीशम्।
हरिणपरशुपाणिं चारुचन्द्रार्धमौलिं
हृदयकमलमध्ये सन्ततं चिन्तयामि।।

चन्द्रमा के प्रभामण्डल में विराजमान भगवान् शिव का गौर शरीर है, सर्प का ही कङ्कन तथा सर्प का ही हार पहने हुए हैं तथा शरीर में भस्म लगाये हुए हैं, उनके हाथों में मृगी-मुद्रा एवं परशु है और अर्धचन्द्र सिर पर विराजमान है, मैं उन भगवान् शिव का हृदय में अहर्निश चिन्तन करता हूँ।

मन्त्रः

ॐ नमस्ते देवेशाय, सुरासुरनमस्कृताय, भूतभव्यमहादेवाय, हरितपिङ्गललोचनाय, बलाय, बुद्धिरूपिणे, वैयाघ्रवसनच्छदाय, आरणेयाय, त्रैलोक्यप्रभवे, ईश्वराय, हराय, हरिनेत्राय, युगान्तकरणाय, आनलाय, गणेशाय, लोकपालाय, महाभुजाय, महाहस्ताय, शूलिने, महाद्रंष्ट्रिणे, महोदराय, गणाध्यक्षाय, सर्वात्मने, सर्वभावनाय, सर्वगाय, मृत्युहन्त्रे, पारियात्रसुव्रताय, ब्रह्मचारिणे, वेदान्तगाय, तपोन्तगाय, पशुपतये, व्यङ्गाय, शूलपाणये, वृषकेतवे, हरये, जटिने, शिखण्डिने, लकुटिने महायशसे, भूतेश्वराय, गुहावासिने, वीणापणवतालवते, अमराय, दर्शनीयाय, बालसूर्यनिभाय, श्मशानवासिने, भगवते, उमापतये, अरिन्दमाय, भगस्याक्षिपातिने, पूष्णो दशननाशनाय, क्रूरकर्तनाय, पाशहस्ताय, प्रलयकालाय, उल्कामुखाय, अग्निकेतवे, मुनये, दीप्ताय, विशांपतये, उन्नतये, जनकाय, चतुर्थकाय, लोकसत्तमाय, वामदेवाय, वाग्दाक्षिण्याय, वामतोभिक्षवे, भिक्षुरूपिणे, जटिने, स्वयंजटिलाय, शक्रहस्तप्रतिस्तम्भकाय, वसूनां स्तम्भकाय, क्रतवे, क्रतुकराय, कालाय, मेधाविने, मधुराय, चलाय, वानस्पत्याय, वाजसनेतिसमाश्रमपूजिताय, जगद्धात्रे, जगत्कर्त्रे, पुरुषाय, शाश्वताय, ध्रुवाय, धर्माध्यक्षाय, त्रिवर्त्मने, भूतभावनाय, त्रिनेत्राय, बहुरूपाय, सूर्यायुतसमप्रभाय, देवाय, सर्वसूर्यनिनादिने, सर्वबाधाविमोचनाय, बन्धनाय, सर्वहारिणे, धर्मोत्तमाय, पुष्पदन्तायापि भागाय, मुखाय, सर्वहराय, हिरण्यश्रवसे, द्वारिणे, भीमाय, भीमपराक्रमाय, ॐ नमो नमः॥

स्तोत्र

सनत्कुमार उवाच—

इमं मन्त्रवरं जप्त्वा शुक्रो जठरपञ्जरात्।
निष्क्रान्तो लिङ्गमार्गेण शम्भोः शुक्रमिवोत्कटम्।।

गौर्या गृहीतः पुत्रार्थं विश्वेशेन ततः कृतः।
अजरश्चामरः श्रीमान् द्वितीय इव शङ्करः।।

त्रिभिर्वर्षसहस्रैस्तु समतीतैर्महीतले।
महेश्वरात्पुनर्जातः शुक्रो वेदनिधिर्मुनिः।।

ददर्श शूले संशुष्कं ध्यायन्तं परमेश्वरम्।
अन्धकं धैर्यसम्पन्नं दानवेशं तपस्विनम्।।

महादेवं विरूपाक्षं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम्।
अमृतं शाश्वतं स्थाणुं नीलकण्ठं पिनाकिनम्।।

वृषभाक्षं महाज्ञेयं पुरुषं सर्वकामदम्।
कामारिं कामदहनं कामरूपं कपर्दिनम्।।

विरूपं गिरिशं भीमं सृक्किणं रक्तवाससम्।
योगिनं कालदहनं त्रिपुरघ्नं कपालिनम्।।

गूढव्रतं गुप्तमन्त्रं गम्भीरं भावगोचरम्।
अणिमादिगुणाधारं त्रिलोकैश्वर्यदायकम्।।

वीरं वीरहणं घोरं विरूपं मांसलं पटुम्।
महामांसादमुन्मत्तं भैरवं वै महेश्वरम्।।

त्रैलोक्यद्रावणं लुब्धं लुब्धकं यज्ञसूदनम्।
कृत्तिकानां सुतैर्युक्तमुन्मत्तं कृत्तिवाससम्।।

गजकृत्तिपरीधानं क्षुब्धं भुजङ्गभूषणम्।
दत्तालम्बं च वेतालं वीरं शाकिनिपूजितम्।।

अघोरं घोरदैत्यघ्नं घोरघोषं वनस्पतिम्।
भस्माङ्गं जटिलं शुद्धं भेरुण्डशतसेवितम्।।

भूतेश्वरं भूतनाथं पञ्चभूताश्रितं खगम्।
क्रोधितं निष्ठुरं चण्डं चण्डीशं चण्डिकाप्रियम्।।

चण्डं तुङ्गं गरुत्मन्तं नित्यमासवभोजनम्।
रागं विरागं रागाङ्गं वीतरागशताचितम्।।

सत्त्वं रजस्तमो धर्ममधर्मं वासवानुजम्।
सत्यं त्वसत्यं सद्रूपमसद्रूपमहेतुकम्।।

अर्द्धनारीश्वरं भानुं भानुकोटिशतप्रभम्।
यज्ञं यज्ञपतिं रुद्रमीशानं वरदं शिवम्।।

अष्टोत्तरशतं ह्येतन्मूर्तीनां परमात्मनः।
शिवस्य दानवो ध्यायन्मुक्तस्तस्मान्महाभयात्।।

दिव्येनामृतवर्षेण सोऽभिषिक्तः कपर्दिना।
तुष्टेन मोचितं तस्माच्छूलाग्रादवरोपितः।।

उक्तश्चाथ महादैत्यो महेशानेन सोऽन्धकः।
असुरः सान्त्वयन् पूर्वं यत्कृतं सर्वं महात्मना।।

ईश्वर उवाच

भो भो दैत्येन्द्र तुष्टोऽस्मि यमेन नियमेन च।
शौर्येण तव धैर्येण वरं वरय सुव्रत।।

आराधितस्त्वया नित्यं सर्वनिर्धूतकल्मषः।
वरदोऽहं वरार्हस्त्वं महादैत्येन्द्रसत्तम।।

प्राणसन्धारणादस्ति यच्च पुण्यफलं तव।
त्रिभिर्वर्षसहस्रैस्तु तेनास्तु तव निर्वृत्तिः।।

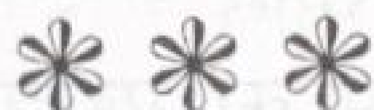
।। इति श्री शिवमहापुराणे रुद्रसंहितायां युद्धकाण्डे एकोनचत्वारिंशदध्याये शुक्रान्धकयोः कृतं शिवाष्टोत्तरशतनाममन्त्रस्तोत्रं सम्पूर्णम्।।

इस प्रकार भगवान् शिव का १०८ नाम वाला यह मन्त्र एवं स्तोत्र वेद के तुल्य है। श्रीविष्णु ने पहले इष्ट-सिद्धि हेतु माता पार्वती को बतलाया था। शंकरप्रिया भगवती गौरी ने भगवान् पद्मनाभ की प्रेरणा से एक वर्ष तक प्रतिदिन त्रिकाल इसका जप किया। त्रिशूलधारी की कृपा से उन्होंने उनका शरीरार्ध प्राप्त किया। शतरुद्रियाध्याय के तीन बार पाठ करने से जो फल मनुष्य को होता है, वह फल उसे अन्धक कृत इस स्तोत्र के एक बार पाठ करने से प्राप्त हो जाता है। बिल्वपत्र अथवा फूल और तुलसीदल से या तिल तथा अक्षत से जो महादेव जी का यजन करते हैं, वे जीवन्मुक्त हो जानते हैं, इसमें सन्देह नहीं। भगवान् शंकर के इन शतनामों में से केवल एक नाम भी मोक्ष देने वाला है, शतनाम का महत्त्व तो वर्णनातीत है।

इस मन्त्र के जप से प्रसन्न हुए जटाधारी शंकर ने उसे मुक्त करके उस त्रिशूल के अग्रभाग से उतार दिया और दिव्य अमृत की वर्षा से अभिषिक्त कर सान्त्वना बँधाते हुए महादैत्य अन्धक से बोले— दैत्येन्द्र! मैं तुम्हारे इन्द्रियनिग्रह, नियम, शौर्य और धैर्य से प्रसन्न हो गया हूँ, अत: सुव्रत! अब तुम वर माँग लो। यह सुनकर अन्धक भूमि पर घुटने टेककर साष्टांग प्रणाम करके हाथ जोड़कर काँपता हुआ भगवान् उमापति से बोला— भगवन्! आपकी महिमा जाने बिना मैंने पहले रणाङ्गण में आपको जो हीन, दीन तथा नीच से नीच वचन कहा है, उन सबको आप अपने मन में स्थान न दें। मैंने कामदोषवश पार्वती के विषय में भी जो दूषित भावना कर ली थी, उसे भी आप क्षमा कर दें। चन्द्रशेखर! अब आप मेरी रक्षा करें। ये जगज्जननी पार्वती देवी भी मुझ पर प्रसन्न हो जायँ और सारे क्रोध को त्यागकर मुझे कृपादृष्टि से देखें। मैं नित्य आप दोनों का भक्त बना रहूँ। देवताओं के साथ होने वाला मेरा वैर दूर हो जाय तथा मैं शान्तचित्त हो योग-चिन्तन करता हुआ गणों के साथ निवास करूँ। महेशान! आपकी कृपा से मैं उत्पन्न हुए इस विरोधी दानवभाव का पुन: कभी स्मरण न करूँ, यही उत्तम वर मुझे प्रदान कीजिये।

इतनी बात कह कर दैत्यराज माता पार्वती की ओर देखकर त्रिनयन शंकर का ध्यान करता हुआ मौन हो गया। तब रुद्र ने उसकी ओर कृपापूर्वक दृष्टि से देखा। उनकी दृष्टि पड़ते ही उसे अपने पूर्व वृत्तान्त तथा अद्भुत जन्म का स्मरण हो आया। उस घटना का स्मरण होते ही उसका मनोरथ पूर्ण हो गया। फिर माता-पिता (उमा-महेश्वर) को प्रणाम करके वह कृत-कृत्य हो गया। उस समय पार्वती तथा बुद्धिमान् शंकर ने उसका मस्तक सूँघकर प्यार किया।

अन्धक ने त्रिशूल पर रहकर जिस अष्टोत्तरशतनाम का जप किया था, वह मृत्युञ्जय-मन्त्र है। यह मन्त्र मृत्यु का विनाशक और सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। इसका प्रयत्नपूर्वक जप करना चाहिये। (शि.पु.,रु.सं., युद्धखण्ड, अ. ४२-४९)।



२३. मृत्युञ्जय लीला

दशारण्यदेश में वज्रबाहु नाम का एक राजा हुआ था। उसकी असंख्य रानियाँ थीं। भाग्यवश बड़ी रानी सुमति को गर्भ रह गया। अन्य स्त्रियों ने ईर्ष्या से उसको विष पिला दिया। यद्यपि उसने अपनी उन सौतों का छल न जाना, परन्तु बहुत कष्ट उठाने के अनन्तर वह अच्छी हो गयी, विष ने अपना कुछ फल न दिया और न उससे गर्भ में कुछ विघ्न हुआ। नियमित समय पर उसके उदर से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिससे उसकी सौतों को और भी अधिक डाह उपजा। विष के कारण उत्पन्न होने पर पुत्र को बड़ी विकलता बनी रही। जिससे वह बराबर रात दिन रोता रहता था। रानी ने भी विष के प्रभाव से बड़े-बड़े दुःख सहन किये। राजा की आज्ञा से बुद्धिमान् वैद्यों ने बहुत उपचार किये, परन्तु कुछ भी फल न हुआ। प्रथमत: रानी विष के प्रभाव से स्वयं विकल थी, दूसरे अपने पुत्र के अधिक रोने के कारण और भी अधिक दुःखी हुई। रात-दिन उसको निद्रा नहीं आती थी। इससे रानी और राजकुमार दोनों बहुत क्षीण हो गये। इस तरह थोड़े दिनों तक दोनों को ऐसे दुःख में पाकर राजा ने विचार किया कि ये दोनों माता और पुत्र पूर्वजन्म के महान् पापी हैं। जिससे दुःख भोग रहे हैं। किसी शुभ कर्म के कारण हमारे यहाँ आगमन हुआ है, परन्तु इनको सुख नहीं मिलेगा। इन्होंने मेरे आहार-विहार में अपने रोने-पीटने से विघ्न डाला है— यह विचार कर राजा ने अपने भीलों को आज्ञा दी कि रानी को उसके पुत्र सहित रथ में बैठाकर वन में छोड़ आवे। भीलों ने राजा की आज्ञा के अनुसार दोनों को अतिनिर्दयता से वन में ले जाकर छोड़ दिया।

भीलों के लौट जाने के बाद रानी सुमति पुत्र के साथ भूखी-प्यासी दुःखी होती हुई कुछ आगे चली। परन्तु कुछ दूर जाकर थक गयी। फिर थोड़ी देर वन में चलकर वह एक पगडण्डी के सहारे आगे बढ़ी, तो उसने बहुत दूर जाकर एक नगर देखा। जहाँ बहुत स्त्री-पुरुष निवास करते थे। वहाँ का

राजा पद्माकर वैश्यवर्ण का था। उसकी दासी रानी सुमति को देखकर दयावश उसके समीप आयी। उसने उससे वृत्तान्त पूछा और सब वृत्तान्त सुनने के अनन्तर अतिप्रेम से उसे राजा पद्माकर के पास ले गयी। राजा पद्माकर उसको रोगिणी और दुःखी जानकर अति चिन्तित हुआ। जब उसने रानी के मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना, तो उस पर अति अनुग्रह कर उसे अपने मुख्य मन्दिर में ठहराया और उसको अपनी माता के समान जानकर उसकी बड़ी सेवा करने लगा। उसको अच्छे-अच्छे भोजन और वस्त्र आदि प्रदान कर सदा प्रसन्न रखता था।

इसके बाद राजा पद्माकर ने रानी सुमति के रोग को दूर करने के लिये सद्वैद्यों को नियुक्त किया। फिर भी लड़के को कुछ आराम न मिला। विष के प्रभाव से उसके शरीर पर जो घाव हो गये थे, उससे उसे महान् कष्ट हो रहा था। कुछ दिन जीकर अन्त में वह कालकवलित हो गया। पुत्र के वियोग में रानी सुमति इतना रोई-पीटी कि वह कई बार मूर्च्छित हो गयी। यद्यपि स्त्रियों ने उसे बहुत समझाया, पर उसे किसी का उपदेश अच्छा न लगा।

रानी को जब होश आता था, तो वह बहुत ही कातर-भाव से भगवान् शंकर से प्रार्थना करती थी। 'हे प्रभो! आप सर्वव्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, दीनदुःखहारी हैं, मैं आपकी शरण आयी हूँ, अब मुझे केवल आपका ही भरोसा है। उसकी इस कातर वाणी को सुनते ही शिवयोगी वहाँ प्रकट हुये और उन्होंने सुमति को मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करने को कहा और अभिमन्त्रित भस्म को उसकी तथा उसके बच्चे की देह में लगा दिया। लगाते ही उसकी सारी व्यथा दूर हो गयी और लड़का भी प्रसन्नमुख जी उठा, जैसे सोकर जगा हो। वह तुरन्त ही दूध के लिये रोने लगा। सब तमाशा देखने वाले आश्चर्यचकित हो गये। रानी भी अतिप्रसन्नता से लड़के को गोद में लेकर अति सुखी हुई। तुरन्त उसने अपना सिर शिवयोगी के चरणों पर रख दिया। शिवयोगी ऋषभ ने अतिदया से लड़के के सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगायी, जिससे उसके रोग और निर्बलता सब दूर हो गयी। पुनः रानी लड़के के साथ योगी के पाँव पड़ी। योगी ने उसको धरती पर से उठाया और प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। पुनः कहा— हे रानी! तुम जरा-मरण से रहित होकर दीर्घ काल तक जीवित रहो। तुम्हारे पुत्र का नाम भद्रायु है। यह अपने पिता का राज्य प्राप्त कर अपने रानियों समेत बड़ा आनन्द प्राप्त करेगा। जब तक यह

बालक विद्या न पढ़ ले, तब तक तुम इसी स्थान पर रहो। ऋषभ ने ऐसा उपदेश देकर वहाँ से प्रस्थान किया। रानी सुमति अपने पुत्र भद्रायु के साथ ऋषभ द्वारा दिये हुए मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करने लगी। इस क्रम से भद्रायु ने सम्पूर्ण विद्याओं को भी प्राप्त कर लिया। जब भद्रायु सोलह वर्ष का हो गया, तो उसके मन्त्र-जप से प्रसन्न हो शिवयोगी प्रकट हुए। उन्होंने उसे शिव-पूजा की विधि का उपदेश दिया। शिवयोगी ने उसके शरीर में मृत्युञ्जय मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म लगा दिया, जिससे भद्रायु को बारह हजार हाथी का बल प्राप्त हो गया। उन्होंने उसे एक खड्ग और शङ्ख प्रदान किया और वहीं वे अन्तर्धान हो गये।

इधर राजा वज्रबाहु को अपनी निर्दोष पत्नी तथा अनाथ बच्चे को कष्ट पहुँचाने का फल मिल गया। उसके राज्य को शत्रुओं ने बलपूर्वक छीन लिया और उसे बन्दीगृह में डाल दिया। शिवयोगी से बहुत आशीर्वाद प्राप्त कर भद्रायु ने अपने पिता की राजधानी में पहुँचकर शत्रुओं को मार भगाया। पैतृक राज्य को अधिकृत कर पिता को बन्दीगृह से छुड़ाया। उसका यश चारों ओर फैल गया। चित्राङ्गद और रानी सीमन्तिनी की बेटी सती साध्वी कीर्तिमालिनी के साथ उसका विवाह हुआ।

राजा भद्रायु ने शिवपूजा करते हुए सहस्रों वर्षतक सुखपूर्वक प्रजा को सुख-शान्ति पहुँचाते हुए राज्य किया और अन्त में शिवसायुज्य को प्राप्त हुआ। इस प्रकार भगवान् शिव ने ऋषभ रूप से राजा भद्रायु पर अनुग्रह कर मृत्यञ्जय मन्त्र का प्रभाव बताया था। इसी नरेश की धर्म की परीक्षा लेने के लिये वे भगवान् पुन: द्विजेश्वर रूप में प्रकट हुए थे। राजा भद्रायु द्वारा पूजित शिव ही मृत्युञ्जय नाम से विख्यात हुए, जिनके दर्शन एवं पूजन से मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। यह मृत्युञ्जय-मन्त्र के जप की महान् महिमा है।

सूक्ष्मागम के क्रियापाद के द्वितीय पटल में मृत्युञ्जय लीला का वर्णन करते हुए मृकण्डु ऋषि के पुत्र मार्कण्डेय ऋषि का प्रसङ्ग उपस्थापित किया गया है। मार्कण्डेय अपनी आयु के क्षय से भयभीत होकर अन्य सारे देवताओं को छोड़कर भगवान् शिव की शरण में चले गये। भगवान् शिव ने तत्काल प्रकट होकर क्रूर यम को उचित शिक्षा दी और उन्होंने मुनि

मार्कण्डेय को बचा लिया। उस लीला के कारण भगवान् शंकर **कालारि** के नाम से लोक में विख्यात हुए (सू., क्रि.पा., २.२७-२८)।

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में मृत्युञ्जय लीला की कथा आयी है। मुनि मृकण्डु ने अपनी पत्नी के साथ घोर तपस्या करके भगवान् शिव को प्रसन्न किया था और उन्हींके वरदान से मार्कण्डेय को पुत्ररूप में प्राप्त किया था। भगवान् शंकर ने उसे सोलह वर्ष की ही आयु उस समय दी थी। अत: मार्कण्डेय की आयु का सोलहवाँ वर्ष आरम्भ होने पर मृकण्डु मुनि का हृदय शोक से भर गया। पिताजी को उदास देखकर जब मार्कण्डेय ने उसका कारण पूछा, तब मुनि मृकण्डु ने कहा— 'पुत्र! भगवान् शंकर ने तुम्हें सोलह वर्ष की ही आयु दी है, उसकी समाप्ति का समय समीप आ पहुँचा है, इसीसे मुझे शोक हो रहा है।

पिता के वचन को सुनकर मार्कण्डेय ने कहा— 'पिता जी! आप शोक न करें। मैं भगवान् शंकर को प्रसन्न करके ऐसा यत्न करूँगा कि मेरी मृत्यु हो ही नहीं।' तदनन्तर माता-पिता की आज्ञा लेकर विधिपूर्वक शिवलिङ्ग की स्थापना करके आराधना करने लगे। समय पर 'मृत्यु का काल' आ पहुँचा। मार्कण्डेय जी ने काल से कहा— 'मैं **'मृत्युञ्जय-स्तोत्र'** से भगवान् शिव का स्तवन कर रहा हूँ, इसे पूरा कर लूँ, तब तक तुम ठहर जाओ।' काल ने कहा— 'ऐसा नहीं हो सकता।' तब मार्कण्डेय जी ने भगवान् शिव के बल पर काल को फटकारा। काल ने क्रोध में भरकर ज्यों ही मार्कण्डेय को हठपूर्वक ग्रसित करना चाहा, त्यों ही स्वयं भगवान् महादेव उसी लिङ्ग से प्रकट हो गये। हुंकार भरकर मेघ के समान गर्जना करते हुए उन्होंने काल की छाती में लात मारी। मृत्यु देवता उनके चरण प्रहार से पीड़ित होकर दूर जाकर गिर पड़े। भयानक आकृति वाले काल को दूर पड़े देख मार्कण्डेय जी ने पुन: **'मृत्युञ्जय-स्तोत्र'** से भगवान् शिव का स्तवन किया। पाठकों के लिये स्तोत्र भावानुवादसहित यहाँ उद्धृत है—

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं
शिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युतानलसायकम्।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदशालयैरभिवन्दितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।१।।

कैलास के शिखर पर जिनका निवास-गृह है, जिन्होंने मेरु गिरि का धनुष, नागराज वासुकि की प्रत्यञ्चा और भगवान् विष्णु को अग्निमय बाण बनाकर तत्काल ही दैत्यों के तीनों पुरों को दग्ध कर डाला है, सम्पूर्ण देवता जिनके चरणों की वन्दना करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?॥१॥

पञ्चपादपपुष्पगन्धिपदाम्बुजद्वयशोभितं
भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम्।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशिनं भवमव्ययं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।२।।

मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन— इन पाँच दिव्य वृक्षों के पुष्पों से सुगन्धित युगल चरण-कमल जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, जिन्होंने अपनी ललाटवर्ती नेत्र से प्रकट हुई आग की ज्वाला में कामदेव के शरीर को भस्म कर डाला है, जिनका श्रीविग्रह सदा भस्म से विभूषित रहता है, जो भव की उत्पत्ति के कारण होते हुए भी भव-संसार के नाशक हैं तथा जिनका कभी विनाश नहीं होता, उन भगवान् चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?॥२॥

मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं
पङ्कजासनपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम् ।
देवसिद्धतरङ्गिणीकरसिक्तशीतजटाधरं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।३।।

जो मतवाले गजराज के मुख्य चर्म की चादर ओढ़े परम मनोहर जान पड़ते हैं, ब्रह्मा और विष्णु भी जिनके चरण-कमलों की पूजा करते हैं तथा जो देवताओं और सिद्धों की नदी गंगा की तरंगों से भीगी हुई शीतल जटाधारण करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरेन्द्र की मैं शरण जाता हूँ, यमराज मेरा क्या कर करेगा?॥३॥

कुण्डलीकृतकुण्डलीश्वरकुण्डलं वृषवाहनं
नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम्।
अन्धकान्तकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।४।।

गेंडुली मारे हुए सर्पराज जिनके कानों में कुण्डल का काम देते हैं, जो वृषभ पर सवारी करते हैं, नारद आदि मुनीश्वर जिनके वैभव की स्तुति करते हैं, जो समस्त भुवनों के स्वामी, अन्धकासुर का नाश करने वाले, आश्रित जनों के लिये कल्पवृक्ष के समान और यमराज को भी शान्त करने वाले हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?।।४।।

यक्षराजसखं भगाक्षिहरं भुजङ्गविभूषणं
शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम्।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।५।।

जो यक्षराज कुबेर के सखा, भग देवता की आँख फोड़ने वाले और सर्पों के आभूषण धारण करने वाले हैं, जिनके श्रीविग्रह के सुन्दर वाम भाग को गिरिराजकिशोरी उमा ने सुशोभित किया है, कालकूट विष पीने के कारण जिनका कण्ठभाग नीले रंग का दिखायी देता है, जो एक हाथ में फरसा और दूसरे में मृगमुद्रा धारण किये रहते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखर की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?।।५।।

भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं
दक्षयज्ञविनाशिनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम्।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं निखिलाघसङ्घनिबर्हणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।६।।

जो जन्म-मरण के रोग से ग्रस्त पुरुषों के लिये औषध रूप हैं, समस्त आपत्तियों का निवारण और दक्ष-यज्ञ का विनाश करने वाले हैं, सत्त्व आदि तीनों गुण जिनके स्वरूप हैं, जो तीन नेत्र धारण करते हैं, जो भोग और मोक्ष रूपी फल देते तथा सम्पूर्ण पापराशि का संहार करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरेन्द्र की मैं शरण लेता हूँ, यमराज मेरा क्या करेगा?।।६।।

भक्तवत्सलमर्चतां निधिमक्षयं हरिदम्बरं
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनूपमम्।
भूमिवारिनभोहुताशनसोमपालितस्वाकृतिं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।७।।

जो भक्तों पर दया करने वाले हैं, अपनी पूजा करने वाले मनुष्यों के लिये अक्षय निधि होते हुए भी जो स्वयं दिगम्बर रहते हैं, जो सब भूतों के स्वामी, परात्पर, अप्रमेय और उपमारहित हैं, पृथिवी, जल, आकाश, अग्नि और चन्द्रमा के द्वारा जिनका श्रीविग्रह सुरक्षित है, उन भगवान् चन्द्रशेखरेन्द्र की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?॥७॥

विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं
संहरन्तमथ प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम्।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमावृतं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।८।।

जो ब्रह्मा रूप से सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि करते, फिर विष्णु रूप से सबके पालन में संलग्न रहते और अन्त में सारे प्रपञ्च का संहार करते हैं, सम्पूर्ण लोकों में जिनका निवास है तथा जो गणेश जी के पार्षदों से घिर कर दिन-रात भाँति-भाँति के खेल किया करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरेन्द्र की मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?॥८॥

रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति।।९।।

जो दुःख को दूर करने के कारण **रुद्र** कहलाते हैं, जीवरूपी पशुओं का पालन करने से **पशुपति**, स्थिर होने से **स्थाणु**, गले में नीला चिह्न धारण करने से **नीलकण्ठ** और भगवती उमा के स्वामी होने से **उमापति** नाम धारण करते हैं, उन भगवान् शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगा?॥९॥

कालकण्ठं कलामूर्तिं कालाग्निं कालनाशनम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति।।१०।।

जिनके गले में काला दाग है, जो कलामूर्ति, कालाग्निस्वरूप और काल के नाशक हैं, उन भगवान् शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, मृत्यु मेरा क्या कर लेगा?॥१०॥

नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निरुपद्रवम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति।।१२।।

जिनका कण्ठ नील है और नेत्र विकराल होते हुए भी जो अत्यन्त निर्मल और उपद्रवरहित हैं, उन भगवान् शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगा?॥१२॥

देवदेवं जगन्नाथं देवेशं वृषभध्वजम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति।।१३।।

जो देवताओं के भी आराध्य देव हैं, जो जगत् के स्वामी और देवताओं पर भी शासन करने वाले हैं, जिनकी ध्वजा पर वृषभ का चिह्न बना हुआ है; उन भगवान् शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगा?॥१३॥

अनन्तमव्ययं शान्तमक्षमालाधरं हरम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति।।१४।।

जो अनन्त, अविकारी, शान्त, रुद्राक्षमालाधारी और सबके दुःखों का हरण करने वाले हैं, उन भगवान् शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगा?॥१४॥

आनन्दं परमं नित्यं कैवल्यपदकारणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति।।१५।।

जो परमानन्दस्वरूप, नित्य एवं कैवल्यपद-मोक्ष की प्राप्ति के कारण हैं, उन भगवान् शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगा?॥१५॥

स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति।।१६।।

जो स्वर्ग और मोक्ष के दाता तथा सृष्टि, पालन और संहार के कर्ता हैं, उन भगवान् शिव को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगा?॥१६॥

इस प्रकार मार्कण्डेय जी की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उनकी भाग्यरेखा को बदलकर मृत्युञ्जय बना दिया। यमराज को खाली हाथ लौटना पड़ा।

मार्कण्डेय जी ने जिस क्षेत्र में शिवलिङ्ग की स्थापना करके उनके पूजन से मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी, वह क्षेत्र उन्हींके नाम पर **मार्कण्डेय-क्षेत्र** तथा महादेव का मन्दिर **मार्कण्डेयेश्वर मन्दिर** के नाम से विख्यात है। मार्कण्डेयेश्वर महादेव का मन्दिर वाराणसी से २५ कि.मी. दूर गाजीपुर जाने वाले राजमार्ग पर कैथी नामक ग्राम में स्थित है। यह गोमती और गंगा नदी के संगम पर विद्यमान है। संगम के पास का क्षेत्र मार्कण्डेय-क्षेत्र कहलाता है। आज भी मान्यता है कि इस मन्दिर में सात जन्मों की बाँझ नारी भी हरिवंश-पुराण का श्रद्धा और भक्ति से तीन बार श्रवण कर चिरंजीवी पुत्रवाली माता बन जाती है।

इसी मार्कण्डेय मुनि को प्रलयकाल में वटपत्रशायी बालमुकुन्द भगवान् का दर्शन हुआ था और भगवान् शंकर ने उन्हें कल्पान्त तक अमर रहने और पुराणाचार्य होने का वरदान दिया था।

भगवान् शंकर की कृपा से यमराज से त्राण पाकर मार्कण्डेय जी नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत लेकर हिमालय की गोद में पुष्पभद्रा नदी के किनारे नर-नारायण की आराधना करने लगे। उनका चित्त सब ओर से हटकर भगवान् में ही लगा रहता था। मार्कण्डेय मुनि को जब भगवान् की आराधना करते हुए अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये, तब इन्द्र को उनके तप से भय होने लगा। देवराज ने वसन्त, कामदेव तथा पुञ्जिकस्थला अप्सरा को मुनि की साधना में विघ्न डालने के लिये वहाँ भेजा। वसन्त के प्रभाव से सभी वृक्ष पुष्पित हो गये, कोकिल कूजने लगी, शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु चलने लगा। अलक्ष्य रहकर वहाँ गन्धर्व गाने लगे और अप्सरा पुञ्जिकस्थला मुनि के सम्मुख गेन्द खेलती हुई अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन करने लगी। इसी समय कामदेव ने अपने फूलों के धनुष पर सम्मोहन बाण चढ़ा कर उसे मुनि पर छोड़ा। परन्तु कामदेव और अप्सरा के सब प्रयत्न व्यर्थ हो गये। मार्कण्डेय जी का चित्त भगवान् नर-नारायण में लगा हुआ था, अतः भगवान् की कृपा से उनके हृदय में कोई विकार नहीं हुआ। मुनि की ऐसी दृढ़ आस्था देख कर काम आदि डरकर भाग गये। मार्कण्डेय जी में काम को जीत लेने का गर्व भी नहीं आया। वे उसे भगवान् की कृपा समझ कर और भी भाव-निमग्न हो गये।

भगवान् के चरणों में मार्कण्डेय जी का चित्त तो पहले से लगा था, अब भगवान् की अपने पर इतनी बड़ी कृपा का अनुभव करके वे व्याकुल हो गये। भगवान् के दर्शन के लिये उनका हृदय आतुर हो उठा। भक्तवत्सल भगवान् उनकी व्याकुलता से द्रवित होकर उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान् नारायण सुन्दर जलभरे मेघ के समान श्याम वर्ण के और नर गौर-वर्ण के थे। दोनों के ही कमल के समान नेत्र करुणा से पूर्ण थे। इस ऋषिवेष में भगवान् ने जटाएँ बढ़ा रखी थीं और शरीर पर मृगचर्म धारण कर रखा था। भगवान् के मंगलमय भव्य स्वरूप को देखकर मार्कण्डेय जी ने हाथ जोड़कर भूमि पर गिर कर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। भगवान् ने उन्हें स्नेहपूर्वक उठाया। मार्कण्डेय जी ने किसी प्रकार कुछ देर में अपने को स्थिर किया। उन्होंने भगवान् की भली-भाँति पूजा की। भगवान् ने उन्हें वरदान माँगने को कहा।

मार्कण्डेय जी ने स्तुति करते हुए भगवान् से कहा— 'प्रभो! आपके श्रीचरणों का दर्शन हो जाय, इतना ही प्राणी का परम पुरुषार्थ है। आपको पा लेने पर फिर तो कुछ पाना शेष रह ही नहीं जाता, किन्तु आपने वरदान माँगने की आज्ञा दी है, अतः मैं आपकी माया को देखना चाहता हूँ।

भगवान् तो 'एवमस्तु' कहकर अपने आश्रम बदरीवन को चले गये और मार्कण्डेय जी भगवान् की आराधना, ध्यान तथा पूजन में लग गये। सहसा एक दिन ऋषि ने देखा कि दिशाओं को काले-काले मेघों ने ढक दिया है। बड़ी भयंकर गर्जना तथा बिजली की कड़क के साथ मूसल के समान मोटी-मोटी धाराओं से पानी बरसने लगा। इतने में चारों ओर से उमड़ते हुए समुद्र बढ़ आये और समस्त पृथ्वी प्रलय के जल में डूब गयी। मुनि उस महासागर में विक्षिप्त की भाँति तैरने लगे। भूमि, वृक्ष, पर्वत आदि सब डूब गये थे। सूर्य, चन्द्र तथा तारों का भी कहीं पता नहीं था। सब ओर घोर अन्धकार था। भीषण प्रलयकालीन समुद्र की गर्जना ही सुनायी पड़ती थी। उस समुद्र में बड़ी-बड़ी भयकर तरङ्गें कभी मुनि को यहाँ से वहाँ फेंक देती थीं, कभी कोई जलजन्तु उन्हें काटने लगता था और कभी वे जल में डूबने लगते थे। जटाएँ खुल गयी थीं, बुद्धि विक्षिप्त हो गयी थी, शरीर शिथिल होता जा रहा था। अन्त में व्याकुल होकर उन्होंने भगवान् का स्मरण किया।

भगवान् का स्मरण करते ही मार्कण्डेय जी ने देखा कि सामने ही एक बहुत बड़ा वट का वृक्ष उस प्रलय समुद्र में खड़ा है। पूरे वृक्ष पर कोमल पत्ते भरे हुए हैं। आश्चर्य से मुनि और समीप आ गये। उन्होंने देखा कि वटवृक्ष की ईशान कोण की शाखा पर पत्तों के सट जाने से बड़ा सा सुन्दर दोना बन गया है। उस दोने में एक अद्भुत बालक लेटा हुआ है। वह नवजलधर-सुन्दर श्याम है। उसके त्रिभुवनसुन्दर मुख पर मन्द-मन्द हास्य है। उसके बड़े-बड़े नेत्र प्रसन्नता से खिले हुए हैं, श्वास लेने से उसका सुन्दर त्रिबलीभूषित पल्लव के समान उदर थोड़ा-थोड़ा ऊपर-नीचे हो रहा है। उस शिशु के शरीर का तेज इस घोर अन्धकार को दूर कर रहा है। शिशु अपने हाथों की सुन्दर अंगुलियों से दाहिने चरण को पकड़ कर उसके अंगूठे को मुख में लिये चूस रहा है। मुनि को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने प्रणाम किया—

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि।।

उनकी सब थकावट उस बालक को देखते ही दूर हो गयी। वे उसको गोद में लेने के लिये लालायित हो उठे और उसके पास जा पहुँचे। पास पहुँचते ही उस शिशु के श्वास से खिंचे हुए मुनि विवश होकर उसकी नासिका के छिद्र से उसके उदर में चले गये।

मार्कण्डेय जी ने शिशु के उदर में पहुँच कर जो कुछ देखा, उसका वर्णन नहीं हो सकता। वहाँ उन्होंने अनन्त ब्रह्माण्ड देखे। वहाँ की विचित्र सृष्टि देखी। सूर्य, चन्द्र, तारागण प्रभृति सब उन्हें दिखायी पड़े। उनको वहाँ समुद्र, नदी, सरोवर, वृक्ष, पर्वत सहित पृथिवी भी सभी प्राणियों से पूर्ण दिखायी पड़ी। पृथिवी पर घुमते हुए वे शिशु के उदर में ही हिमालय पर्वत पर पहुँचे। वहाँ पुष्पभद्रा नदी और उसके तट पर अपना आश्रम भी उन्होंने देखा। यह सब देखने में उन्हें अनेक युग बीत गये। वे विस्मय से चकित हो रहे थे। उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। इसी समय उस शिशु के श्वास छोड़ने से श्वास के साथ वे फिर बाहर उसी प्रलय समुद्र में गिर पड़े। उन्हें वही गर्जन करता समुद्र, वही वट-वृक्ष और उस पर वही अद्भुत सौन्दर्यघन शिशु दिखलाई पड़ा। अब मुनि ने उस बालक से ही इस सब दृश्य का रहस्य पूछना चाहा। जैसे ही वे कुछ पूछने को हुए, सहसा सब अदृश्य हो गया। मुनि ने

देखा कि वे तो अपने आश्रम के पास पुष्पभद्रा नदी के तट पर सन्ध्या करने वैसे ही बैठे हैं। वह शिशु, वह वट-वृक्ष, वह प्रलय-समुद्र आदि कुछ भी वहाँ नहीं है। भगवान् की कृपा समझ कर मुनि को बड़ा ही आनन्द हुआ।

भगवान् ने कृपा करके अपनी माया का स्वरूप दिखलाया कि किस प्रकार उन सर्वेश्वर के भीतर ही समस्त ब्रह्माण्ड है। उन्हींसे सृष्टि का विस्तार होता है और फिर सृष्टि उनमें ही लीन हो जाती है। इस कृपा का अनुभव करके मुनि मार्कण्डेय ध्यानस्थ हो गये। उनका चित्त दयामय भगवान् में निश्चल हो गया। इसी समय उधर से नन्दी पर बैठे पार्वती जी के साथ भगवान् शंकर निकले। मार्कण्डेय जी को ध्यान में एकाग्र देख कर भगवती उमा ने शंकर जी से कहा— 'नाथ! ये मुनि कितने तपस्वी हैं। ये कैसे ध्यानस्थ हैं। आप इन पर कृपा कीजिये; क्योंकि तपस्वियों के तपस्या का फल देने में आप समर्थ हैं।

भगवान् शंकर ने कहा— 'पार्वती! ये मार्कण्डेय जी भगवान् के अनन्य भक्त हैं। ऐसे भगवान् के भक्त कामनाहीन होते हैं। उन्हें भगवान् की प्रसन्नता के अतिरिक्त और कोई इच्छा नहीं होती, किन्तु ऐसे भगवद्भक्त का दर्शन तथा उनसे वार्तालाप का अवसर बड़े सौभाग्य से मिलता है, अत: मैं इनसे अवश्य बातचीत करूँगा। इतना कहकर भगवान् शंकर मुनि के समीप गये। किन्तु ध्यानस्थ मुनि को कुछ पता न चला। शंकर जी ने योगबल से उनके हृदय में प्रवेश किया। हृदय में त्रिनयन, कर्पूरगौर शंकर जी का अकस्मात् दर्शन होने से मुनि का ध्यान भङ्ग हो गया। नेत्र खोजने पर भगवान् शंकर को आगे खड़ा देख वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पार्वती जी के साथ शिव जी का पूजन किया। भक्तवत्सल भगवान् शंकर ने उनसे वरदान माँगने के लिये कहा। मुनि ने प्रार्थना की—

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च।
रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे।।

(भाग., १२.१०.१७)

'दयामय! आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे यही वरदान दें कि आप भगवान् में मेरी अविचल भक्ति हो। आपमें मेरी स्थिर श्रद्धा रहे। भगवद्भक्तों के प्रति मेरे मन में अनुराग रहे।' आप जगत् के ईश्वर हैं। हमलोगों का जो

इस प्रकार आदर कर रहे हैं, यह दूसरों के शिक्षार्थ ही है। इससे आपका महत्त्व कुछ घटता नहीं। आपकी लीला बड़ी अद्भुत है, जिसे जानना बड़ा कठिन है। हम तो केवल सिर झुकाकर आपको प्रणाम ही कर सकते हैं। भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाले आपसे मैं यही वर चाहता हूँ कि आपमें एवं आपके भक्तों में मेरी सदा भक्ति बनी रहे—

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात् कामाभिवर्षणात्।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि।।

(भाग., १२.१०.३४)

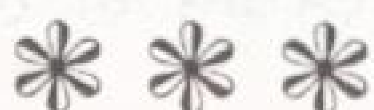
यह सुनकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और बोले— 'तथास्तु' ऐसा ही होगा। मुनिराज! कल्पपर्यन्त तुम अजर-अमर रहोगे। तुम्हें त्रैकालिक ज्ञान होगा एवं पुराणों का आचार्यत्व भी प्राप्त होगा। इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये (भाग, १२, अ. ८-१०)।

इस प्रकार भगवान् शंकर से मुनि मार्कण्डेय जी ने कल्पान्त तक अमर रहने और पुराणाचार्य होने का वरदान प्राप्त किया। मार्कण्डेयपुराण के उपदेशक मार्कण्डेय मुनि ही हैं, जिसे भगवान् व्यास जी ने भाषाबद्ध किया है।

अन्त में इस मृत्यञ्जय भगवान् शिव का स्मरण एवं चिन्तन करते हुए उन्हींकी हम शरण ग्रहण करते हैं।

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे।।

भगवान् त्र्यम्बकदेव अष्टभुज हैं। उनके एक हाथ में अक्षमाला और दूसरे हाथ में मृगमुद्रा है, दो हाथों से दो कलशों में अमृतरस लेकर उससे अपने मस्तक को आप्लावित कर रहे हैं और दो हाथों को अपने अङ्क पर रख छोड़े हैं और उनमें दो अमृतपूर्ण घट हैं। वे श्वेत पद्म पर विराजमान हैं, ऐसे देवाधिदेव कैलासपति श्रीशंकर की मैं शरण ग्रहण करता हूँ। उन्हीं का भजन करता हूँ।



२४. सुखावह लीला

प्राचीन काल की बात है, गौतम नाम से विख्यात एक श्रेष्ठ ऋषि रहते थे, जिनकी परम धार्मिक पत्नी का नाम अहल्या था। दक्षिण दिशा में स्थित ब्रह्मगिरि पर उन्होंने दस हजार वर्षों तक तपस्या की थी। एक समय वहाँ सौ वर्षों का बहुत भयानक अवर्षण हो गया। सब लोग महान् दु:ख में पड़ गये। इस भूतल पर कहीं हरा पत्ता भी नहीं दिखाई देता था। फिर जीवों का आधारभूत जल कहाँ से दृष्टिगोचार होता। उस समय मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी और मृग— सब वहाँ से दशों दिशाओं को चले गये। तब गौतम ऋषि ने छ: महीने तक तप करके वरुण को प्रसन्न किया। वरुण ने प्रकट होकर वर माँगने को कहा— ऋषि ने वृष्टि के लिये प्रार्थना की। वरुण ने कहा— 'देवताओं के विधान के विरुद्ध वृष्टि न करके मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हें सदा अक्षय रहने वाला जल देता हूँ। तुम एक गड्ढा तैयार करो।'

वरुण के ऐसा कहने पर गौतम ने एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा और उन्होंने उसे दिव्य जल के द्वारा भर दिया तथा परोपकार से सुशोभित होने वाले मुनिश्रेष्ठ गौतम से कहा— महामुने! कभी क्षीण न होने वाला यह जल तुम्हारे लिये तीर्थरूप होगा और पृथ्वी पर तुम्हारे ही नाम से इसकी ख्याति होगी। यहाँ किये हुए दान, होम, तप, देवपूजन तथा पितरों का श्राद्ध सभी अक्षय होंगे।

ऐसा कहकर उन महर्षि से प्रशंसित हो वरुणदेव अन्तर्धान हो गये। उस जल के द्वारा दूसरों का उपकार करके महर्षि गौतम को भी बड़ा सुख मिला। महान् पुरुष का आश्रय मनुष्यों के लिये महत्त्व की ही प्राप्ति कराने वाला होता है। महान् पुरुष ही महात्मा के उस स्वरूप को देखते और समझते हैं, दूसरे अधम मनुष्य नहीं। मनुष्य जैसे मनुष्य का संसर्ग करता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है। महान् पुरुषों की सेवा से महत्ता मिलती है और क्षुद्र की सेवा से क्षुद्रता। उत्तम पुरुषों का यह स्वभाव ही है कि वे दूसरों के दु:ख को नहीं

सहन कर पाते। अपने को दु:ख प्राप्त हो जाय, इसे भी स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु दूसरों के दु:ख का निवारण ही करते हैं। दयालु, अभिमानशून्य, उपकारी और जितेन्द्रिय— ये पुण्य के चार स्तम्भ हैं, जिनके आधार पर यह पृथ्वी टिकी हुई है।

इसके बाद गौतम जी वरुण-प्रदत्त जल को पाकर विधिपूर्वक नित्य नैमित्तिक कर्म करने लगे। उन मुनीश्वर ने वहाँ नित्य होम की सिद्धि के लिये धान, जौ और अनेक प्रकार के नीवार बोआ दिये। तरह-तरह के धान्य, भाँति-भाँति के वृक्ष और अनेक प्रकार के फल-फूल वहाँ लहलहा उठे। यह समाचार सुनकर वहाँ दूसरे-दूसरे सहस्रों ऋषि-मुनि, पशु-पक्षी तथा बहुसंख्यक जीव जाकर रहने लगे। वह वन इस भूमण्डल में बड़ा सुन्दर हो गया। उस अक्षय जल के संयोग से अनावृष्टि वहाँ के लिये दु:खदायिनी नहीं रह गयी। उस वन में अनेक शुभकर्मपरायण ऋषि अपने शिष्य, भार्या और पुत्र आदि के साथ निवास करने लगे। गौतम जी के प्रभाव से उस वन में चारों ओर आनन्द छा गया।

एक बार वहाँ गौतम के आश्रम में जाकर बसे हुए ब्राह्मणों की स्त्रियाँ जल के प्रसङ्ग को लेकर अहल्या पर नाराज हो गयीं। उन्होंने अपने पतियों को उकसाया। उन लोगों ने गौतम का अनिष्ट करने के लिये गणेश जी की आराधना की। भक्तपराधीन गणेश जी ने प्रकट होकर वर माँगने के लिये कहा। तब ब्राह्मणों ने कहा— भगवन्! यदि आप हमें वर देना चाहते हैं, तो ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे समस्त ऋषि डाँट-फटकार कर गौतम को आश्रम से बाहर निकाल दें।

गणेश जी ने कहा— ऋषियों! तुम लोगों का यह विचार उचित नहीं है। बिना किसी अपराध के उन पर क्रोध करने के कारण तुम्हारी हानि ही होगी। उपकारी व्यक्ति को दु:ख देना हितकारी नहीं होता। जब उपकारी को दु:ख दिया जाता है, तो उससे इस जगत् में अपना ही नाश होता है—

अपराधं विना तस्मै क्रुध्यतां हानिरेव च।
उपस्कृतं पुरा यैस्तु तेभ्यो दुःखं हितं नहि।।
यदा च दीयते दुःखं तदा नाशो भवेदिह।।

(शि.पु., कोटिरुद्रसं., २५.१४-१५)

ऐसी तपस्या करके उत्तम फल की सिद्धि की जाती है। स्वयं ही शुभ फल का परित्याग करके अहितकारक फल को नहीं ग्रहण किया जाता। ब्रह्मा जी ने जो यह कहा है कि असाधु कभी साधुता को और साधु कभी असाधुता को नहीं ग्रहण करता। यह बात निश्चय ही ठीक जान पड़ती है। पहले उपवास के कारण जब तुम लोगों को दुःख भोगना पड़ा था, तब महर्षि गौतम ने जल की व्यवस्था करके तुम्हें सुख दिया। परन्तु इस समय तुम सब लोग उन्हें दुःख दे रहे हो। संसार में ऐसा कार्य करना कदापि उचित नहीं। इस बात पर तुम लोग सर्वथा विचार कर लो। स्त्रियों की शक्ति से मोहित होकर तुम लोग यदि मेरी बात नहीं मानोगे, तो तुम्हारा यह व्यवहार गौतम के लिये अत्यन्त हितकारक ही होगा, इसमें संशय नहीं है। ये मुनिश्रेष्ठ गौतम तुम्हें पुनः निश्चय ही सुख देंगे। अतः उनके साथ छल करना कदापि उचित नहीं। इसलिये तुम लोग कोई दूसरा वर माँगो।

भगवान् गणेश ने ऋषियों से जो यह बात कही, वह यद्यपि उनके लिये सुखावह और हितकर थी, तो भी उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। तब भक्तों के अधीन शिवकुमार ने कहा— 'तुम लोगों ने जिस वस्तु के लिये प्रार्थना की है, उसे मैं अवश्य करूँगा। पीछे जो होनहार होगी, वह होकर ही रहेगा।' ऐसा कहकर गणेश जी अन्तर्धान हो गये। इसके बाद धान, जौ आदि से लहलहाते गौतम के खेत के पास गणेश जी एक दुर्बल गाय बन कर गये। दिये हुए वर के कारण वह गौ काँपती हुई वहाँ जाकर फसल को चरने लगी। इसी दैववश गौतम जी वहाँ आ गये। वे दयालु ठहरे, इसलिये मुट्ठी भर तिनके लेकर उन्हीं से उस गौ को हाँकने लगे। उन तिनकों का स्पर्श होते ही वह गाय पृथ्वी पर गिर पड़ी और ऋषि के देखते-ही-देखते उसी क्षण मर गयी।

अब वे द्वेषी ब्राह्मण और उनकी दुष्ट स्त्रियाँ यह घटना देखकर बोल उठीं। अरे गौतम! तुमने यह क्या कर डाला? गौतम भी आश्चर्यचकित हो गये। अहल्या को बुलाकर व्यथित हृदय से दुःखपूर्वक बोले— 'देवि! यह क्या हुआ, कैसे हुआ? जान पड़ता है, परमेश्वर मुझ पर कुपित हो गये हैं। अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मुझे हत्या लग गयी।'

इसी समय ब्राह्मण और उनकी पत्नियाँ गौतम को डाँटने और दुर्वचनों द्वारा अहल्या को पीड़ित करने लगीं। उनके दुर्बुद्धि शिष्य और पुत्र भी गौतम को बारंबार फटकारने और धिक्कारने लगे।

ब्राह्मण बोले— अब तुम्हे अपना मुँह नहीं दिखाना चाहिये। यहाँ से जाओ, जाओ। गोहत्यारे का मुँह देखने पर तत्काल वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। जब तक तुम इस आश्रम में रहोगे, तब तक अग्निदेव और पितर हमारे दिये हुए किसी भी हव्य-कव्य को ग्रहण नहीं करेंगे। इसलिये पापी गो-हत्यारे! तुम परिवार सहित यहाँ से अन्यत्र चले जाओ। विलम्ब न करो।

ऐसा कहकर उन लोगों ने उन्हें पत्थरों से मारना प्रारम्भ किया। वे लोग गालियाँ दे देकर गौतम और अहल्या को सताने लगे। उन दुष्टों के मारने धमकाने पर गौतम ने सपरिवार वहाँ से अन्यत्र जाने का निश्चय किया। वहाँ से एक कोस दूर जाकर उन्होंने अपने लिये आश्रम बनाया। वहाँ भी जाकर उन ब्राह्मणों ने कहा— अरे गोहत्यारे! जब तक तुम्हारे ऊपर हत्या लगी है, तब तक तुम्हें कोई यज्ञ-यागादि कर्म नहीं करना चाहिये। किसी भी वैदिक देवयज्ञ या पितृयज्ञ के अनुष्ठान का तुम्हें अधिकार नहीं रह गया है।' मुनिवर गौतम उनके कथनानुसार किसी तरह एक पक्ष बिताकर उस दुःख से दुःखी हो बारंबार उन मुनियों से अपनी शुद्धि के लिये प्रार्थना करते रहे।

उनके दीनभाव से प्रार्थना करने पर उन ब्राह्मणों ने कहा— 'गौतम! तुम अपने पाप को प्रकट करते हुए तीन बार सारी पृथ्वी की परिक्रमा करो। फिर लौट कर यहाँ एक माह तक चान्द्रायण व्रत करो। उसके बाद इस ब्रह्मगिरि की एक सौ एक परिक्रमा करने के पश्चात् तुम्हारी शुद्धि होगी। अथवा यहाँ गंगाजी को ले आकर उन्हींके जल से स्नान करो तथा एक करोड़ पार्थिव लिंग बनाकर महादेव जी की आराधना करो। फिर गंगा में स्नान कर इस पर्वत की ग्यारह बार परिक्रमा करो। तत्पश्चात् सौ घड़ों के जल से पार्थिव शिवलिंग को स्नान कराने पर तुम्हारा उद्धार होगा।' उन ऋषियों के ऐसा कहने पर गौतम ने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बात मान ली। वे बोले— 'मुनिवरों! मैं आप श्रीमानों की आज्ञा से यहाँ पार्थिव पूजन तथा ब्रह्मगिरि की परिक्रमा करूँगा।' ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ गौतम ने उस पर्वत की परिक्रमा करने के पश्चात् पार्थिव लिंगों का निर्माण कर पूजन करने लगे। साध्वी

अहल्या ने भी साथ रहकर वह सब कुछ किया। उस समय शिष्य प्रशिष्य उन दोनों की सेवा करते थे।

पत्नी सहित गौतम ऋषि के इस प्रकार आराधना करने पर सन्तुष्ट हुए भगवान् शंकर वहाँ पार्वती और प्रमथ गणों के साथ प्रकट हो गये। तदनन्तर प्रसन्न हुए कृपानिधान शिव ने कहा— 'महामुने! मैं तुम्हारी उत्तम भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ।' तुम कोई वर माँगो। उस समय भगवान् शम्भु के सुन्दर रूप को देखकर आनन्दित हुए गौतम ने भक्तिभाव से शंकर को प्रणाम करके उनकी स्तुति की। लम्बी स्तुति और प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर वे उनके सामने खड़े हो गये और बोले— 'देव! मुझे निष्पाप कर दीजिये।'

इसके बाद भगवान् शम्भु ने कहा— मुने! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो और सदा ही निष्पाप हो। इन दुष्टों ने तुम्हारे साथ छल किया है। जगत् के लोग तुम्हारे दर्शन से पापरहित हो जाते हैं। फिर सदा भक्ति में तत्पर रहने वाले तुम क्या पापी हो? मुने! जिन दुरात्माओं ने तुम पर अत्याचार किया है, वे ही पापी, दुराचारी और हत्यारे हैं। उनके दर्शन से दूसरे लोग पापिष्ठ हो जायेंगे। वे सब-के-सब कृतघ्न हैं। उनका कभी उद्धार नहीं हो सकता।

महादेव की यह बात सुनकर महर्षि गौतम मन-ही-मन बड़े विस्मित हुए। उन्होंने भक्तिपूर्वक शिव को प्रणाम करके हाथ जोड़कर पुन: इस प्रकार कहा।

गौतम बोले— महादेव! उन ऋषियों ने तो मेरा बहुत बड़ा उपकार किया। यदि उन्होंने यह बर्ताव न किया होता, तो मुझे आपका दर्शन कैसे होता? धन्य हैं, वे महर्षि, जिन्होंने मेरे लिये परम कल्याणकारी कार्य किया। उनके इस दुराचार से ही महान् स्वार्थ सिद्ध हुआ है।

गौतम जी की यह बात सुनकर महेश्वर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने गौतम को कृपादृष्टि से देखकर उन्हें शीघ्र ही यों उत्तर दिया। भगवान् शंकर बोले— विप्रवर! तुम धन्य हो, सभी ऋषियों में श्रेष्ठतर हो। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। ऐसा जानकर तुम मुझसे उत्तम वर माँगो।

इसके बाद गौतम बोले— परमेश्वर! आप सच कहते हैं, तथापि पाँच आदमियों ने जो कह दिया या कर दिया, वह अन्यथा नहीं हो सकता। अत: जो हो गया, सो रहे। नाथ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे गंगा को प्रदान

कीजिये और ऐसा करके लोक का महान् उपकार कीजिये। आपको मेरा बारंबार नमस्कार है।

इस प्रकार कहकर गौतम ने देवेश्वर भगवान् शंकर के दोनों चरणारविन्द पकड़ लिये और लोकहित की कामना से उन्हें नमस्कार किया। तब भगवान् शंकर ने पृथिवी और स्वर्ग के सारभूत जल को निकालकर, जिसे उन्होंने पहले से ही रख छोड़ा था और विवाह में ब्रह्मा जी के दिये हुए जल में से कुछ शेष रह गया था, वह सब भक्तवत्सल शम्भु ने उन गौतम को दे दिया। उस समय गंगा जी का जल परम सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके वहाँ खड़ा हुआ। तब मुनिवर गौतम ने उन गंगा जी की स्तुति करके उन्हें नमस्कार किया।

मुनिवर गौतम बोले— गंगे! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो। तुमने सम्पूर्ण भुवन को पवित्र किया है। इसलिये निश्चित रूप से नरक में गिरते हुए मुझ गौतम को पवित्र करो।

तदनन्तर भगवान् शिव ने गंगा से कहा— देवि! तुम मुनि को पवित्र करो और तुरन्त वापस न जाकर वैवस्वत मनु के अट्ठाईसवें कलियुग तक यहीं रहो। यह सुनकर गंगा ने कहा— देवाधिदेव! यदि मेरा माहात्म्य सब नदियों से अधिक हो और अम्बिका तथा गणों के साथ आप भी यहाँ रहें, तभी मैं इस धरातल पर रहूँगी।

भगवती गंगा की यह बात सुनकर भगवान् बोले— गंगे! तुम धन्य हो। मेरी बात सुनो। मैं तुमसे अलग नहीं हूँ, तथापि मैं तुम्हारे कथनानुसार यहाँ स्थित रहूँगा। तुम भी स्थित होओ।

अपने स्वामी परमेश्वर शिव की यह बात सुनकर गंगा ने मन-ही-मन प्रसन्न हो उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसी समय देवता, प्राचीन ऋषि, अनेक उत्तम तीर्थ और नाना प्रकार के क्षेत्र वहाँ आ पहुँचे। उन सबने बड़े आदर से जय-जयकार करते हुए गौतम, गंगा तथा गिरिशायी शिव का पूजन किया। तदनन्तर उन सब देवताओं ने मस्तक झुकाकर हाथ जोड़कर उन सबकी प्रसन्नतापूर्वक स्तुति की। उस समय प्रसन्न हुई गंगा और गिरीश ने उनसे कहा— 'श्रेष्ठ देवताओं! वर माँगो। तुम्हारा प्रिय करने की इच्छा से वह वर हम तुम्हें देंगे।

देवता बोले— देवेश्वर! यदि आप सन्तुष्ट हैं और सरिद्वरे, गंगे! यदि आप भी प्रसन्न हैं, तो हमें तथा मनुष्यों को सुख प्रदान करते के लिये आप लोग कृपापूर्वक यहाँ निवास करें।

तब गंगा बोलीं— देवताओं! फिर तो सबका प्रिय करने के लिये आप लोग स्वयं ही यहाँ क्यों नहीं रहते? मैं तो गौतम जी के पाप का प्रक्षालन करके जैसे आयी हूँ, उसी तरह लौट जाऊँगी। यहाँ मेरा कोई वैशिष्ट्य प्रकट हो, तो मैं यहाँ रह सकती हूँ।

तदनन्तर सब देवताओं ने कहा— सरिताओं में श्रेष्ठ गंगे! सबके परम सुहृद् बृहस्पति जी जब-जब सिंह पर स्थित होंगे, तब-तब हम सब लोग यहाँ आया करेंगे। ग्यारह वर्षों तक लोगों का जो पातक यहाँ प्रक्षालित होगा, उससे मलिन हो जाने पर हम उसी पापराशि को धोने के लिये आदरपूर्वक तुम्हारे समीप आयेंगे। सरिद्वरे! महादेवि! अत: तुमको और भगवान् शंकर को समस्त लोकों पर अनुग्रह तथा हमारा प्रिय करने के लिये यहाँ नित्य निवास करना चाहिये। गुरु जब तक सिंह राशि पर रहेंगे, तभी तक हम यहाँ निवास करेंगे। उस समय तुम्हारे जल में त्रिकाल स्नान और भगवान् शंकर का दर्शन करके हम शुद्ध होंगे। फिर तुम्हारी आज्ञा लेकर अपने स्थान को लौटेंगे।

इस प्रकार उन देवताओं तथा महर्षि गौतम के प्रार्थना करने पर भगवान् शंकर और नदीश्रेष्ठ गंगा दोनों वहाँ स्थित हो गये। वहाँ की गंगा गौतमी (गोदावरी) नाम से विख्यात हुई और भगवान् शिव का ज्योतिर्मय लिंग त्र्यम्बक कहलाया। यह ज्योतिर्लिंग महान् पातकों का नाश करनेवाला है। उसी दिन से जब-जब बृहस्पति सिंह राशि में स्थित होते हैं, तब-तब सब तीर्थ, क्षेत्र, देवता, पुष्कर आदि सरोवर, गंगा आदि नदियाँ तथा श्रीविष्णु आदि देवगण अवश्य ही गौतमी के तट पर पधारते हैं और निवास करते हैं। वे सब जब तक गौतमी के किनारे रहते हैं, तब तक अपने स्थान पर उनका कोई फल नहीं होता। जब वे अपने प्रदेश में लौट आते हैं, तभी वहाँ इनके सेवन का फल मिलता है। यह त्र्यम्बकेश्वर नाम से प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग गौतमी के तटपर स्थित है और बड़े-बड़े पातकों का नाश कर सभी प्रकार के सुख को देने वाला है। जो भक्ति-भाव से इस

त्र्यम्बक लिंग का दर्शन, पूजन, स्तवन एवं वन्दन करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। गौतम के द्वारा पूजित त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिंग इस लोक में समस्त अभीष्टों को देने वाला तथा परलोक में उत्तम मोक्ष प्रदान करने वाला है। यही है भगवान् आशुतोष देवाधिदेव शंकर की सुखावह लीला। इसके श्रवण, मनन से सभी प्रकार के सुख की प्राप्ति होती है (शि.पु., कोटिरुद्रसंहिता, अ. ११-१२)।



२५. पार्थास्त्रप्रदान लीला

जब सुयोधन ने महाबली पाण्डवों को जुवें में जीत लिया, तब वे सती-साध्वी द्रौपदी को साथ में लेकर शर्त के अनुसार द्वैतवन में चले गये। वहीं वे पाण्डव सूर्य द्वारा दिये हुए पात्र (बटलोई) का आश्रय लेकर सुखपूर्वक समय बिताने लगे। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्वासा से उनकी रक्षा की। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को शिवजी की आराधना करने की सम्मति दी। फिर व्यास जी ने भी आकर उन्हें शंकर के समाराधन का आदेश देते हुए कहा— शिव जी सम्पूर्ण दुःखों का विनाश करने वाले हैं। वे भक्ति करने पर थोड़े ही समय में प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिये सभी लोगों को शंकर जी की सेवा करनी चाहिये। वे महेश्वर प्रसन्न होने पर भक्तों की सारी अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते हैं। यहाँ तक कि वे इस लोक में सारा भोग और परलोक में मोक्ष तक दे डालते हैं। भगवान् शंकर साक्षात् परम पुरुष, दुष्टों के संहारक और सत्पुरुषों के आश्रयस्वरूप हैं। हे अर्जुन! इसलिये पहले दृढ़तापूर्वक शक्रविद्या का जप करो। इन्द्र के प्रसन्न होने पर वे सर्वदा विघ्नों का नाश करेंगे और फिर शिव जी का श्रेष्ठ मन्त्र प्रदान करेंगे।

इसके बाद उदार बुद्धि मुनिवर व्यास जी ने अर्जुन को शक्रविद्या का उपदेश दिया एवं पार्थिव लिङ्ग के पूजन का विधान बतलाकर उनसे कहा— पार्थ! अब तुम यहाँ से परम रमणीय इन्द्रकील पर्वत पर जाओ और वहाँ जाह्नवी के तट पर बैठकर सम्यक्रूप से तपस्या करो। यह विद्या अदृश्यरूप से सदा तुम्हारा हित करती रहेगी। अर्जुन को ऐसा आशीर्वाद देकर व्यास जी पाण्डवों से कहने लगे। नृपश्रेष्ठों! तुम सब लोग धर्म पर दृढ़ बने रहो, इससे तुम्हें सर्वदा श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होगी। इसमें अन्यथा विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार मुनिवर व्यास उन पाण्डवों को आशीर्वाद दे तथा शिव जी के चरणकमलों का स्मरण करके तुरन्त ही अन्तर्धान हो गये। उधर शिव-

मन्त्र के धारण करने से अर्जुन में भी अनुपम तेज व्याप्त हो गया, जिसे देखकर सभी पाण्डवों को निश्चय हो गया कि अवश्य ही हमारी विजय होगी, क्योंकि अर्जुन में विपुल तेज उत्पन्न हो गया है। तब उन्होंने अर्जुन से कहा— 'व्यास जी के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस कार्य को केवल तुम्हीं कर सकते हो, यह दूसरे के द्वारा कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता है, अत: जाओ और हम लोगों का जीवन सफल बनाओ।' तब अर्जुन ने चारों भाइयों तथा द्रौपदी से जाने की अनुमति माँगी। उन लोगों को अर्जुन के विछोह का दु:ख तो हुआ, पर कार्य की महत्ता देख कर सभी ने जाने की अनुमति दे दी। फिर तो अर्जुन मन ही मन प्रसन्न होते हुए उस उत्तम पर्वत (इन्द्रकील) को चले गये।

वहाँ पहुँचकर वे गंगाजी के समीप एक मनोरम स्थान पर जो स्वर्ग से भी उत्तम और अशोकवन से सुशोभित था, ठहर गये। वहाँ उन्होंने स्नान करके गुरुवर को नमस्कार किया और उपदेश के अनुसार स्वयं ही अपना वेष बनाया। फिर पहले मन ही मन इन्द्रियों का अपकर्ष करके वे आसन लगाकर बैठ गये। तत्पश्चात् पञ्चसूत्रवाले सुन्दर पार्थिव (शिवलिंग) का निर्माण कर उनके आगे अनुपम तेजोराशि शंकर का ध्यान करने लगे। वे तीनों समय स्नान करके अनेक प्रकार से बारंबार शिवजी की पूजा करते हुए उपासना में तत्पर हो गये। तब अर्जुन के शिरोभाग से तेज की ज्वाला निकलने लगी। उसे देखकर इन्द्र के गुप्तचर भयभीत होकर इस घटना की सूचना देने के लिए तत्काल इन्द्र के समीप जाकर कहा— वन में एक पुरुष तप कर रहा है, परन्तु हमें पता नहीं कि वह देवता है, ऋषि है, सूर्य है, अग्नि है। उसी के तेज से सन्तप्त होकर हम आपके समीप आये हैं। हमने उसका चरित्र भी आपसे निवेदित कर दिया। अब आप जैसा उचित समझें, करें।

इस प्रकार उन गुप्तचरों के बताने पर इन्द्र को अपने पुत्र अर्जुन का सारा मनोरथ ज्ञात हो गया। तब गुप्तचरों को बिदाकर इन्द्र अर्जुन की परीक्षा करने के लिए वृद्ध ब्रह्मचारी ब्राह्मण का वेश बनाकर वहाँ पहुँचे। उस समय उन्हें आया हुआ देख कर पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उनकी पूजा की और खड़े होकर पूछने लगे— ब्रह्मन्! इस समय आपका आगमन कहाँ से हुआ है? इस पर ब्रह्मचारी वेषधारी इन्द्र ने अर्जुन को तपस्या से डिगाने वाले अनेक वचन

कहे, पर जब अर्जुन का दृढ़ निश्चय देखा, तो अपने स्वरूप में प्रकट होकर उसे भगवान् शंकर का मन्त्र बताया और उसका जप करने की आज्ञा दी। तदनन्तर अपने अनुचरों को सावधानी से अर्जुन की रक्षा करने का आदेश देकर वे अर्जुन से बोले— भद्र! तुम्हें कभी भी प्रमादपूर्वक कार्य नहीं करना चाहिये। परंतप! यह विद्या तुम्हारे लिए श्रेयस्करी होगी। साधक को सर्वदा सर्वथा धैर्य धारण किये रहना चाहिये, रक्षक तो भगवान् शिव हैं ही। वे सम्पत्तियाँ और फल (मोक्ष) दोनों समानरूप से देंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

इस प्रकार अर्जुन को वरदान देकर देवराज इन्द्र शिव के चरणकमलों का स्मरण करते हुए अपने भवन को लौट गये। तब महावीर अर्जुन ने भी सुरेश्वर को प्रणाम किया और मन को वश में करके इन्द्र के उपदेशानुसार शिव जी के उद्देश्य से तपस्या करने लगे। उस समय वे एक श्रेष्ठ मुनि की भाँति एक ही पैर के बल पर खड़े होकर सूर्य की ओर एकाग्र दृष्टि करके खड़े-खड़े मन्त्र जप कर रहे थे। वे शम्भु के सर्वोत्कृष्ट पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करते हुए घोर तप करने लगे। उस तपस्या के उत्कृष्ट तेज से देवगण विस्मित होकर शिव जी के पास गये और समाहित चित्त से बोले— सर्वेश! एक मनुष्य आपकी प्रसन्नता के लिए तपस्या में निरत है। प्रभो! आप उसका मनोरथ पूर्ण करें।

इसके बाद उदारबुद्धि प्रसन्नात्मा महाप्रभु शिव जी देवताओं को आश्वासन देकर बिदा किया। इसी समय मूक नामक दैत्य शूकर का रूप धारण कर वहाँ आया। उसे मायावी दुरात्मा दुर्योधन ने अर्जुन के पास भेजा था। वह जहाँ अर्जुन स्थित थे, उसी मार्ग से अत्यन्त वेगपूर्वक पर्वतशिखरों को उखाड़ता, वृक्षों को छिन्न-भिन्न करता तथा अनेक प्रकार के शब्द करता हुआ आया। तब अर्जुन की दृष्टि उस मूक नामक असुर पर पड़ी। वे शिवजी का स्मरण करके विचार करने लगे। यह कौन है और कहाँ से आया है। यह तो क्रूरकर्मा दिखायी पड़ रहा है। निश्चय ही यह मेरा अनिष्ट करने के लिए आ रहा है, क्योंकि जिसका दर्शन होने पर अपना मन प्रसन्न हो जाय, वह निश्चित ही अपना हितैषी है और जिसके दीखने पर मन व्याकुल हो जाय, वह शत्रु ही है। आचार से कुल का, शरीर से भोजन का, वार्तालाप से

शास्त्रज्ञान का और नेत्र से स्नेह का परिचय मिलता है। आकार से, चाल-ढाल से, चेष्टा से, बोलने से तथा नेत्र और मुख के विकार से मन के भीतर का भाव जाना जाता है। नेत्र चार प्रकार के कहे गये हैं— उज्ज्वल, सरस, तिरछे और लाल। विद्वानों ने इनका भाव भी पृथक्-पृथक् बतलाया है। मित्र का संयोग होने पर नेत्र उज्ज्वल, पुत्रदर्शन के समय सरस, कामिनी के प्राप्त होने पर वक्र और शत्रु के दिखाई पड़ने पर लाल हो जाते हैं। इसे देखते ही मेरी सारी इन्द्रियाँ कलुषित हो उठी हैं, अत: वह निस्सन्देह शत्रु ही है और मार डालने योग्य है। इधर मेरे लिए गुरु की आज्ञा भी ऐसी है कि राजन्! जो तुम्हें कष्ट देने के लिए उद्यत हो, उसे तुम बिना किसी प्रकार का विचार किये अवश्य मार डालना। मैंने इसीलिए आयुध भी तो धारण कर रखा है। इस प्रकार विचार कर अर्जुन बाण का सन्धान कर वहीं खड़ा हो गया।

इसी समय भक्तवत्सल भगवान् शंकर अर्जुन की रक्षा, उनकी भक्ति की परीक्षा और उस दैत्य का संहार करने के लिए वहाँ आ पहुँचे। उस समय उनके साथ गणों का समूह भी था। वे महान् अद्भुत सुशिक्षित भील का रूप धारण किये हुए थे। उनके शरीर पर श्वेत धारियाँ चमक रही थीं। पीठ पर बाणों से भरा हुआ तरकस बँधा हुआ था। इस प्रकार शिव भिल्लराज बने हुए थे। वे सेनाध्यक्ष होकर तरह-तरह के शब्द करते हुए आगे बढ़े। इतने में सूअर की गुर्राहट का शब्द दशों दिशाओं में गूँज उठा। उस शब्द से पर्वत आदि सभी जड़ पदार्थ झन्ना उठे। तब उस वनेचर के शब्द से घबड़ाकर अर्जुन सोचने लगे। अहो! क्या ये भगवान् शिव तो नहीं हैं, जो यहाँ शुभ करने के लिए पधारे हैं।

श्रीकृष्ण और व्यास जी ने भी ऐसा कहा था, देवताओं ने भी घोषणा की है कि शिवजी कल्याणकर्ता और सुखदाता हैं। जो लोग सर्वभाव से उनका भजन करते हैं, उन्हें स्वप्न में भी दु:ख का दर्शन नहीं होता। यदि कदाचित् कुछ दु:ख आ भी जाता है, तो उसे कर्मजनित समझना चाहिये। शिव की भक्ति से दु:खों का विनाश होता ही है। शंकर अपने भक्तों को सदा सुख देते हैं। यदि वे कभी परीक्षा के लिए भक्तों को कष्ट में डाल देते हैं, तो अन्त में दयालुस्वभाव होने के कारण वे ही उसके सुखदाता भी होते हैं। फिर तो वह भक्त उसी प्रकार निर्मल हो जाता है, जैसे आग में तपाया

हुआ सोना शुद्ध हो जाता है। अत: मैं शिवजी का भजन करके उसी में उत्तम सुख प्राप्त करूँगा।

अर्जुन इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि तब तक बाण का लक्ष्यभूत वह सूकर वहाँ आ पहुँचा। उधर भिल्लवेशधारी शंकर भी उस सूकर के पीछे लगे हुए दिखाई पड़े। उस समय उन दोनों के मध्य में सूकर अद्भुत पर्वतशिखर सा दिखाई दे रहा था। उस समय भक्तवत्सल भगवान् शंकर अर्जुन की रक्षा के लिए बड़े वेग से आगे बढ़े। इसी समय उन दोनों ने उस सूकर पर बाण चलाया। शिवजी के बाण का लक्ष्य उसका पीछे का भाग था और अर्जुन ने उसके मुख को अपना निशाना बनाया था। शिवजी का बाण उसके पुच्छ भाग से प्रवेश करके मुख के रास्ते से निकल गया और शीघ्र ही भूमि में विलीन हो गया। इधर अर्जुन का बाण उसके पिछले भाग से निकल कर बगल में ही गिर पड़ा। तब वह सूकर रूपधारी दैत्य उसी क्षण मर कर भूतल पर गिर पड़ा। उस समय देवताओं को महान् हर्ष हुआ, वे जय-जयकार करते हुए पुष्पों की वृष्टि करने लगे। उस समय अर्जुन और किरात वेषधारी शंकर ने दैत्य के उस क्रूर रूप की ओर दृष्टिपात किया। उसे देखकर शिवजी का मन सन्तुष्ट हो गया और अर्जुन मन ही मन विशेष रूप से सुख का अनुभव करते हुए कहने लगे— अहो! यह दैत्य परम अद्भुत रूप धारण कर मुझे मारने के लिए आया था, परन्तु शिव जी ने ही मेरी रक्षा की है। निस्सन्देह उन परमेश्वर ने ही आज मेरी बुद्धि को इसे मारने के लिए प्रेरित किया है। ऐसा विचार कर अर्जुन ने शिवनामसंकीर्तन बारंबार उनके चरणों में प्रणाम करके स्तुति करने लगे।

इसके बाद शिवजी ने उस बाण को लाने के लिए अपने अनुचर को भेजा। उधर अर्जुन भी उसी निमित्त वहाँ आये। इस प्रकार एक ही समय में रुद्रानुचर तथा अर्जुन दोनों बाण उठाने के लिए वहाँ पहुँचे। तब अर्जुन ने उसे डरा-धमकाकर अपना बाण उठा लिया। यह देख उस अनुचर ने कहा— ऋषिसत्तम! आप क्यों इस बाण को ले रहे हैं? यह हमारा सायक है, इसे छोड़ दीजिये। भिल्लराज के उस अनुचर द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मुनि-श्रेष्ठ अर्जुन ने शंकर जी का स्मरण किया और इस प्रकार कहा— वनेचर! तू बड़ा मूर्ख है। तू बिना सोचे-समझे क्या बक रहा है? उस बाण को तो मैंने

अभी-अभी छोड़ा है। इसकी धारियों तथा पुच्छों पर मेरा ही नाम अंकित है, फिर यह तुम्हारा कैसे हो गया।

अर्जुन का यह कथन सुनकर भिल्लरूपी गणेश्वर हँसते हुए ऋषिरूप में वर्तमान अर्जुन से इस प्रकार बोले— रे तापस! जान पड़ता है, तुम तपस्या नहीं कर रहे हो, केवल तुम्हारा वेश तपस्वी का है। भला, जो तपस्या में निरत होगा, वह कैसे मिथ्या भाषण करेगा। तुम मुझे अकेला मत समझो, मैं एक सेना का अधिपति हूँ। हमारे स्वामी बहुत से वनचारी भिल्लों के साथ वहाँ बैठे हैं। वे विग्रह तथा अनुग्रह करने में सर्वथा समर्थ हैं। यह बाण, जिसे तुमने अभी उठा लिया है, उन्हीं का है। तुम क्यों अपनी तपस्या का फल नष्ट करना चाहते हो। मैंने तो ऐसा सुन रखा है कि चोरी करने से, छलपूर्वक किसी को कष्ट पहुँचाने से, विस्मय करने से तथा सत्य का त्याग करने से प्राणी का तप क्षीण हो जाता है। ऐसी दशा में तुम्हें अब तप का फल कैसे प्राप्त होगा? उस बाण को ले लेने से तुम तप से च्युत तथा कृतघ्न हो जाओगे; क्योंकि निश्चय ही यह बाण हमारे स्वामी का है और तुम्हारी रक्षा के लिए ही उन्होंने इसे छोड़ा था। जब तुम सत्य नहीं बोल रहे हो, तो फिर इस तप से सिद्धि की अभिलाषा कैसे करते हो? अथवा यदि बाण से ही प्रयोजन है, तो मेरे स्वामी से माँग लो। वे स्वयं इस प्रकार के बहुत से बाण दे सकते हैं। मेरे स्वामी यहाँ आज उपस्थित हैं। तुम उनसे क्यों नहीं याचना करते हो? तुम तो उपकार का परित्याग करके अपकार करना चाहते हो।

इस पर कुपित होकर अर्जुन से उन्होंने कई बातें कहीं। दोनों में बड़ा विवाद हुआ। अन्त में अर्जुन ने कहा— वनचारी भील! तुम मेरी सारी बात सुन लो। जिस समय तुम्हारा स्वामी आयेगा, उस समय मैं उसे उसका फल चखाऊँगा। तुम्हारे साथ युद्ध करना तो मुझे शोभा नहीं देता। अत: मैं तुम्हारे स्वामी के साथ ही लोहा लूँगा ; क्योंकि सिंह और गीदड़ का युद्ध उपहासास्पद ही माना जाता है। तुमने मेरी बात सुन ली, अब तुम्हारी जैसी इच्छा, हो वैसा करो।

अर्जुन के इस प्रकार कहने पर वह भील जहाँ शिवावतार सेनापति किरात विराजमान थे, वहाँ गया और उनसे अर्जुन का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसकी बात सुनकर किरातेश्वर को महान् हर्ष हुआ। उसके बाद

भगवान् शंकर अपनी सेना के साथ वहाँ गये और पुनः दूत को भेजकर भरतवंशी महात्मा अर्जुन से यह कहलवाया— तपस्विन्! तनिक इस सेना की ओर दृष्टिपात करो। अरे! अब तुम बाण छोड़ कर भाग जाओ। क्या तुम इस समय एक सामान्य कार्य के लिए प्राण गँवाना चाहते हो? तुम्हारे भाई दुःख से पीड़ित हैं, स्त्री तो उनसे भी अधिक दुःखी है। मुझे तो ऐसा लगता है कि ऐसा करने से पृथिवी भी तुम्हारे हाथ से चली जायेगी।

इस प्रकार दूत की बात सुनकर अर्जुन ने उससे पुनः कहा— दूत! तुम जाकर अपने सेनापति से कहो कि तुम्हारे कथनानुसार करने से सारी बातें विपरीत हो जायेंगी। यदि मैं तुम्हें अपना बाण दे देता हूँ, तो निस्सन्देह मैं अपने कुल को दूषित करने वाला सिद्ध होऊँगा। इसलिए भले ही मेरे भाई दुःखार्त हो जायँ, पर मैंने ऐसा कभी नहीं सुना कि कहीं सिंह गीदड़ से डर गया हो। इसी प्रकार क्षत्रिय कभी वनेचर से भयभीत नहीं हो सकता।

अर्जुन के इस प्रकार कहने पर वह दूत पुनः अपने स्वामी के पास लौटकर सारी बातें उनसे बतायी। उसे सुनकर किरातवेषधारी सेनानायक महादेव जी अपनी सेना के साथ अर्जुन के सम्मुख आये। उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुन ने शिव जी का ध्यान किया। फिर निकट जाकर उनके साथ अत्यन्त भीषण युद्ध छेड़ दिया। इस प्रकार गणों सहित महादेव जी के साथ अर्जुन का घमासान युद्ध होने लगा। जब अर्जुन ने शिवजी के चरणकमल का ध्यान किया, तो उसका बल और अधिक बढ़ गया। तब वह शंकर जी के दोनों पैर पकड़ कर उन्हें घुमाने लगा। उस समय भक्तवत्सल भगवान् शंकर हँस रहे थे। भक्त पराधीन होने के कारण वे अर्जुन को अपनी दासता प्रदान करना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने ऐसी लीला रची थी।

तत्पश्चात् भगवान् शंकर ने भक्तपरवशता के कारण मुसुकुरा कर वहीं अपना सौम्य एवं अद्भुत रूप सहसा प्रकट कर दिया। शिवजी का जो स्वरूप वेदों, शास्त्रों तथा पुराणों में वर्णित है एवं व्यास जी ने अर्जुन को ध्यान करने के लिए जिस सर्वसिद्धिदाता रूप का उपदेश दिया था, शिव जी ने वही रूप दिखलाया। तब ध्यान द्वारा प्राप्त होने वाले शिवजी के उस सुन्दर रूप को देखकर अर्जुन को महान् विस्मय हुआ। फिर लज्जित होकर स्वयं पश्चात्ताप करने लगा। अहो! भगवान् शिव की माया बड़ी बलवती है। वह

बड़े-बड़े मायावियों को भी मोह में डाल देती है। ऐसे प्रभु ने अपने रूप को छिपाकर यह कौन सी लीला रची है? मैं तो उनके द्वारा छला गया। फिर हाथ जोड़कर एवं मस्तक झुकाकर शिव को प्रणाम करते हुए अर्जुन ने कहा— देवाधिदेव महादेव! आप तो बड़े कृपालु हैं, भक्तों के कल्याणकर्ता हैं। सर्वेश! आपको मेरा अपराध क्षमा करना चाहिये। आपने अपने रूप को छिपाकर यह कौन सा खेल किया है। प्रभो! आप स्वामी के साथ युद्ध करने वाले मुझको धिक्कार है। तत्पश्चात् वे शीघ्र ही महाप्रभु शंकर के चरणों में लोट गये। यह देखकर भक्तवत्सल महेश्वर का चित्त प्रसन्न हो गया। अर्जुन को अनेकों प्रकार से आश्वासन देकर भगवान् शंकर ने कहा— पार्थ! तुम तो मेरे परम भक्त हो, अत: खेद मत करो। यह तो मैंने आज तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ऐसी लीला रची है। इसलिए तुम शोक त्याग दो।

इसके बाद भगवान् शंकर ने अपने दोनों हाथों से पकड़ कर अर्जुन को उठा लिया और पाण्डुपुत्र अर्जुन को सब तरह से हर्ष प्रदान करते हुए कहा— पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन! मैं तुम पर परम प्रसन्न हूँ। अत: अब तुम वर माँगो। इस समय तुमने मुझ पर जो प्रहार किया है, उसे मैंने अपनी पूजा मान ली है। साथ ही यह सब मैंने अपनी इच्छा से किया है। इसमें तुम्हारा अपराध क्या है। अत: तुम्हारी जो लालसा हो, वह माँग लो, क्योंकि तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। भगवान् शंकर के इस प्रकार कहने पर अर्जुन भक्तिपूर्वक सावधानी से खड़े होकर शंकर जी से बोला— शम्भो! आप तो बड़े उत्तम स्वामी हैं। आपको भक्त अतिप्रिय हैं। देव! भला, मैं आपकी करुणा का क्या वर्णन कर सकता हूँ। सदाशिव! आप तो बड़े कृपालु हैं। यह कहकर अर्जुन ने महाप्रभु शंकर की सद्भक्ति एवं वेदसम्मत स्तुति प्रारम्भ की।

अर्जुन द्वारा किये गये स्तवन को सुनकर भगवान् शंकर का मन परम प्रसन्न हो गया। तब वे हँसते हुए पुन: अर्जुन से बोले— वत्स! अब अधिक कहने से क्या लाभ, तुम मेरी बात सुनो और अपना अभीष्ट वर माँग लो। शंकर जी के ऐसा कहने पर अर्जुन ने हाथ जोड़कर नत-मस्तक हो सदाशिव को प्रणाम कर प्रेमपूर्वक गद्‌गद वाणी में कहना प्रारम्भ किया। अर्जुन ने कहा— विभो! आप तो स्वयं ही अन्तर्यामी हैं, सबके भीतर विराजमान हैं।

ऐसी दशा में मैं क्या कहूँ, तथापि मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे आप सुनिये! भगवन्! मुझ पर शत्रुओं द्वारा जो संकट प्राप्त हुआ था, वह तो आपके दर्शन से ही विनष्ट हो गया। अब जिस प्रकार मुझे इस लोक की परा सिद्धि प्राप्त हो सके, वैसी कृपा कीजिये।

इतना कहकर अर्जुन ने भक्तवत्सल भगवान् शंकर को नमस्कार किया। फिर हाथ जोड़कर मस्तक झुकाये उनके निकट खड़ा हो गया। जब स्वामी शिव को यह ज्ञात हो गया कि वह पाण्डुपुत्र अर्जुन मेरा अनन्य भक्त है, तब वे भी परम प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने पाशुपत नामक अस्त्र, जो सर्वथा समस्त प्राणियों के लिए दुर्जय है, अर्जुन को देते हुए बोले— वत्स! मैं तुम्हें अपना महान् अस्त्र प्रदान कर रहा हूँ। इसे धारण करने से तुम समस्त शत्रुओं के लिए अजेय हो जाओगे। जाओ, विजय लाभ करो। श्रीकृष्ण भी तुम्हारी सहायता करेंगे, क्योंकि श्रीकृष्ण मेरे आत्मस्वरूप, भक्त और मेरा कार्य करने वाले हैं। भारत! मेरे प्रभाव से तुम निष्कण्टक राज्य भोगो और अपने भाई युधिष्ठिर से सर्वदा नाना प्रकार के धर्मकार्य कराते रहो। यह कहकर भगवान् शंकर ने अर्जुन के मस्तक पर अपना कर-कमल रख दिया और अर्जुन द्वारा पूजित हो वे शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये।

इस प्रकार भगवान् शंकर से वरदान और अस्त्र पाकर अर्जुन का मन प्रसन्न हो गया। तब वे अपने मुख्य गुरु शिव का भक्तिपूर्वक स्मरण करते हुए अपने आश्रम में लौट गये। वहाँ अर्जुन से मिलकर सभी भाइयों को ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ, मानो मृतक शरीर में प्राण का संचार हो गया हो। उत्तम व्रत का पालन करने वाली द्रौपदी को अत्यन्त सुख मिला। जब पाण्डवों को यह ज्ञात हुआ कि भगवान् शंकर परम सन्तुष्ट हो गये हैं, तब उनके हर्ष का पार नहीं रहा। उन्हें उस सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनने से तृप्ति ही नहीं हो रही थी। उस समय आश्रम में महामनस्वी पाण्डवों का भला करने के लिए चन्दनयुक्त पुष्पों की वृष्टि होने लगी। तब उन्होंने हर्षपूर्वक सम्पत्तिदाता तथा कल्याणकर्ता शिव को नमस्कार किया और वनवास की अवधि को समाप्त हुई जानकर यह निश्चय किया कि अवश्य ही हमारी विजय होगी। इस प्रकार पार्थ को भगवान् ने अस्त्र प्रदान कर उनका सम्पूर्ण दुःख हर लिया (शि.पु. शतरुद्रसंहिता, अ. १८-२०)।

इन लीलाओं के माध्यम से भगवान् आशुतोष की महिमा का वर्णन किया गया है। भगवान् शिव की महिमा अपरम्पार है। वैदिक काल से ही उनकी स्तुति एवं महिमा का वर्णन होता आ रहा है। भगवान् शिव वैदिक देवता हैं। यजुर्वेद में भगवान् शंकर की स्तुति की गयी है। यथा—

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। (यजु. १६.४१)।

कल्याणकारी सुख प्रदान करने वाले भगवान् शिव को नमस्कार है। इस मन्त्र में स्पष्ट स्तुति की गयी है। ऐसी स्थिति में शिवजी ब्रह्म से सर्वथा अभिन्न सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी भगवान् शिव की स्तुति इस प्रकार की गयी है—

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः।।
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाय आस्याय ते।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः।।

(अथर्व., ११.२.५-६)

हे पशुपते शिव! आपके मुख को, तीनों नेत्रों को, त्वचा को, रूप को, पृष्ठदेश को, अङ्गों को, उदर-पेट को, जिह्वा को और आस्यमण्डल आदि समस्त अङ्गों को नमस्कार है।' उक्त मन्त्र में भगवान् शंकर के बाह्य रूप को भी नमस्कार किया गया है, जिससे शिव की महिमा ही प्रकट होती है।

उसी शिव-तत्त्व का अवलम्बन करके ही शैव तथा शाक्त दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ है। महाभारत और वामनपुराण में शैवमतों का उल्लेख है। इससे वह मत अति प्राचीन सिद्ध होता है। वामनपुराण (६.८१.९१) में शैवमतों के चार सम्प्रदाय की बात कही गयी है। जैसे शैव, पाशुपत, कालवदन (कालामुख) और कापालिक। दार्शनिक जगत् में शैव और शाक्त दर्शनों का पर्याप्त विस्तार है और प्रसिद्धि भी।

शैवसिद्धान्त के अनुसार शिव की दो शक्तियाँ हैं— समवायिनी और परिग्रहरूपा। समवायिनी शक्ति चिद्रूपा, निर्विकारा और परिणामिनी है। इसे शक्तितत्त्व के नाम से जानते हैं। वह शक्ति परम शिव में नित्य समभाव से

रहती है। अतः शिवशक्ति का सम्बन्ध तादात्म्यसम्बन्ध है। वही शक्ति शिव की स्वरूपा शक्ति है। इससे भिन्न जो परिग्रह-शक्ति है, वह अचेतन और परिणामिनी है। वह परिग्रह शक्ति शुद्ध और अशुद्ध भेद से दो प्रकार की है। शुद्ध शक्ति का नाम महामाया और अशुद्ध शक्ति का नाम माया है। महामाया सात्त्विक जगत् का उपादान कारण है और माया प्राकृत जगत् का उपादान कारण है। जीव के जगत् बन्धन का कारण अज्ञान ही है। साधना के द्वारा उस अज्ञान की निवृत्ति हो जाने पर गुरुवाक्य श्रवण से जीव को ज्यों ही यह ज्ञान हो जाता है कि 'मैं शिव हूँ' उसी क्षण उसे आत्मस्वरूप शिवत्व का साक्षात्कार (बोध) हो जाता है और जीव जीवन्मुक्त बन जाता है।

शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी— ये पाँच देवता उपासना में प्रसिद्ध हैं। इन्हीं को पञ्चदेव कहते हैं। इसलिये भी शिव को महादेव कहते हैं। शिव का एकनाम आशुतोष भी है। आशु अतिशीघ्र, तोष यानी प्रसन्न होने वाले— उपासना से शीघ्र तथा अधिक सरलता से प्रसन्न होने के कारण उनका नाम आशुतोष उचित ही है। शिव ने समुद्रमंथन से उत्पन्न हलाहल विष का पान कर देवताओं को भी अभय दान किया था। वे इतने अहिंसक हैं कि सर्प, बिच्छू भी उनके आभूषण बने हुए हैं।

भगवान् शिव को परात्पर मानकर उपासना करने वाले के लिये तो वे परब्रह्म हैं ही। अन्यान्य भगवत्स्वरूपों के उपासकों के लिये, जो शिवस्वरूप को परब्रह्म नहीं मानते, भगवान् शिव उनके लिये भी मार्गदर्शक परमगुरु अवश्य हैं। भगवान् विष्णु के भक्त के लिये भी सद्‌गुरुरूप से शिव की उपासना आवश्यक है। वैष्णव ग्रन्थों में इसका यथेष्ट उल्लेख है और साधकों के अनुभव भी प्रमाण हैं। शक्ति के उपासक शक्तिमान् शिव को छोड़ कैसे सकते हैं? शिव के बिना शक्ति अकेली क्या करेगी? गणेश तो शिव के पुत्र ही हैं। पुत्र को पूजे और पिता का अपमान करे, यह शिष्ट मर्यादा कभी नहीं हो सकती। सूर्यदेव तो भगवान् शिव के तेजोलिंग के ही नामान्तर हैं। इसके सिवा अन्यान्य मतावलम्बियों के लिये भी कम-से-कम श्रद्धा-विश्वासरूप भवानी-शंकर की आवश्यकता रहती ही है। योंगियों के लिये तो परमयोगीश्वर शिव की आराधना की आवश्यकता है ही। ज्ञान के साधक परमकल्याणरूप शिव की ही प्राप्ति चाहते हैं। न्याय, वैशेषिक आदि दर्शन

भी शिवविद्या के ही प्रचारक हैं। तन्त्र तो शिवोपासना के लिये बना है। ऐसी अवस्था में जिस किसी भी दृष्टि से शिव को परम परात्पर परमात्मा, महाज्ञानी, महान् विद्वान्, योगीश्वर, देवदेव, जगद्गुरु, सद्गुरु, महान् उपदेशक, उत्पादक, संहारक— कुछ भी मानकर उनकी उपासना करना सबका कर्तव्य है। सुख और कल्याण की इच्छा स्वाभाविक होने के कारण प्रत्येक जीव कल्याणरूप शिव-शंकर की ही उपासना करता है।

विष्णुपुराण में शिव का और शिवपुराण में विष्णु का तारतम्य दिखता है। परन्तु वे प्रसंग अपने-अपने देवता की अनन्य भक्ति प्रकट करने के लिये है, उनकी निन्दा के लिये नहीं? अत: सगुण रूप से भी शिव अतिप्राचीन तथा वैदिक देवता हैं, इसलिये उनकी पूजा-अर्चना सर्वत्र प्रसिद्ध है।

भगवान् भूतभावन शिव की लीलाकथा भी रहस्यमयी है। इन कथा-प्रसङ्गों में से ताण्डवलीला, उमामहेश्वर लीला, दक्षयज्ञ-विध्वंस, हिमालयनन्दिनी के रूप में पार्वती का आविर्भाव, पार्वती की तपस्या, पार्वती से शिव का विवाह, कुमार-जनन आदि निग्रहानुग्रह की लीलायें नितान्त रहस्यमय, रोचक तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं। शिव की लीलायें अनन्त हैं। अन्त में पुष्पदन्ताचार्य की इन पंक्तियों के साथ इस लीलाकीर्तन को विश्राम दिया जाता है—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।।



शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्
डी. 35/77, जंगमवाडीमठ
वाराणसी-221001

ISBN 81-86768-87-2

Rs. 300.00